सुंदरसार

अर्थात्

कविवर स्वामी सुंदरदासजी कृत समस्त ग्रंथों से उत्तमोत्तम अंशों का संग्रह।

"हंस और ज्ञानी गुणी लहैं दूध अरु सार"

संग्रहकर्त्ता

पुरोहित हरिनारायण बी० ए०।

"यत्सारभूतं तदुपासितव्यं"

१९१८.

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस में मुद्रित।

मूल्य १)
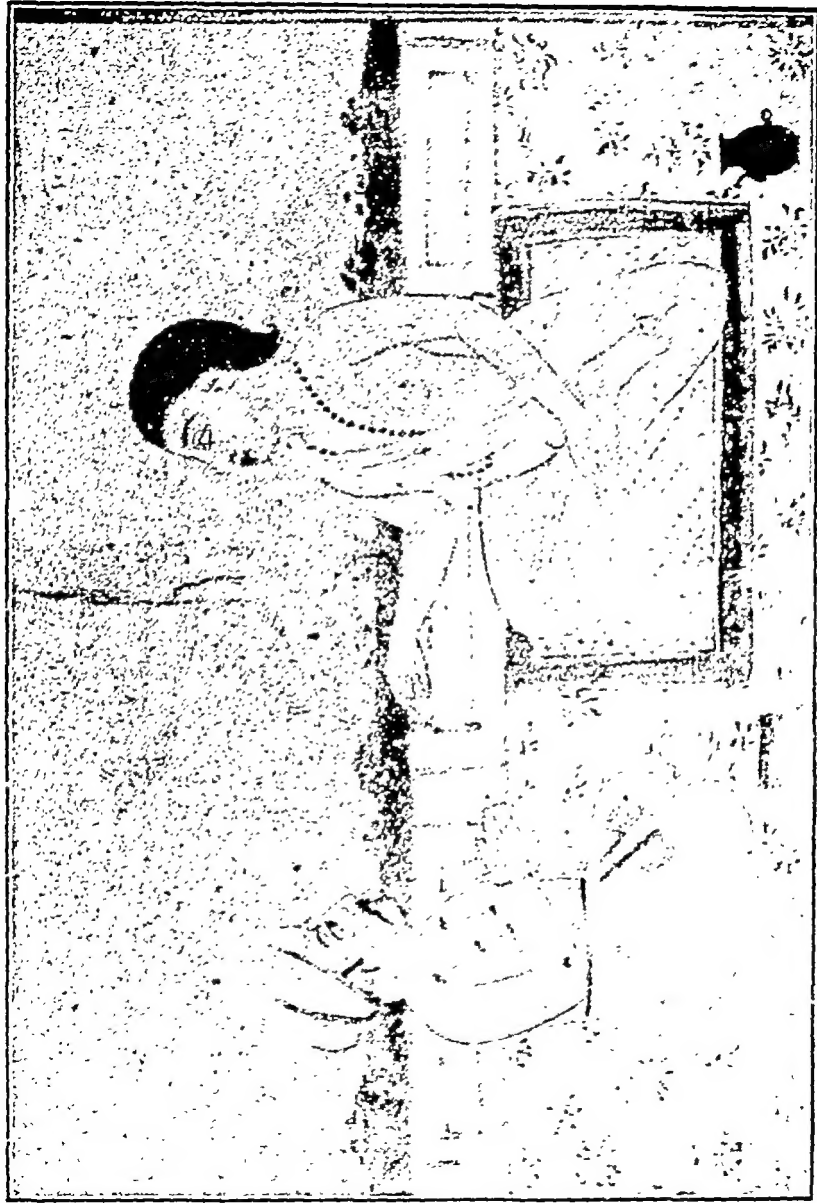
कविवर श्रीस्वामी सुंदरदास जी ।

ॐ तत्सत्

भूमिका ।

भाषा पद्यात्मक साहित्य में सूरदासजी और तुलसी दास जी के पीछे शांतरस वा वेदांत पर लिखनेवाले कवियों में स्वामी सुंदरदास जी सुविख्यात और अग्रगण्य हैं। इनके रचित अनेक ग्रंथों में से " सुंदरविलास " (जिसका ठेठ नाम " सवैया " है) स्यात् किसी भी हिंदी प्रेमी से छिपा नहीं है। इनके अन्य ग्रंथ भी, जिनकी संख्या ४० से अधिक है, एक से एक बढ़ कर हैं। 'ज्ञानसमुद्र' 'अष्टक,' 'साखी', 'पद' तथा भिन्न काव्यभेदों की रचनाएं बहुत चित्ताकर्षक, उपयोगी और नीति ज्ञान के अनोखे विचारों से भरी हैं।

इनके ग्रंथों के जितने मुद्रित संस्करण हमारे देखने में आए हैं वे प्रायः सब ही अपूर्ण और अशुद्ध हैं। आनंद की बात है कि चिरकाल की खोज से हमको स्वामीजी की संकलित की और लिखाई हुई संवत् १७४२ की एक हस्तलिखित पुस्तक प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त हमने, निज की अभिरुचिवश, बहुत सी अन्य हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियों का भी संग्रह किया। उक्त प्राचीन पुस्तक के आधार पर और अन्य प्रतियों के मिलान से हमने समस्त ग्रंथों का एक शुद्ध और पूर्ण

संस्करण संपादन किया है जो शीघ्र मुद्रित होगा। इस समुच्चय का ग्रंथभार अनुष्टुप गणना से ८००० से अधिक है, और टीका, टिप्पणी, भूमिका, जीवनचरित्र, चित्रादि और परिशिष्टों सहित दुगुने से भी अधिक होगा।

बहुत दिन से हमारा यह भी विचार था कि समुच्चय ग्रंथ को पढ़ने में पाठकों को बहुत समय और परिश्रम अपेक्षित होगा। यदि अधिक प्रचलित, अधिक रोचक, उपयोगी और व्यवहार में आए हुए छंदों का एक पृथक संग्रह हो जाय, तथा इस संपूर्ण ग्रंथ के आधार पर प्रायः प्रत्येक अंग का कुछ अंश उदाहरण के ढंग पर दिया जाय, एवम् छोड़े हुए अंशों का व्योरा वा सार भी लिखा जाय तो पढ़नेवालों के लिये एक बड़े काम की लघु पाठ्य पुस्तक हो जायगी, और "सुंदर" रूपी ज्ञानमंदिर में पहुंचानेवाली एक सुलभ और सुगम सोपान बन जायगी। सौभग्य से "मनोरंजन पुस्तकमाला" का उदय हुआ। उसके सुयोग्य संपादक बाबू श्याम सुंदरदास जी बी० ए० की सम्मति से यह 'सार' संगृहीत हुआ, और उनकी अनुमति से इस "सुंदर" मणि का 'मनका' इस माला में पिरोया जाने से मनका रंजन करनेवाला हुआ।

इस 'सार' में सुंदरदास जी के प्रायः समस्त ग्रंथों के वे विशेष अंश इस उत्तमता से छांट कर रखे गए हैं कि जो पाठकों को साहित्य के नाते ही से रुचिकर नहीं होंगे किंतु उपदेश और ज्ञान ध्यानादि के प्रकरण में भी बहुत लाभकारी जँचेंगे। उन अंशों को विशेष करके ले लिया है जो प्रस्ताविक वा सिद्धांत के ढंग पर बोले जाते हैं, कंठस्थ किए जाते हैं,

पुस्तकों में उद्धृत हुए वा होते हैं वा गाए जाते हैं। इनके भजन ही नहीं वरन छंद, अष्टक आदि भी गाए जाते हैं।

समस्त ग्रंथों का चतुर्थांश के लगभग इस 'सार' में आ गया है। सब छंदों की संख्या ३७०० से अधिक है, और इस छांट में ९०० से अधिक आचुके हैं, जैसा कि नीचे लिखी संख्याओं से ज्ञात होता है—

ग्रंथ विभाग	पूर्णसंख्या	'सार' में आई हुई संख्या	उद्धृतांश
१—ज्ञानसमुद्र	३१४	१४७	१/२
२—लघुग्रंथावली और फुटकर छंदादि	१३४७	३५१	१/४
३—सवैया (सुंदरविलास)	५६३	१५२	१/४
४—साखी	१३५१	१३३	१/१०
५—पद (भजन)	२१२	४०	१/५
सर्व	३७८७	९२३	१/४

'लघुग्रंथावली' ❀ में "सर्वांगयोग" से लगाकर "पूर्वा-

❀ "लघुग्रंथावली"—यह नाम हमारा रखा हुआ है। सुंदरदास जी ने प्रत्येक को 'ग्रंथ' ऐसा लिखा है, 'ज्ञानसमुद्र' को भी 'ग्रंथ' ही लिखा है। परंतु उसका पृथक् कर आदि में उन्होंने रखा, सो ही क्रम रखा और अन्य ग्रन्थों को इस एक विभाग में लिया है कि सुविधा रहे। उपरोक्त पांच बिभाग 'विभाग' रूपेण हमने दिखा दिये हैं।

भाषा वरवै" तक ३७ ग्रंथ हैं, और फुटकर छंद और 'देशाटन के सवैया' भी हैं। इनमें से एक तो षट्पदी और तीन अष्टक ('रामजी', 'नाम' और 'पंजाबी') संपूर्ण ही रखे गए हैं॥ "सवैया" अधिक उत्तम होने से उसमें से अनुमान से आधी संख्या के छंद लिए गए हैं। अन्य ग्रंथों के अंश रोचकता, उपयोगिता, और ज्ञानांश की प्रचुरतादि के आधार पर उतने ही लिए गए हैं कि जितने उचित समझे गए। प्रत्येक ग्रंथ के लिए हुए छंदों की संख्याएं छपे अंशों से जानी जा सकती है। हमको इस बात का आग्रह नहीं कि यावत् उत्तम उत्तम अंश इस 'सार' में आ गए हैं। निःसंदेह बहुत से उत्तम छंद रह भी गए होंगे। परंतु यह सब पाठकों की रुचि भेद के अनुसार समझा जा सकता है। सार के संग्रह में जितना होना चाहिए उसको लेने का यथाशक्य प्रयत्न किया गया है।

उद्धृत गृंथांशों के कहीं कहीं आदि में कहीं कहीं बीच में आवश्यकतानुसार छोटी छोटी व्याख्याएं, विवेचनाएं वा 'नोट' दिए गए हैं जो कहीं भूमिका का और कहीं त्यक्तांश के सार का काम दे सकेंगे। कठिन वा अव्यवहृत वा गूढ़ शब्दों वा वाक्यों के अर्थ अथवा आशय टिप्पणियों (फुटनोटों) में संख्या दे दे कर लिख दिए गए हैं। "ज्ञानसमुद्र" और "सवैया" के भूमिका संबंधी 'नोट' उनके पहिले नहीं लिखे गए इस कारण यहां देते हैं —

(१) 'ज्ञानसमुद्र'।

सुंदरदास जी कृत यह 'ज्ञानसमुद्र' अध्यात्म-विद्या (पर-

मात्म विज्ञान, ब्रह्म विद्या वा परा-विद्या) और तदुपयोगी साधनों को बतानेवाला, भाषाछंदवद्ध, गुरु शिष्य संवाद रूप, एक स्वल्प संहिता ग्रंथ है। वेदांत में योग भक्ति और सांख्य का जोड़ ऐसी चतुराई से लगाया गया है कि कोई प्रसंग भेद का विवाद नहीं उठता। सिद्धांत में वेदांत ही सर्वोच्च माना जाकर अन्यों को क्रमगत साधन वा मार्गीभूत प्रयत्न दिखाया है। इसको अनेक भांति के छंदों में इसलिये रचा है कि एक तो मुमुक्षुओं को रुचिकर हो दूसरे यह दिखाना है कि शृंगार और वीर रसादि ही का काव्य के भूषणों में अधिकार नहीं है वरन शांतादि रसों का भी है। वेदांत को मानों काव्य के ढंग पर रचकर दिखाया है। 'जाति जिती सब छंदन की' इस कहने से यावन्मात्र छंदों से प्रयोजन नहीं है किंतु प्रशस्त छंदों से अभिप्राय प्रतीत होता है। क्योंकि ग्रंथ में केवल ३४ प्रकार के छंद आए हैं। सबही छंद अत्यंत मधुर और रोचक हैं। सर्वत्र ही रचना सरल, सुबोध, सुखावह, ललित, सारगर्भित और ओजस्विनी है। मुमुक्षुजनों साधुओं और ज्ञान प्रेमियों के लिये यह ग्रंथ बड़ेही काम का है। इस के कई एक छंद प्रमाणवत् बोले जाते हैं'। और अनेक छंद वा समग्र उल्लास को लोग कंठस्थ रखते हैं। 'ज्ञानसमुद्र' ऐसा नाम स्वामी जी ने ठीक सोचकर ही रखा है। इसमें ज्ञान के विषय कूट कूट कर भरे हैं। प्रथम उल्लास के ७ वें छंद (इंदव) में समुद्र का रूपक भी बाँधा है। प्रारंभ के समारोह और उठाव से तो प्रतीत होता है कि इस ग्रंथ को बहुत कुछ बड़ा बनाना अभिप्रेत होगा, परंतु साधुओं की सुविधा

वा हीनता पर दृष्टि कर बहुत विस्तार नहीं किया गया। इस के पांच उल्लास (वा लहरें) हैं, अर्थात् यह पांच अध्यायों में विभक्त हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

प्रथमोल्लास में—शिष्य और गुरु के लक्षण। गुरु कैसा मिलना चाहिए। शिष्य किस प्रकार अधिकारी होकर गुरु से ज्ञान प्राप्त करे, अपनी शंकाओं और भ्रमों को कैसे मिटाने में बद्धपरिकर रहै। गुरु किस मार्ग वा रीति से शिष्य को ज्ञानभूमि में प्रवेश करावै, इत्यादि।

द्वितीयोल्लास में—नौ प्रकार की (अर्थात् नवधा) भक्ति तथाच परा भक्ति का उत्तम वर्णन है तथा भक्ति के भेद सहित विधियों का भी सार दिया है। यह अनेक भक्तिग्रंथों का सारोद्धार प्रतीत होता है। पराभक्ति का निरूपण देखने ही योग्य है। इसको उत्तमोत्तम कहा जाय तो यथार्थ है। 'मिलि परमातम सों आतमा पराभक्ति सुंदर कहै' यह भक्ति की महान् गति है॥

तृतीयोल्लास में—अष्टांग योग और उसकी संक्षिप्त विधि का वर्णन है। "हठ प्रदीपिका" आदि ग्रंथों तथा स्वानुभव से इसका निर्माण होना प्रत्यक्ष है। इसके छंदों पर वृहत व्याख्या की अपेक्षा होती है परंतु सार ग्रंथ में यह संभव नहीं। राजयोग के लाभ और संबंध को भी इसमें दिखाया है। 'सर्वांगयोग' नामी स्वामी जी का रचा लघु ग्रंथ इसके साथ पढना लाभ-दायक होगा। निर्विकल्प समाधि के आनंद और योगी की अवस्था आदि का वर्णन अवश्य पठनीय है॥

चतुर्थोल्लास में—सांख्य शास्त्र और उससे मुक्ति के

मिलने का प्रकार वर्णित है। प्रकृति-पुरुष-भेद, सृष्टिक्रम और चेतन पुरुष से उसका प्रादुर्भाव कैसे होता है, जड़ से चेतन पुरुष को किस प्रकार भिन्न समझ कर कैवल्य प्राप्त करना, यह वर्णन अत्यंत गंभीर और संग्रह करने योग्य है। पंचीकरण का कुछ प्रसंग कहकर चारों अवस्थाओं का भेद बताया गया है और उनके सम्यक ज्ञान से निज स्वरूप जानने की सूक्ष्म विधि बताई गई है ।

पंचमोल्लास में—अद्वैत ब्रह्म वर्णन का प्रकार है। चारों अवस्थाओं से परे तुरियातीत का जो संकेत सांख्य के अंग में दिया उस ही के संबंध से प्रागभावादि चार अभावों का दिग्दर्शन कर अत्यंताभाव द्वारा निर्गुण निराकार शुद्ध चेतन का स्वरूप वा लक्षण बताने की चेष्टा की गई है। 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वाक्य की यथार्थता और वैदिक 'नेति, नेति' का सार बताते हुए निरुपाधि जीव कैसे शुद्ध ब्रह्म है, और उस अवस्था की प्राप्ति में कैसा वैलक्षण्य है, और मोक्ष का वास्तविक स्वरूप क्या है, इत्यादि बातें बड़े चमत्कार से बताई गई हैं। यह उल्लास पांचों में अत्यंत श्रेष्ठ है।

इस प्रकार एकही ग्रंथ में अनेक उपयोगी विषय, गीता आदि ग्रंथों की भांति, मनुष्य के कल्याण के अर्थ एकत्रित किए हुए हैं । इस ज्ञानसमुद्र की रचना के विषय में दो एक कथाएँ प्रसिद्ध हैं जिनसे स्वामी जी की बुद्धि की प्रबलता और उनके पूरे महात्मा होने का परिचय मिलता है। यह अन्य कई एक ग्रंथों से पीछे अर्थात् संवत् १७१० में बना है, तब

भी इसकी उत्तमता और उपयोगिता के कारण स्वयं स्वामी जी ने अपने समग्र ग्रंथों में इसको प्रथम रखा है।

(२) "सवैया" (सुंदरविलास)

यद्यपि अपने संग्रह में "ज्ञानसमुद्र" ही को स्वामी जी ने प्रथम स्थान दिया है, तथापि रचना और विषयनिरूपण आदि गुणों और भाषा और अन्य गुणों के विचार से प्रतीत होता है कि सुंदरदास जी की समस्त रचनाओं में "सवैया" ही मूर्द्धन्य है। इसको छाप की पुस्तकों में "सुंदराविलास" ऐसा नाम दिया है। यह नाम ग्रंथकर्ता का तो दिया हुआ है नहीं पीछे से किसी विद्वान् ने ऐसा नामकरण कर दिया होगा। लिखित पुस्तकों में सर्वत्र "सवैया" नाम और मुद्रितों में सर्वत्र (एक दो को छोड़कर) "सुंदरविलास" नाम मिलता है।

सवैया छंद के अनेक भेद हैं। उनमें इंदव (मत्तगयंद) आदि समध्वनि प्रतीत होने से तथा सुंदरदास जी के समय में ऐसे छंदों का अधिक प्रचार होने से और उनको इसकी रचना अधिक प्रिय होने से इसीकी अधिक रचना हुई है और इसही में अपने उत्तमोत्तम विचारों का उत्तमोत्तम रीति से उन्होंने वर्णन किया है और यही ग्रंथ का नाम भी ("सवैया") रखा है। वास्तव में इस ग्रंथ के सब ही छंद "सवैया" (और उसके भेद) नहीं हैं वरन वे अन्य जाति के भी हैं। किसी किसी के मत से 'सवैया' नाम सवाया १¼ का वाचक है अर्थात् लोग अंत्यचरणार्द्ध को छंद से पूर्व बोलते हैं। सुंदर दास जी के सवैये प्रायः

इस ही प्रकार से बोलने में आते हैं। यथा "दादू दयाल को हूं नित चेरो" "गुरु विन ज्ञान जैसे अँधेरे में आरसी" ये चतुर्थ पाद के आधे हैं तब भी छंद के पूर्व लगाकर बोले जाते हैं। लिखित और कई मुद्रित पुस्तकों में प्रायः यही क्रम है। परंतु हमने कहीं कहीं इसे दिया है।

इस ग्रंथ मे ३४ अंग वा अध्याय हैं जिनमें वेदांत, सांख्य, भक्ति, योग, उपदेश, नीति आदि के परिष्कृत विचारों को 'सुलभ' 'साधु भाषा' में बड़े मनोहर चातुर्य से दिया गया है। रचना इसकी वा इसके किसी अंग की एककालीन नहीं है वरन विविध प्रकार से और विभिन्न अवसरों पर हुई प्रतीत होती है। आशय और अर्थ के विचार से प्रायः छंद 'दादू दयाल' की 'वाणी' के अनुकरण हैं, मानो उसकी टीका ही हैं। वेदांत के अति गूढ़ रहस्यों से लगाकर साधारण बातों तक को इसमें लाया गया है। अत्यंत दुरूह विषयों को अति ललित बोल चाल की भाषा में बांधा गया है। यही सुंदरदास जी की दक्षता और काव्यकुशलता का एक प्रबल प्रमाण है। यद्यपि इसमें शांतरस प्रधान है तो भी अन्य रसों की छाया दीख जाती है। ऐसा कोई सा ही छंद होगा जिसके पढ़ने से प्रसाद गुण का आस्वाद न मिलता हो और उसमें स्वामी जी की मंद मुसक्यान न झलकती हो। विचार को ऐसा वाणी-वेष दिया गया है कि छंदों को पढ़ते ही तात्पर्य मानों रूप धारण किए सामने खड़ा हो जाता है।

सुंदरदास जी के अन्य ग्रंथों की अपेक्षा इस सुंदर-विलास में धर्म, नीति, उपदेश, प्रस्ताविक बातें भी बड़े मारके

भी मिलती हैं और यह ग्रंथ सुरम्य और रंजनकर्त्ता है जिसको पढ़ते पढ़ते चित्त नहीं अघाता।

इस 'सार' में पाठ वही रखा गया है जो असल प्राचीन लिखित पुस्तक में था। हमारी समझ में पुरानी चाल की हिंदी को ही नहीं उसकी लिखावट के नमूनों को भी ज्यों का त्यों रखना ही पुरातत्व के सिद्धांत के अनुसार है। हमने उसे निबा-हने का प्रयत्न किया है। आशा है इसको पाठक अनुचित न कहेंगे। चित्र काव्यों में से केवल दोही छंद चित्रों सहित और विपर्य्यय अंग में से चार छंद ही टीका सहित लिए गए हैं।

सुंदरदास जी की भाषा की "भूमि" तो व्रजभाषा है, पर उसमें खड़ी बोली और रजवाड़ी का मेल है। हमारी जान में इनकी भाषा अन्य कवियों से, आज कल की दृष्टि से देखें तो बहुत शुद्ध और स्फीत तथा 'बा-मुहाविरे' है। इस हिसाब से भी सुंदरदास जी बहुत से कवियों से बढ़चढ़ कर हैं और इनकी भाषा की उत्कृष्टता भी इनकी ख्याति और लोकप्रियता का एक दृढ़ कारण है।

अब हम ग्रंथकर्त्ता का संक्षिप्त जीवनवृत्तांत (अपने संग्रह के आधार पर) देने से पहले इतना ही कह देना अलम् समझते हैं कि इनके संबंध में जितना कुछ लोगों ने लिखा है उसमें अनेक बातें भ्रममूलक हैं। औरों की तो क्या चलाई जाय "मिश्रबंधु विनोद" तक में सुंदरदास जी को "दूसर" लिखा है और उसमें इनके ग्रंथों के नामों को बहुत ड़गबड़ कर दिया है। देखो "विनोद" प्रथम भाग पृष्ठ ४१४—१५।

कदाचित् "विनोद" के कर्ताओं को इनके ग्रंथ सांगोपांग
नहीं मिले इससे वे इनका न तो यथार्थ स्वरूपज्ञान ही बता सके और न ठीक पर्यालोचना कर समालोचना की कसौटी पर लीक लगा सके। आश्चर्य है कि इतने बड़े महात्मा और कवि को "तोष" की श्रेणी में रखने ही को उन्होंने बहुत समझा। हम यहां इसका कुछ विस्तार न कर इतना ही कहेंगे कि इनका स्थान सूरदास और तुलसीदास और कबीर के पीछे वेदांत और शांत रस के उत्कृष्ट कवियों में सर्वोच्च कहना उचित है।

संक्षिप्त जीवनी।

सुंदरदास जी का जन्म विक्रमी संवत् १६५३ में, चैत्र शुक्ला नवमी को द्यौसा* नगरी में हुआ था। इनके पिता साह 'परमानंद' 'बूसर' गोती खंडेलवाल महाजन थे, इनकी माता 'सती देवी' आमेर† के 'सोंकिया' गोत के खंडेलवालों

---

* द्यौसा—राज्य जयपुर की आमेर से भी पहले की राजधानी। यह शहर जयपुर से पूर्व दिशा में १६ कोश पर है। रेल का स्टेशन और निजामत भी इसी नाम की हैं।

† आमेर—प्रसिद्ध पुरानी राजधानी। जयपुर शहर से ४ कोश उत्तर को। यहां 'मावठा' तालाब के पास दादू जी का स्थान भी अद्यापि है।

की बेटी थी। इनके जन्म के संबंध में एक कथा प्रसिद्ध है। दादू जी जब आमेर में विराजते थे तो एक दिन उनका एक प्रिय शिष्य 'जग्गा' रोटी और सूत मांगने को शहर में गया था, और फ़क़ीरी वड़ हांकता था कि 'दे माई सूत ले माई पूत'। लड़की 'सती' घर में सूत कात रही थी। फकीर की यह बोली सुन कुतूहल वश सूत की कुकड़ी ले कहने लगी 'लो बाबा जी सूत' तो साधु ने कुकडी लेकर उत्तर में कह दिया 'हो माई तेरे पूत' और वह आश्रम को लौट आया। दादू जी ने यह बात समाधि में जान ली। जग्गा को आते ही कहा—भाई तुम ठगा आए। जिसके भाग्य में पुत्र न था, उसको पुत्र का वचन दे आए। अब वचन सत्य करने को जाओ। जग्गा के होश उड़ गए। उसने कहा जो आज्ञा, परंतु चरणों ही में आया रहूं। दादू जी ने कहा ऐसा ही होगा। लड़की के घरवालों को कह आओ कि जहां इसका विवाह हो कह दें कि इसके एक पुत्र होगा जो ज्ञानी और पंडित होगा परंतु वह बालपन ही में वैरागी हो जायगा। जग्गा ने ऐसा ही किया। लड़की सती के विवाह के कई वर्ष पीछे जग्गा ने शरीर त्याग दिया। द्यौसा में परमानंद के घर पुत्र जन्म का आनंद हुआ। इस पुत्र के होने का वरदान स्वयं दादू जी ने भी प्रथम बार जब वे द्यौसा पधारे थे, परमानंद और सती को दिया था और वही बात कह दी थी जो जग्गा के हाथ पहले सती के घरवालों को आमेर में कहलाई थी। इन बातों का उल्लेख राघव दास जी ने अपने भक्तमाल में भी किया है—

"दिवसा है नग्र घोसा चूसर है साहूकार
सुंदर जनम लियौ ताही घर आइकैं।
पुत्र की है चाहि पति दई है जनाइ त्रिया
कह्यौ समझाई स्वामी कहौं सुखदाइकैं ॥"
स्वामी मुख कही सुत जनमैगो सही पै
वैराग लेगो वही घर रहै नाहिं माइ कैं।
एकादस वरष में त्याग्यौ घर माल सब
वेदांत पुरान सुने वानारसी जाइ कैं "॥४२१॥

संवत् १६५९ में दादूजी जब दूसरी वार घौसा में पधारे तब सुंदरदास जी सात वर्ष के हो गए थे। माता पिता भक्तिपूर्वक दर्शनों को आए और उन्होंने सुंदरदास जी को उनके चरणों में रख दिया। स्वामीजी ने वालक के सिर पर हाथ रख कर बहुत प्यार से कहा कि 'सुंदर तू आगया'। कोई कहते हैं स्वामी जी ने कहा यह बालक बड़ा सुंदर है। निदान "सुंदरदास" तब ही से नाम हुआ और वे उसी दिन से दादूजी के शिष्यों में हो गए।

दादूजी की "जन्म परचयी" में दादूजी के शिष्य जनगोपाल ने इस प्रसंग को लिखा है—

"पुनि घोसा महिं कियो प्रवेसू। षेमदास अरु साधो जैसू।
वालक सुंदर सेवग छाजू। मथुरा बाई हरि सों काजू"।
(विश्राम १४)

स्वयं सुंदरदासजी ने 'गुरु सम्प्रदाय' ग्रंथ में लिखा है—
"दादूजी जब घोसा आये। बालपने मइं दर्शन पाये॥"

संवत् १६६० में दादूजी का 'नारायणे' ग्राम में परमपद हुआ, उस समय अन्य शिष्यों के साथ सुंदरदासजी भी वहां थे। दादूजी के उत्तराधिकारी जेष्ठ पुत्र गरीबदासजी ने पिता और गुरु का बड़े समारोह से 'महोच्छा' (महोत्सव=नुकता) किया जिसमें सब ही शिष्य, सेवक और भक्त व्यवहारी आदि इकठ्ठे हुए थे। सुंदरदासजी ने अपनी प्रतिभा का परिचय इस छोटी सी अवस्था में ही दे दिया था। जब सभा एकत्रित हुई तो एक प्रस्ताव पर गरीबदासजी ने सुंदरदासजी की ठठोली की जिसको अपमान समझ कर भरी सभा में इस बालकवि ने गरीबदासजी को यह उत्तर सुनाया —

"क्या दुनिया असतूत करैगी क्या दुनिया के रूसे से।
साहिब सेती रहो सुरषरू आतम वषसे ऊसे से॥
क्या किरपन मूंजी की माया नांव न होय नपूंसे से।
कूड़ा बचन जिन्होंने भाष्या बिल्ली मरै न मूंसे से॥
जन सुंदर अलमस्त दिवाना सब्द सुनाया घूंसे से।
मानूं तो मरजाद रहैगी नाहिं मानूं तो घूंसे से॥"

सुंदरदासजी कुछ दिन द्यौसा में ही रहे, फिर 'डीडवाणे' और 'फतहपुर' में दादूशिष्य 'प्रागदास जी बीहाणी' के पास रहे। उपरांत द्यौसा आए। द्यौसा में टहलडी पहाड़ी पर रहनेवाले दादुशिष्य 'जगजीवणजी' की सत्संगति से सुंदर दासजी को काशी पढ़ने का चसका लगा और उनके साथ संवत् १६६३ में (ग्यारह वर्ष की अवस्था में) वे काशी चले गए। काशी में सं० १६८२ तक वे रहे, बीच बीच में इधर आते भी रहे। काशी में रहकर व्याकरण साहित्यादि पढकर

सांख्य वेदांतादि को उन्होंने खूब पढ़ा और वहां तथा अन्य स्थानों में रहकर योग पढ़ा और साधन भी किया। परंतु इन्हें काव्य साहित्य का सदा प्रेम बना रहा और बढ़ता रहा। छंद अलंकार रस और काव्य के संस्कृत और हिंदी में भी ग्रंथ उन्होंने पढ़े। तथा देशी विदेशी कवियों से उनका समागम रहा।

काशी से १६८२ में लौट कर वे जयपुर राज्यांतर्गत उस फतहपुर (शेखावटी) नगर में आए जहां उक्त प्रागदासजी रहते थे। यहां उन्होंने तप किया, योग का प्रगाढ साधन, दादूवाणी के रहस्यों को संग्रह किया जिसकी कथा वे प्रायः किया करते और श्रोताओं को मुग्ध करते रहते थे। यहीं पर फतहपुर के नवाव भाषा के कवि और प्रेमी 'अलफखां' आदि से समागम होता रहा। ये सुंदरदासजी पर बड़ी श्रद्धा रखते थे और इनसे कई वार करामात के परिचय पाचुके थे।

फतहपर के "कजढ़ी वाल" गोत के महाजनों ने सुंदरदासजी के निवास के लिये पक्का स्थान और उसके नीचे एक तहखाना, जिसको गुफा कहते हैं, और आगे एक कूप वना दिया था जो अब तक विद्यमान है।

सुंदरदासजी को पर्य्यटन से बड़ा प्रेम था। वे कभी फतहपुर में रहते और कभी वाहर फिरा करते और प्रसंग प्रसंग और अवसर अवसर पर छंद रचना और ग्रंथ रचना करते रहते। प्रायः समस्त उत्तर भारत और गुजरात, काठियावाड़ और कुछ दाक्षिण के विभाग, पंजाब आदि देशों में वे घूमे थे। काशी तो उनका विद्याद्वार ही ठहरा। परिष्कृत हिंदी और पूर्वी भाषा की रचना यहीं के फल हैं। गुजरात में भी वे बहुत रहे थे। गुजराती

यहीं उन्होंने सीखी थी। पंजाब में वे कई बार गए और पंजाबी भाषा में उन्हों ने छंद रचना तक की। लाहोर में छज्जू भक्त के चौबारे में वे ठहरा करते थे। "कुरसाना" ग्राम आपको बहुत प्रिय था, 'सवैया' की अधिक रचना का यहीं पर होना कहा जाता है। इनके रचे "दशों दिशा के सवैये" पर्य्यटन का और इनकी शुचिप्रियता और शुद्ध रुचि का दिग्दर्शन कराते हैं, यथा—

(१) पंजाब का—

"हिक लाहोर दा नीर भी उत्तम, हिक लाहोर दा बाग सिराहे"।

(२) गुजरात का—

"आभड छोत अतीत सौं कीजिये बिलाइ रु कूकर चाटत हाँडी"।

(३) मारवाड़ का—

"ब्रिच्छ न नीर न उत्तम चीर, सुदेसन में कत देस है मारू"।

(४) फतहपुर का—

"फूहड नारि फतेपुर की"।

(५) दक्षिण का—

"रांधत प्याज बिगारत नाज, न आवत लाज करैं सब भच्छन"।

(६) पूर्व देश का—

"ब्राह्मण छत्रिय वैस रु सूदर, चारूँ ही वर्ण के मंछ बघारत"।

(७) मालवा, उत्तराखंड और अपने प्रिय 'कुरसाने' ग्राम की तो उन्होंने बड़ी ही प्रशंसा की है। कुरसामा तो इनको अत्यंत प्रिय था, आपने लिखा है—

"पूरब पच्छिम उत्तर दच्छिन देश विदेश फिरे सब जानें।
केतक द्योस फतेपुर माहिं सुकेतक द्योस रहे डिडवानें॥
केतक द्योस रहे गुजरात उहां हुँ कछू नहिं आन्यौ है ठानें।

सोच विचारि कै सुंदरदास जु याहि तैं आन रहे कुरसानें॥"

यात्रा में वे सब प्रकार के मनुष्य और अनेक मतमतांतर वादियों (वैष्णव, जैन, मुसलमानादि) से संवाद और प्रेमालाप किया करते थे। बहुत से विद्वान् कवि लोग आपके मित्र और सेवक थे। जहाँ जहाँ दादूजी पधारे थे उन सब स्थानों की इन्होंने यात्रा की, अपने सब विद्यमान गुरुभाइयों से मिले जिनमें प्रागदास जी, रज्जब जी, मोहनदास जी आदि से इनकी बड़ी प्रीति थी। देशाटन से सुंदरदास जी की जानकारी बहुत बढ़ी थी और उनकी ग्रंथ रचना पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा था। जो ओजस्विता, उदारता, उच्चता, क्षमता और स्पष्टता उनके लेख में हैं वह इस यात्रा और संसार के ज्ञान से सब अधिक हुई थी।

संवत् १६८८ में प्रागदास जी का परलोक वास हुआ। उसके पीछे सुंदरदास जी का चित्त फतहपुर में अधिक नहीं लगा। प्रायः बाहर 'रामत' करने को वे चले जाया करते थे। कभी कुरसाने, कभी 'मोरां,' कभी आमेर, कभी सांगानेर में, कभी और कहीं, समय समय पर ग्रंथ रचते रहे। सं० १६९१ में 'पंचेंद्रिय चरित्र' और सं० १७१० में ज्ञानसमुद्र' समाप्त हुआ। अन्य ग्रंथों में रचना काल नहीं लिखा, इससे रचना का समय निश्चित नहीं होता। परंतु सुंदरदास जी की रचना कभी थकी नहीं, यों तो अंत समय तक छंद कहते रहे परंतु यह निश्चय है कि सं० १७४२ के पीछे किसी ग्रंथ की तो रचना हुई नहीं यों प्रस्ताव वश वे कुछ कुछ बनाते रहे। सं० १७४२ से पहले अपने रचित ग्रंथों का संग्रह अपने सामने उन्होंने

कर लिय था, जिनका क्रम उनके सामने लिखाई पुस्तक के अनुसार वही है जो इस "सार" में है, तथा उनके समग्र ग्रंथों के सम्पादन में हमने रखा है। अपने रचित ग्रंथों के संग्रह की प्रतियां लिखवा लिखवा कर अपने शिष्य और मित्रों को वे दिया करते थे। इनके जीवनकाल में ही इनकी ख्याति बहुत हो चुकी थी।

अंतावस्था।

संवत् १७४४ के लगभग सुंदरदास जी फतहपुर में प्रायः रहे। सं० १७४५ के पीछे 'रामत' करते हुए सांगानेर गए (जो जयपुर से ४ कोस दक्षिण की ओर नदी किनारे छोटा सा सुंदर नगर है)। यहां दादू शिष्य 'रज्जबजी' तथा उनके शिष्य 'मोहनजी' आदि से सत्संग रहा करता था। परंतु यहां सुंदरदास जी ऐसे रुग्न हुए कि अंततोगत्वा उनका परमपद यहीं कार्तिक सुदि ८ सं० १७४६ में हुआ। अंत समय में ये साखियां आपने उच्चारण की थीं—

"मान लिये अंतःकरण जे इंद्रिनि के भोग।
सुंदर न्यारौ आतमा लग्यौ देह कौं रोग॥ १॥
वैद्य हमारे रामजी औषधि हू हरि नाम।
सुंदर यहै उपाय अब सुमरण आठौं जाम॥ २॥
सुंदर संशय को नहीं वडौ महुच्छव येह।
आतम परमातम मिल्यौ रहो कि विनसौ देह॥ ३॥
सात वरष सौ में घटै इतने दिन की देह।
सुंदर आतम अमर है देह षेह की षेह"॥ ४॥

इनकी समाधि सांगानेर में 'धाभाई जी के बाग' से

उत्तर की ओर है। एक छोटी सी गुमटी में सफेद पत्थर पर इनके और इनके छोटे शिष्य नारायणदास जी के चरणचिन्ह और यह चौपाई खुदी हुई है—

"संवत् सत्रासै छीआला। कातिक सुदी अष्टमी उजाला॥
तीजे पहर भरसपति वार। सुंदर मिलिया सुंदर सार॥"

शिष्य और थांभा।

सुंदरदासजी दादूदयाल के सबसे पिछले और अल्पवयस्क शिष्य थे परंतु कीर्ति में सबसे बड़े और सबसे पहले। दादू जी की बावन शिष्यों ने (जिनमें सुंदरदासजी एक हैं) अपने थांभा स्थापन किया, वाणियां बनाईं और शिष्य भी किए। सुंदरदासजी अधिकतर फतहपुर में रहे, और यहां इनका मकान आदि भी रहा, इस कारण यहीं इनका प्रधान थांभा गिना जाता है, और इसही से वे सुंदरदास "फतहपुरिया" भी कहलाते हैं। इनका नाम "प्रणाली" में इस प्रकार लिखा है।

"बीहाणी पिरागदास डीडवाणों है प्रसिद्ध।
सुंदरदास दूसर सु फतेपुर गाजही"॥

और राघवीय भक्तमाल में भी—

"प्रथम गरीब मिसकीन बाई द्वै सुंदरदासा"॥

दादूजी के 'सुंदरदास' नामी दो शिष्य थे। बड़े तो बीकानेर राज्यघराने के थे जिनकी सम्प्रदाय में नागाजमात है और दूसरे हमारे इस चरित्र के नायक हैं। सुंदरदासजी के अनेक शिष्यों में पांच प्रधान और स्थानधारी हुए। यथा—
"दूसर सुंदरदास के शिष्य पांच प्रसिद्ध हैं।" (राघवभक्तमाल)

टिकैत दयालदास १। श्यामदास २। दामोदरदास ३। निर्मलदास ४। नारायणदास ५। इनमें से नारायणदास सं १७३८ ही में रामशरण हो गए थे, और इनके शिष्य रामदास को फतेहपुर का स्थान मिला। शेष ४ अन्य स्थानों में जा बसे।

सुंदरदासजी के स्मारक चिह्न।

सुंदरदासजी के हाथ की लिखी वा लिखाई पुस्तकें उनके थांभाधारियों के पास विद्यमान हैं। उनकी समाधि सांगानेर में है। उनके स्थान और गुफा और कूप फतहपुर में हैं। उनके पलंग, चादर, टोपा, रूमाल आदि अनेक पदार्थ भी विद्यमान हैं तथा उनके चित्र भी रक्षित हैं।

ज्ञान और साहित्य में सुंदरदासजी का स्थान।

वेदांत विद्या, भक्तिमय ज्ञान को सुमधुर सरल और उच्च काव्य में नाना प्रकार से रचना करने और अद्वैत ब्रह्म विद्या के प्रचार करने और पहुंचवान होने के कारण दादूपंथियों ने इनको "द्वितीय शंकराचार्य" करके कहा है —

"संकराचारय दूसरो दादू के सुंदर भयो" (राघवीय भक्तमाल)

दादूजी के शिष्यों में इस उत्कृष्ट रीति की कविता करने वाला ज्ञानी दूसरा नहीं हुआ। यों तो शेष ५१ शिष्यों ने उत्तम उत्तम रचनाएँ की हैं परंतु सुंदरदास जी सर्व सम्मति से सर्वोत्तम माने जाते हैं। *

---

* इस ग्रंथ के आदि में स्वामी सुंदरदासजी के चित्र का फोटो है। जिससे यह लिया गया वह 'मोर' नामी ग्राम के साधुओं से, जो सुंद-

विचारने की बात है कि भाषा साहित्य में सूरदास तुलसीदास आदि के पीछे पराभक्ति और अद्वैत ज्ञान का कवि सुंदरदासजी के पल्ले का कौनसा है? नाना प्रकार के काव्य भेदों में इस ढंग की ईश्वर संबंधी रचना किसने की? यह विषय साहित्य पारंगत और वेदांत और भक्ति मार्गगामियों को विचारणीय है। और वह समय निकट है कि जब सुंदरदास जी का साहित्य में यह स्थान विद्वान् स्वयं निश्चित करेंगे।

जयपुर। मार्गशीर्ष १५
संवत् १९७२ वि०।

विनीत संग्रहकर्त्ता
पुरोहित हरिनारायण।

रदास जी के थांभे के हैं, प्राप्त हुआ था। यह 'मोर' ग्राम राज्य जयपुर के जिले मालपुर में है और वहां वे साधु रहा करते हैं। हमारे स्वर्गवासी मित्र लाला आनंदी लाल जी दूणी राजमहलवालों की कृपा से चित्र मिला था।

सूचीपत्र।

सुंदरसार ।

(१) अथ ज्ञानसमुद्र-सार ।

(नोट—ग्रंथकर्ता श्री स्वामी सुंदर दास जी अद्वैत निर्गुणमार्गियों की शैली से आदि में मंगलाचरण कर के ग्रंथ के विषय प्रयोजन आदि को बताते हैं और ग्रंथनाम की सार्थकता समुद्र के रूपक से, निबाहते हैं। इस ज्ञानसमुद्र की भूमिका-संबंधिनी कुछ बातें पूर्व में ग्रंथ-भूमिका में लिख आए हैं सो उन्हें वहां देखना चाहिए। ग्रंथ के प्रारंभिक उपयोगी छंद यहां लिखे जाते हैं)

(१) गुरु-शिष्य-लक्षण-निरूपण ।

मंगलाचरण । छप्पय छंद ।

प्रथम वंदि परब्रह्म परम आनंद स्वरूपं ।
दुतिय वंदि गुरुदेव दियौ जिंहिं ज्ञान अनूपं ॥
त्रितिय वंदि सब संत जोरि कर तिनके आगयें ।
मन वच काम प्रणाम करत भय भ्रम सब भागय ॥
इहिं भांति मंगलाचरण करि सुंदर ग्रंथ बखानिये ।
तहँ विघ्न न कोऊ उप्पजय यह निश्चय करि मानिये ॥ १ ॥

---

१ वंदना अर्थात् नमस्कार कर के। २ संस्कृत रीति से द्वितीया वा कर्म्म विभक्ति का प्रयोग केवल छंद की सुमिष्टता बढाने को है, कुछ 'अनूपं' के साथ अनुप्रास के लिये नहीं। ३ जिसने। ४ आगे।

1292

(तीन को नमस्कार करने में अद्वैतपक्ष से प्रतिकूलता प्रतीत होती है। इसीलिये ग्रंथकर्त्ता इस दोष के परिहार निमित्त स्पष्टीकरण देते हैं।)

दोहा छंद।

ब्रह्म प्रणम्य[1] प्रणम्य गुरु पुनि प्रणम्य सब संत।
करत मंगलाचरण इमें[2] नाशत विघ्न अनंत ॥ २ ॥
उहै[3] ब्रह्म गुरु संत उह वस्तु विराजत येकै[4]।
बचन विलास विभाग त्रय वंदन भाव विवेकै[5] ॥ ३ ॥

(अब ग्रंथारंभ में ग्रंथ रचने की इच्छा और अपना विनय प्रगट करते हैं।)

दोहा छंद।

वरन्यौं चाहत ग्रंथ कौं कहा बुद्धि मम क्षुद्र।
अति अगाध मुनि कहत हैं सुंदर ज्ञानसमुद्र[6] ॥ ४ ॥

---

१ प्रणाम करके। २ इस प्रकार। ३ वही। ४ एक—अभेद ज्ञान से, अथवा गुरु और संत भी ब्रह्मरूप हैं, अथवा सिद्धांत में गुरुवेद भी मिथ्या है केवल ब्रह्म ही सत्य है इस विचार से एकत्व का कथन उपयुक्त है। ५ विचार, कहने मात्र में तीन भिन्न भिन्न पदार्थ हैं परंतु विवेक दृष्टि से भावना अद्वैत ब्रह्म ही की होती है अर्थात् ब्रह्म जो अपना आत्मा है, उसी को नमस्कार होता है। ६ यह उक्ति 'रघुवंश' के 'क्व सूर्यप्रभवो वंशः' इत्यादि का स्मरण दिलाती है—ज्ञान की समुद्र से तुलना, उसकी अगाधता, रत्नवत्ता आदि हेतुओं से, दी गई है।

चौपाई छंद।

ज्ञान-समुद्र ग्रंथ अब भाषौं।
बहुत भांति मन महिं अभिलाषौं॥
यथाशक्ति हौं वरनि सुनाऊँ।
जो सद्गुरु पहिं आज्ञा पाऊँ[1]॥५॥

सोरठा छंद।

है यह अति गंभीर[2] उठत लहरि[3] आनंद की।
मिष्ट[4] सुधाको नीर सकल[5] पदारथ मध्य है॥६॥

इंदव छंद।

जाति जिती[6] सब[7] छंदनि की बहु सीप भई इहिं सागर माहीं।
है तिन में मुक्ताफल अर्थ, लहैं उनकौं हितसौं अवगाहीं[8]॥

---

१ पाता हूं। 'जौ' इस शब्द का अर्थ 'जो कुछ' 'जैसी कि' ऐसा होना उचित है, इस का अर्थ 'यदि' ऐसा नहीं करना चाहिए। २ गहरा। अंतर्गत वर्णित विषयों से तथा अगाध होने से। ३ समुद्र में लहरें (हिलोरे) भी होनी चाहिएँ सो इस ज्ञानसमुद्र में आनंद ही की लहरें हैं। इसीसे विभागों को उल्लास नाम दिया है। ४ मीठा। पृथ्वी के समुद्र का जल तो खारा होता है। इस समुद्र में विशेषता वा अधिकता वा उत्कृष्टता यह है कि जल इसका मीठा (अर्थात् अमृत) है। ज्ञान को अमृत की उपमा भी दी जाती है। ५ सारे। सिद्धांत में ज्ञान से बाहर कोई भी चिंतनीय पदार्थ नहीं है। कथा-प्रसिद्ध समुद्रमथन में कतिपय पदार्थ ही मिलना संभव हुआ, इस ज्ञान के समुद्रमथन से यावन्मात्र पदार्थों की प्राप्ति होती है, यह विशेषता है। ६ जितनी। ७ 'सब' शब्द से बहुत का अर्थ लेना। जो प्रशस्त वा विख्यात छंद हैं उनमें से प्रायः सब। ८ पैरे अर्थात् मनन करे।

सुंदर पैठि सकै नहिं जीवत दै डुबकी¹ मरिजीवैंहिं² जाहीं।
जे नर जान कहावत हैं, अति गर्व भरे तिनकी गम नाहीं ॥ ७ ॥

(ग्रंथ की सार्थकता कह कर उसके अधिकारी का लक्षण कहते हैं)

जिज्ञासु लक्षण। सवैया छंद।

जे गुरुभक्त विरक्त जगत सौं है जिनकै संतनि कौ भाव।
वै यज्ञास उदास रहत हैं गनत न कोऊ रंक न राव॥
वाद विवाद करत नाहिं कवहूं वस्तु जानिबे कौ अति चाव।
सुंदर जिनकी मति है ऐसी ते पैठहिंगे या दरियाव॥ ८॥

छप्पय छंद।

सुत कलत्र निज देह आपुकौं बंधन जानत।
छूटौं कौन उपाय इहै उर अंतर आनत॥
जन्म मरन की शंक रहै निसि दिन मन माहीं।
चतुराशी के दुःख नहीं कछु वरने जाहीं॥
इहि भांति रहै सोचत सदा संतनि को पूछत फिरै।
को है ऐसो सद्गुरु कहीं जो मेरो कारज करै॥ ९॥

(जिज्ञासु ज्ञानप्राप्ति के निमित्त सद्गुरु को खोजता है। यह कहकर गुरु की उपयोगिता और आवश्यकता चोपइया छंद में कहते हैं कि सीधा रास्ता गुरु बिना नहीं मिलता है न भक्ति मिलती, न संशय मिटता और न ज्ञान की प्राप्ति होती। अंततोगत्वा सद्गति की प्राप्ति भी गुरु पर निर्भर है। इसी को त्रोटक छंद कर के भी कहा है। फिर उसी का सार मनहर छंद से बताते हैं।)

---

१ डुबकी, गोता। २ गोताखोर—"मुरजीवा" की नाईं प्रथम मरण मांडे फिर जीवे।

मनहर छंद ।

गुरु के प्रसाद बुद्धि उत्तम दिशा को ग्रहै ।
गुरु के प्रसाद भव दुःख बिसराइये ॥
गुरु के प्रसाद प्रेम प्रीति हू अधिक बाढ़ै ।
गुरु के प्रसाद रामनाम गुन गाइये ॥
गुरु के प्रसाद सब योग की युगैति जानै ।
गुरु के प्रसाद शून्यै में समाधि लाइये ॥
सुंदर कहत गुरुदेव जो कृपाल होहिं ।
तिनके प्रसाद तत्वज्ञानै पुनि पाइये ॥ १२ ॥

(इसी को दोहा छंद में साररूप और ज्ञान प्रकाश को सूर्यवत् गुरु को निमित्त कह कर अब गुरु के लक्षण बताते हैं कि गुरु कैसे होने चाहिएँ)

गुरु-लक्षण । रोला छंद ।

चित्त ब्रह्म लयलीन नित्य शीतल हि सुहिर्दयै ।
क्रोधरहित सब साँधि साधुर्पद नाहिंन निर्दयं ॥
अहंकार नहिं लेश महाँन सबनि सुख दिज्जय ।
शिष्य परष्य विचारि जगत महिं सो गुरु किज्जय ॥ १४ ॥

---

१ प्रसन्नता, कृपा । २ दिशा = गति । ग्रहे = ग्रहण करे । ३ युक्ति, कुंजी, क्रिया । ४ निर्विकल्प समाधि । ५ तत्त्वज्ञान—शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति । ६ हृदय । ७ साधन वा कर्म करके । ८ साधु के पद वा स्थान (दरजा—कक्षा) के अर्थ गुणसमूह । नाहिं 'साधुपद' के साथ लगाने से—साधु के योग्य वा अर्थ कर्मशेष नहीं रहा । अथवा 'नाहिंन' एक रखें तो 'कदापि नहीं' ऐसा अर्थ । ९ अत्यंत दयामय । १० महान सुख सबको दीजे (देवे) । ११ परख कर । परीक्षा कर ।

छप्पय छंद।

सदा प्रसन्न सुभाव प्रगट सर्वोपरि राजय।
तृप्त ज्ञान विज्ञान अचल कूटस्थं[1] विराजय॥
सुखनिधान सर्वज्ञ मान अपमान न जानै।
सारासार विवेक सकल मिथ्या भ्रम भानै[2]॥
पुनि भिद्यंते हृदि ग्रंथि कौं छिद्यंते[3] सब संशयं।
कहि सुंदर सो सद्गुरु सही चिदानंदघन चिन्मयं[4]॥१५॥

पमंगम छंद।

शब्द ब्रह्म[5] परब्रह्म[6] भली विधि जानई।
पंच तत्व गुन तीन मृषा[7] करि मानई॥
बुद्धिमंत सब संत कहैं गुरु सोइरे।
और ठौर शिष जाइ भ्रमैं जिन[8] कोइरे॥ १६॥

(इसी खोज को नंदा आदि छंदों में पुनः कह कर गुरु की प्राप्ति वर्णन करते हैं। जिज्ञासु को गुरु यथारुचि प्राप्त होगया तो फूले अंग न समाया। गुरु दर्शन कर कृतकृत्य हुआ और विनीत भाव से प्रणाम कर उसी आनंद की धुन में प्रार्थना करने लगा।)

---

१ "ज्ञान-विज्ञान-तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः"—गीता। कूटस्थ = निर्लिप्त, अटल। २ किसी किसी पुस्तक में 'मानैं' पाठ है। भानै = प्रकाशै सूर्य्य सम। ३ संस्कृत के बहुवचन पाठ ही धर दिए हैं। आदर सूचकता में काटते—मिटाते हैं। ४ निरामय-पद-प्राप्ति की अवस्था में शुद्ध चेतन का जो विशेषण सो ही गुरु का लिखा है। ५ वेद शास्त्र। ६ तिर्यगात्मा। ७ मिथ्या। ८ मत।

शिष्य की प्रार्थना। अर्द्ध भुजंगी।

अहो देव स्वामी अहं[1] अज्ञ[2] कामी।
कृपा मोहिं[3] कीजै अभैदानं[4] दीजै॥ १॥
बड़े भाग्य मेरे लहे अंघ्रि[5] तेरे।
तुम्हैं देखि जीजै अभैदान दीजै॥ २॥
प्रभू हौं अनाथा गहौ मोर हाथा।
दया क्यों न कीजै अभैदान दीजै॥ ३॥
दुखी दीन प्राणी कहौ ब्रह्म वाणी।
हृदौ प्रेम भीजै[6] अभैदान दीजै॥ ४॥
यती जैन[7] देखे सबै भेष पेषे।
तुम्हैं चित्त धीजै अभैदान-दीजै॥ ५॥
फिर्यौ देश देशा किये दूरि केशा।
नहीं यौं पतीजै अभैदान दीजै॥ ६॥
गयो आयु सारो भयौ सोच भारो।
वृथा देह छीजै अभैदान दीजै॥ ७॥
करो मौज ऐसी रहै बुद्धि वैसी।
सुधा[8] नित्य पीजै अभैदान दीजै॥ ८॥२९॥

---

१ मैं। २ अज्ञानी, मूर्ख। ३ संस्कृत की 'मम कृपा' का अनुवाद। मोहि = मुझ पै। ४ संशय सागर के जन्ममरण रूपी डर से मुक्त कीजिए सो स्वात्मानुभव से प्राप्त होता है। ५ चरण। ६ भीगै। ७ अनीश्वर-वादी सांख्य के अनुयायी। यहां चोज यह है कि जिज्ञासु को सर्व मतांतर का यहां तक कि जैन मत तक का देख भाल करलेनेवाला दरसाया है। ८ सर्व। तमाम आयु जाने से यह दरसाया कि शिष्य बड़ी वय का है, बालक नहीं। ९ ज्ञानरूपी अमृत।

(शिष्य की इस सच्ची प्रार्थना को सुन, उसकी जिज्ञासा का निश्चय कर जान लिया कि यह अधिकारी है, वे उस पर प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे ज्ञानदान का वरदान दिया। शिष्य संतुष्ट हुआ और अब उसने अपने संशय-विपर्य्यय की निवृत्ति के लिये गुरु से सविनय प्रश्न किए जिनके गुरु ने प्रसन्न हो उत्तर दिए सो ही दिखाते हैं।)

शिष्य का प्रश्न। पद्धड़ी छंद।

कर जोरि उभय शिष करि प्रणाम।
तब प्रश्न करी[1] मन धरि विराम[2]॥
हौं कौन कौन यह जगत आँहि[3]।
पुनि जन्म मरण प्रभु कहहु काहि॥ ३१॥

श्रीगुरुरुवाच। उत्तर।

वोधक छंद।

है चिदानंदघन ब्रह्म तूं सोई।
देह संयोग जीवत्व भ्रम होई॥
जगत हू सकल यह अनछैतौ[4] जानौ।
जनम अरु मरण सब स्वप्न[5] करि मानौ॥ ३२॥

शिष्य उवाच। गीतक छंद।

जो चिदानंद स्वरूप स्वामी ताहि भ्रम कहि क्यों भयो।
तिहिं देह के संयोग ह्वै जीवत्व मानिर्[6] क्यों लयो॥

---

१ प्रश्न शब्द को स्त्रीलिंग माना है। २ धीरज। ३ है। ४ अन = नहीं, छतौ = होता। ५ प्रतीत होनेवाला, अर्थात् जैसा दीखता है वैसा वास्तव में नहीं है। ६ मान कर। माना।

यह अनछतौ संसार कैसे जो प्रत्यक्ष[1] प्रमानिये ।
पुनि जन्म मरण प्रवाह कथकौ स्वप्न करि क्यौं जानिये ॥३३॥

श्रीगुरुरुवाच । दोहा छंद ।

भ्रम ही कौं भ्रम[2] ऊपज्यौ चिदानंद रस येक ।
मृगजल प्रत्यक्ष देखिये तैसे जगत विवेक ॥ ३४ ॥

चौपाई छंद ।

निद्रा महिं सूतौ है जौ लौं । जन्म मरण कौ अंत न तौ लौं ।
जागि परें तें सुप्न[4] समाना । तव मिटि जाइ सकल अज्ञाना ॥३५॥

शिष्य उवाच । सोरठा छंद ।

स्वामिन् यह संदेह जागै सोवै कौन सो ।
ये तो जड़ मन देह भ्रम को भ्रम कैसे भयो ॥ ३६ ॥

(जब शिष्य ने बुद्धि की मलिनता के कारण प्रज्ञावाद रुपी प्रश्न किए तो गुरु ने कारण की निवृत्ति के निमित्त प्रथम अंत:करण के मलविक्षेप आवरण दोषों को मिटाने का प्रयोजन यों कहा ।)

श्रीगुरुरुवाच । कुंडलिया छंद ।

शिष्य कहां लौं पूछिहै मैं तो उत्तर दीन ।
तव लग चित्त न आइहै जब लग हृदय मलीन ॥

---

१ प्रत्यक्ष का सुख । २ अविद्याजन्य उपाधि । ३ मृगतृष्णा-वस्तुतः कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जैसा दिखता है । विपरीत ज्ञान के रूप से प्रत्यक्ष जल सा दिखाई देता है । ऐसे ही वस्तुतः जगत है नहीं, परंतु सत्य भासता है। ४ स्वप्न—अथवा अविद्या का लय वा नाश ज्ञानोत्पत्ति से हो जाने पर जगत स्वप्न सा प्रतीत होगा।

जब लग हृदय मलीन यथारथ[1] कैसे जानै ।
भ्रमैं त्रिगुन मय बुद्धि[2] आपु नाहिन पहिचानै ॥
कहिवो सुनवो करौ ज्ञान उपजै न जहां लौं ।
मैं तो उत्तर दियो पूछिहै शिष्य कहां लौं ॥३७॥[3]

---

(२) भक्ति निरूपण ।

(अब शिष्य मन की शुद्धि के उपाय पूछता है और गुरु उसको बताता है कि इसके तीन उपाय प्रधान हैं भक्ति, हठयोग और सांख्य ज्ञान । सो इस उल्लास में भक्ति का वर्णन है । शिष्य के फिर पूछने पर गुरु नवधा भक्ति प्रेमलक्षणा पराभक्ति को क्रमशः कहता है ।)

श्रीगुरुरुवाच । सवैया छंद ।

प्रथमहिं नवधा भक्ति कहत हौं नव प्रकार हैं ताके भेद ।
दशमी प्रेमलक्षणा कहिये सो पावै जो ह्वै निर्वेद ॥
पराभक्ति है ताके आगै सेवक सेव्य न होइ विछेद ।
उत्तम मध्य कनिष्ठ तीन विधि सुंदर इनतैं मिटिहैं खेद ॥४॥

(इस पर शिष्य ने प्रत्येक भेद को विशेष रूप से सुनने की उत्कंठा प्रगट की । उत्तम मध्यम कनिष्ठ प्रकार की क्या रीति होती है सो पूछा तो गुरु ने कहना प्रारंभ किया ।)

श्रीगुरुरुवाच । चौपाई छंद ।

सुनि शिष नवधा भक्ति विधानं ।
श्रवण कीर्त्तन समरण जानं ॥

---

१ पढ़ने में यथारथ ऐसा लिखा गया । २ बुद्धि वा महत्तत्त्व सत-रज-तम से व्याप्त है । देशकाल निमित्त के आधार बिना कोई वस्तु-ज्ञान बुद्धि वा मन में हो नहीं सकता । ३ कुंडलिया के आदि में 'पूछि है' पीछे आया है और अंत में पहले ।

पादसेवनं अर्चन वंदन ।
दासभाव सख्यत्व समर्पन ॥ ६ ॥

१–श्रवण । चंपक छंद ।

शिष तोहि कहौं श्रुति बानी[1] । सब संतनि[2] साखि बखानी ।
द्वै रूप ब्रह्म के जानै । निर्गुन अरु सगुन पिछानै ॥११॥

निर्गुन निजरूप नियारा । पुनि सगुन संत अवतारा ।
निर्गुन की भक्ति सु-मन सौं । संतनि की मन अरु तन सौं॥१२॥

येकाग्र हि चित्त जु राखै ।
हरिगुन सुनि सुनि रस चाखै ॥
पुनि सुनै संत के बैना ।
यह श्रवण भक्ति मन चैना ॥ १३ ॥

२–कीर्त्तन ।

हरि गुन रसना[3] मुख गावै ।
अतिसै करि प्रेम बढ़ावै ॥
यह भक्ति कीर्त्तन कहिये ।
पुनि गुरु प्रसाद तैं लहिये ॥१४॥

---

१ वेदवाक्य । उपनिषदों में तथा संहिताओं में भी ब्रह्म के सगुण निर्गुण रूप का विचार है । वेदांत में ईश्वर शब्द से सगुण ब्रह्म ही लिया गया है । २ संत शब्द से ऋषि मुनि महात्मा का अर्थ है जिनको ब्रह्मानंद की प्राप्ति हुई और जिन्होंने 'तद्दर्शनात्' ऐसे ऐसे वाक्यों से उसकी पुष्टि की है । साखि = साक्षी, प्रमाण वाणी । ३ जिव्हा । मुख कहने से उच्चारण के करण को बलवान् होना जताया है ।

३–स्मरण।

अब समरन दोइ प्रकारा।
इक रसना नाम उचारा॥
इक हृदय नाम ठहरावै।
यह समरन भक्ति कहावै॥१५॥

४–पादसेवन।

नित चरण कँवल महिं लोटै।
मनसा करि पाव पलोटै॥
यह भक्ति चरन की सेवा।
समुझावत है गुरु देवा॥१६॥

५–अर्चना। गीता छंद।

अब अरचना को भेद सुनि शिष देऊँ तोहिं बताइ।
आरोपिकै तहं भाव[1] अपनौ सेइये मन लाइ॥
रचि भाव को मंदिर अनूपम अकल मूरति माहिं।
पुनि भावसिंघासन विराजे भाव विनु कछु नाहिं॥१७॥
निज भाव की तहां करै पूजा, बैठि सनमुख दास।
निज भाव की सब सौंजैं[2] आनै, नित्य स्वामी पास॥
पुनि भाव ही कौ कलस भरि धरि, भावनीर न्हवाइ।
करि भाव ही के बसन बहु विधि, अंग अंग बनाइ॥१८॥

---

१ 'भावो हि विद्यते देवाः' इस प्रमाण से अपने प्रिय इष्ट को अपने मनोराज्य का स्वामी बना कर अंतःकरण में ध्यान करे।
२ सामग्री पूजन की।

तहँ भाव चंदन भाव केसरि भाव करि घसि लेहु ।
पुनि भाव ही करि चरचि स्वामी तिलक मस्तक देहु ॥
लै भाव ही के पुष्प उत्तम गुहै माल अनूप ।
पहिराइ प्रभु कौं निरखि नख सिख भाव षेवै धूप ॥१९॥
तहँ भाव ही लै धरै भोजन भाव लावै भोग ।
पुनि भाव ही करि कैं समर्प्यैं सकल प्रभु कैं योग ॥
तहां भाव ही कौ जोइ दीपक भाव घृत करि सींचि ।
तहां भाव ही की करै थाली धरै ताके बीचि ॥२०॥
तहां भाव ही की घंट झालरि संख ताल मृदंग ।
तहां भाव ही के शब्द नाना रहै अतिसै रंग ॥
यह भाव ही की आरति करि करै बहुत प्रनाम ।
तब स्तुति बहु विधि उच्चरै धुनि सहित लैलै नाम ॥२१[1]॥

(यह केवल मानसिक पूजा का विधान लिखा है । क्योंकि कर्मेंद्रिय से पूजन होता है यह तो प्रसिद्ध ही है । वही विधान मन द्वारा कह दिया गया है । मन की शुद्धि के लिये ही पूजन उपासना रखी गई है । फिर आरती के साथ स्तुत्यष्टक दिया है उसी का एक छंद लिखते हैं।)

---

१ यह जानने की बात है कि दादूजी का अटल सिद्धांत था कि परमात्मा की प्राप्ति बाह्य पदार्थों के विचार से नहीं हो सकती । अपने अंदर ही खोजना चाहिए । इस बात को उन्होंने और उनकी सम्प्रदाय के महात्माओं ने बड़े बल के साथ प्रतिपादन किया है । इनकी मूल सम्प्रदाय कहाती है । बाह्य प्रतीक मूर्त्ति आदि के पूजनादि का विधान इनके यहां नहीं रखा गया है ।

अथ स्तुति । मोतीदाम छंद ।

अहो हरिदेव न जानत सेव । अहो हरिराई परौं तव पाइ ॥
सुनौं यह गाथ गहौ मम हाथ । अनाथ अनाथ अनाथ अनाथ ॥२२॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

६—वंदना । लीला छंद ।

वंदन दोई प्रकार कहौं शिष संभेलियं[1] ।
दंड समान करै तन सौं तन दंड दियं[2] ॥
त्यौं मन सौं तन मध्य प्रभू कर[3] पाइ परै ।
या विधि दोइ प्रकार सुवंदन भक्ति करै ॥३१॥

७—दास्यत्व । हंसाल छंद ।

नित्य भय सौं रहै हस्त जोरें कहै ।
कहा प्रभु मोहि आज्ञा सु होई ॥
पलक पतिव्रता पति वचन खंडै नहीं ।
भक्ति दास्यत्व शिष जानि सोई ॥३२॥

८—सख्यत्व । डुमिला छंद ।

सुनि शिष्य सखापन तोहि कहौं, हरि आतम कै नित संग रहै ।
पल छाड़त नाहिं समीप सदा, जित ही जित को यह जीव वहै ॥
अब तूँ फिरिकैं हरि सों हित राखहि, होइ सखा दृढ भाव गहै ।
इम सुंदर मित्रन मित्र तजै, यह भक्ति सखापन वेद कहै ॥३३॥

९—आत्मसमर्पण । कुंडली छंद ।

प्रथम समर्पन मन करै, दुतिय समर्पन देह ।
तृतिय समर्पन धन करै, चतुः समर्पन गेह ॥

---

१ सम्हलना । २ दंडवत साष्टांग करना । ३ कर = के ।

गेह दारा धनं, दास दासी जनं ।
वाज हाथी गनं, सर्व दै यौं भनं ॥
और जे मे मनं, है प्रभू ते तनं ।
शिष्य बानी सुनं, आतमा अर्पनं ॥ ३४ ॥ *

(यह नवधा भक्ति का प्रकार हो चुका जिसको कनिष्ठा भी कहते हैं । अब शिष्य के पूछने पर प्रेमलक्षणा वा मध्यमा भक्ति का गुरु वर्णन करते हैं ।)

श्रीगुरुरुवाच । इंदव छंद ।

प्रेम लग्यौ परमेश्वर सौं तब भूलि गयौ सबही घर बारा ।
ज्यौं उनमत्त फिरै जित ही तित नैंकु रही न शरीर सँभारा ॥
स्वास उस्वास उठैं सब रोम चलै दृग नीर अखंडित धारा ।
सुंदर कौन करै नवधा विधि छाकि पर्‌यौ रस पी मतवारा ॥ ३८ ॥

नराये[1] छंद ।

न लाज कानि लोक की, न वेद कौ कह्यौ करै ।
न शंक भूत प्रेत की, न देव यक्ष तैं डरै ॥
सुनैं न कान और की, दृशै न और अक्षणौ[2] ।
कहै न मुक्ख और बात, भक्ति प्रेमलक्षणा ॥ ३९ ॥

रंगिका छंद ।

निसि दिन हरि सौं चित्तासक्ति, सदा ठग्यौ सो रहिये ।
कोउ न जानि सकै यह भक्ति, प्रेमलक्षणा कहिये ॥ ४० ॥

---

* कुंडलिया छंद से कुछ भेद है । कुंडली में दोहा के पीछे चंदाना छंद आया है जिसको विमोहा कहते हैं । १ नाराच छंद को नराय लिखा है । २ आंख से (अक्षिणा तृतीया का रूपांतर) ।

विज्जुमाला छंद ।

प्रेमाधीना छाक्या डोलै । क्यौं का क्यौं ही वानी बोलै ।
जैसैं गोपी भूली देहा । ताकौं चाहै जासौं नेहा ॥४१॥

छप्पय्य छंद ।

कबहूँ कै हँसि उठै नृत्य करि रोवन लागय ।
कबहूँ गद्गद कंठ शब्द निकसै नहिं आगय ॥
कबहूँ हृदय उमँगि बहुत उच्चय सुर गावै ।
कबहूँ कैं मुख मौंनि मग्न ऐसैं रहि जावै ॥
तौ चित्त वृत्य हरि सौं लगी सावधान कैसैं रहै ।
यह प्रेमलक्षणा भक्ति है शिष्य सुनिहिं सद्गुरु कहै ॥४२॥

मनहर छंद ।

नीर विनु मीन दुखी क्षीर विनु शिशु जैसैं ।
पीर मैं औषध विनु कैसैं रह्यो जात है ॥
चातक ज्यौं स्वाति बूंद चंद कौं चकोर जैसे ।
चंदन की चाहि करि सर्प अकुलात है ॥
निर्धन ज्यौं धन चाहै कामिनी कौं कंत चाहै ।
ऐसी जाकैं चाहि ताकौं कछू न सुहात है ॥
प्रेम कौ प्रभाव ऐसौ प्रेम तहां नेम कैसो ।
सुंदर कहत यह प्रेम ही की बात है ॥ ४३ ॥

चौपइया छंद ।

यह प्रेम भक्ति जाकैं घट होई, ताहि कछू न सुहावै ।
पुनि भूष तृषा नहिं लागै वाकौं, निस दिन नींद न आवै ॥

मुख ऊपरि पीरी स्वासा सीरी, नैनहु नीझर लायौ।
ये प्रगट चिन्ह दीसत हैं ताके, प्रेम न दुरै दुरायौ ॥४४॥

दोहा छंद।

प्रेम भक्ति यह मैं कही जानैं बिरला कोइ।
हृदय कलुषता[1] क्यों रहै जा घटि ऐसी होइ ॥ ४५ ॥

[इस प्रकार प्रेमलक्षणा के लक्षण सुन प्रेममग्न हो शिष्य ने गुरु से पराभक्ति (उत्तमा) के जानने की उत्कंठा प्रगट की, तो गुरु ने उसकी श्रद्धा जान कर पराभक्ति का कहना प्रारंभ किया।]

अथ परा[2]भक्ति। इंदव छंद।

सेवक सेव्य मिल्यौ रस पीवत भिन्न नहीं अरु भिन्न सदा हीं।
ज्यौं जल बीच धर्‍यौ जलपिंड सुपिंडरु नीर जुदे कछु नाहीं॥
ज्यौं दृग मैं पुतरी दृग येक नहीं कछु भिन्न सु भिन्न दिखाहीं।
सुंदर सेवक भाव सदा यह भक्ति परा परमातम माहीं॥४९॥

छप्पय छंद।

श्रवण बिना धुनि सुनय नैन बिन रूप निहारय।
रसना बिन उच्चरय प्रशंसा बहु बिस्तारय॥
नृत्य चरन बिन करय, हस्त बिन ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग बहुत आनंद बढ़ावै॥
बिन सीस नवै तहँ सेव्य कौं सेवक भाव लिये रहै।
मिलि परमातम सौं आतमा पराभक्ति सुंदर कहै॥५०॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

---

१ पाप वासना। २ पर शब्द का अर्थ दूर, ऊँचा सूक्ष्म वा बलवान् का है तथा श्रेष्ठ का भी है।

तोटक छंद ।

हरि मैं हरिदास विलास करै । हरि सौं कवहूं न विछोह परै ॥
हरि अक्षय[१] त्यौं हरिदास सदा । रस पीवन कौं यह भाव जुदा ॥५४॥

मनहर छंद ।

तेजोमय स्वामी तहँ सेवक हू तेजोमय,
तेजोमय चरन कौं तेज सिर नावई ।
तेजोमय सब अंग तेजोमय मुखारविंद,
तेजोमय नैंननि निरखि तेज भावई ॥
तेजोमय ब्रह्म की प्रशंसा करै तेज मुख,
तेज ही की रसना गुनानुवाद गावई ।
तेजोमय सुंदर हू भाव पुनि तेजोमय,
तेजोमय भक्ति कौं तेजोमय पावई ॥ ५५ ॥

---

(३) अष्टांगयोग निरूपण ।

[द्वितीयोल्लास में वर्णित मन की शुद्धि के तीन साधनों—भक्ति, योग और सांख्यज्ञान—में से भक्ति का वर्णन सुन कर, अब शिष्य योग मार्ग गुरु से पूछता है । उत्तर में गुरु अष्टांग योग को कहते हैं । यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, और इनके अंतर्भूत प्रकार भी कहते हैं ।]

दश प्रकार के यम ।

श्रीगुरुरुवाच । छप्पय छंद ।

प्रथम अहिंसा सत्यहि जानि स्तेय सु त्यागै ।
ब्रह्मचर्य हृढ़ गहै क्षमा धृति सौं अनुरागै ॥

---

१ अक्षर, अखंड, नित्य, अमर ।

दया बड़ौ गुन होइ आर्जव हृदय सु आनै ।
मिताहार पुनि करै शौच नीकी बिधि जानै ॥
ये दश प्रकार के यम कहे हठप्रदीपिका ग्रंथ महिं ।
सो पहिलैं हीं इनकौं ग्रहै चलत योग के पंथ महिं ॥ ८ ॥

(१) अहिंसा के लक्षण । दोहा ।

मन करि दोष न कीजिये वचन न लावै कर्म ।
घात न करिये देह सौं इहै अहिंसा धर्म ॥ ९ ॥

(२) सत्य के लक्षण । सोरठा ।

सत्य सु दोइ प्रकार, एक सत्य जो बोलिये ।
मिथ्या सब संसार, दूसर सत्य सु ब्रह्म है ॥१०॥

(३) अस्तेय के लक्षण । चौपाई ।

सुनिये शिष्य अबहिं अस्तेयं । चोरी द्वै प्रकार की हेयं ॥
तनु की चोरी सबहिं बखानैं । मन की चोरी मन ही जानैं ॥११॥

(४) ब्रह्मचर्य्य के लक्षण । पमंगम छंद ।

ब्रह्मचर्य्य इहिं भांति भली बिधि पालिये ।
काम सु अष्ट * प्रकार सही करि टालिये ॥
बाँधि काछ दृढ़ वीर-जती नहिं होइ रे ।
और बात अब नाहिं जितेंद्रिय कोइ रे† ॥१२॥

(५) क्षमा के लक्षण । मालती छंद ।

क्षमा अब सुनहिं शिष मोसौं । सहनता कहहुँ सब तोसौं ॥
दुष्ट दुख देहिं जो भारी । दुसह मुख वचन पुनि गारी ॥१५॥

---

* आठ प्रकार के मैथुन त्याग को ब्रह्मचर्य्य का प्रधान अंग कहा है ।

† केवल लंगोट लगाने से यति नहीं हो सकता किंतु उक्त अष्ट प्रकार मैथुनत्याग ही से ।

क्रहे नहिं क्षोभ कौं पावै । उदधि महिं अग्नि बुझि जावै ।*
बहुरि तन त्रास दे कोऊ । क्षमा करि सहै पुनि सोऊ ॥१६॥

(६) धृति के लक्षण । इंदव छंद ।

धीरज धारि रहै अभि-अंतर जौ दुख देहहिं आइ परै जू ।
बैठत ऊठत बोलत चालत धीरज सौं धरि पाव धरै जू ॥
जागत सोवत जीमत पीवत धीरज ही धरि योग करै जू ।
देव दयंतहि भूतहि प्रेतहि कालहु सौं कबहूँ न डरै जू ॥१७॥

(७) दया के लक्षण । तोटक छंद ।

सब जीवनि के हितकी जु कहै,
मन वाचक काय दयालु रहै ।
सुखदायक हू सम भाव लियें,
शिष जानि दया निरवैर हियें ॥१८॥

(८) आर्जव लक्षण । चौपइया छंद ।

यह कोमल हृदय रहै निसि वासर बोले कोमल बानी ।
पुनि कोमल दृष्टि निहारै सबकौं कोमलता सुखदानी ॥
ज्यौं कोमल भूमि करै नीकी विधि बीज वृद्धि ह्वै आवै ।
त्यौं इहै आर्जव लक्षण सुनि शिष योग सिद्धि कौं पावै ॥१९॥

(९) मिताहार के लक्षण । पद्धड़ी छंद ।

जो सात्विक अन्न सु करै भक्ष ।
अति मधुरस चिक्कण निरखि अक्ष ।

---

* क्षमारूप समुद्र में क्षोभ (क्रोध–चिढ़न) रूपी आग पड़ते ही बुझ जावे ।

१ अविचलता–किसी विकार वा विघ्न से न घबराना–शांति और ध्यावस और निर्भीकता से सहज काम करना ।

तजि भाग चतुर्थयं[1] अहै सार ।
मुनि शिष्य कह्यो यह मिताहार ॥ २० ॥

(१०) शौच के लक्षण । चर्पट छंद ।

बाह्याभ्यंतर मज्जन करिये, मृतिका जल करि वपुमल हरिये।
रागादिक त्यागैं हृदि शुद्धं, शौच उभय विधि जानि प्रवुद्धं ॥२१॥

[अष्टांग योग का पहला अंग (दश) यम वर्णन करके, अब दूसरे अंग नियम का वर्णन करते हैं। ये दोनों स्तंभरूप हैं। साधु की सच्ची कसौटी यम नियम ही है।]

अथ नियम वर्णन ।

श्रीगुरुरुवाच । छप्पय छंद ।

तप संतोष हि अहै बुद्धि आस्तिक्य सु आनय ।
दान समुझि करि देइ मानसी पूजा ठानय ॥
वचन सिद्धांत सु सुनय लाज मति दृढ करि राखय ।
जाप करय मुख मौन तहां लग वचन न भाषय ॥
पुनि होम करै इहि विधि तहां जैसी विधि सद्गुरु कहै ।
ये दश प्रकार के नियम हैं भाग्य बिना कैसे लहै ॥२३॥

[अब प्रत्येक नियम का लक्षण अलग अलग कहते हैं]

(१) तप के लक्षण । पायका छंद ।

शब्द स्पर्श रूपं त्यजणं । त्यौं रस गंधं नाहीं भजणं ।
इंद्रिय स्वादं ऐसैं हरणं । सो तप जानहु नित्यं मरणं[2] ॥२४॥

१ अपनी तृप्ति जितने अन्न से हो उसका चौथाई भाग कम खाय।
२ नित्य अपने आप—अहंकार—को मारने (दमन) का अभ्यास करना तप है ।

(२) संतोष के लक्षण । हंसाल छंद ।

देह कौ प्रारब्ध[1] आय आपै रहै,
कल्पना छाड़ि निश्चिंत होई ।
पुनि यथालाभ कौं वेद मुनि कहत हैं,
परम संतोष शिष जानि सोई ॥२५॥

(३) आस्तिकता के लक्षण । सवैया छंद ।

शास्त्र वेद पुरान कहत हैं,
शब्द ब्रह्म कौं निश्चय धारि ।
पुनि गुरु संत सुनावत सोई,
बार बार शिष ताहि विचारि ॥
होइ कि नाहीं शोच मति आनहिं,
अप्रतीति हृदये तैं टारि ।
करि विस्वास प्रतीति आनि उर,
यह आस्तिक्य बुद्धि निरधारि ॥ २६ ॥

(४) दान के लक्षण । कुंडलिया छंद ।

दान कहत हैं उभय विधि, सुनि शिष करहिं प्रवेश ।
एक दान कर[2] दीजिये, एक दान उपदेश ॥
एक दान उपदेश सु तौ परमारथ होई ।
दूसर जल अरु अन्न वसन करि पोषै कोई ॥
पात्र कुपात्र विशेष भली भू निपजय धानं ।
सुंदर देखि विचारि उभय विधि कहिये दानं ॥ २७ ॥

---

१ भोग्यकर्म—जो पूर्वकृत कर्मसंस्कार रूप अवश्य भोक्तव्य होता है ।
२ हाथों से ।

(५) पूजा के लक्षण। त्रिभंगी छंद।

तौ स्वामी संगा, देव अभंगा, निर्मल अंगा, सेवै जू।
करि भाव अनूपं, पाती पुष्पं, गंधं धूपं, सेवै जू॥
नाहिं कोई आशा काटै पाशा, इहि बिधि दासा, निःकामं।
शिष ऐसैं जानय, निश्चय आनय, पूजा ठानय, दिन जामं[1]॥२८॥

(६) सिद्धांत श्रवण के लक्षण। कुंडलिया छंद।

बानी बहुत प्रकार है, ताकौ नाहिन अंत।
जोई अपने काम की, सोइ सुनिये सिद्धंत॥
सोइ सुनिये सिद्धंत संत सब भाषत वोई।
चित्त आनि कैं ठौर सुनिय नित प्रति जे कोई॥
यथा हंस पय पिवै रहै ज्यौं कौ त्यौं पानी।
ऐसैं लेहु विचारि शिष्य बहु बिधि है बानी॥२९॥

(७) ह्री के लक्षण। गीता छंद।

लज्जा करै गुरु संत जन की, तौ सरै सब काज।
तन मन डुलावै नाहिं अपनौं, करै लोकहु लाज॥
लज्जा करै कुल कुटुंब की, लच्छण[2] लगावै नांहि।
इहिं लाज तें सब काज होई, लाज गहि मन माहिं॥३०॥

(८) मति के लक्षण। सवइया छंद।

नाना सुख संसार जनित जे तिनहिं देषि लोलुप[3] नहिं होइ।
स्वर्गादिक की करिय न इच्छा, इहामुत्र[4] त्यागै सुख दोइ॥

---

1 पहर (याम)। २ दाग। लांछन। ३ लीन, रत। ४ इह=यहां का। अमुत्र=परलोक का।

पूजा[1] मान बड़ाई आदर, निंदा करै आइकैं कोइ।
या प्रकार मति निश्चल जाकी, सुंदर दृढ़मति कहिये सोइ॥३१॥

(९) जाप के लक्षण। पमंगम छंद।

जाप नित्यव्रत धारि करै मुख मौन सौं।
येक दोइ घटि काजु महै मन पौन सौं॥
ज्यौं अधिक्य कछु होइ, बड़ौ अति भाग है।
शिष्य तोहि कहि दीन्ह भलौ यह माग है॥ ३२॥

(१०) होम के लक्षण। गीता छंद।

अब होम उभय प्रकार सुनि शिष, कहौं तोहि बषानि।
इक अग्नि मंहि साकल्य होमैं सो प्रवृत्ती जांनि॥
जो निवृत्ति यह्नास होई, ताहि औरन खोमैं[3]।
सो ज्ञान अग्नि प्रजाले नीकैं, करै इंद्रिय होम॥३३॥

[इस तरह नियम भी दशों कह दिए। यहां तक यम नियम दो पूर्व अंग योग के हो चुके। अब तीसरा अंग आसन बताते हैं। आसन क्रिया का हठ योग में बड़ा माहात्म्य है। आसनों के यथार्थ साधन से वीर्य स्थिर, स्वास्थ्य दृढ़, रोगादिक शमन, शरीर निर्मल, निर्विकार वातपित्तकफादि प्रकोप रहित होकर प्राणायामादि के उपयोगी बन जाता है। चित्त की शांति में सहायता मिलती है। आसनों की संख्या चौरासी लाख बताई है। परंतु प्रति लाख एक आसन को मुख्य लेकर अंततोगत्वा चौरासी आसन छांट रखे हैं। परंतु इस कलिकाल में इन चौरासी का ज्ञान और साधन भी जीवों को भार

१ मार्ग, रास्ता। २ निवृत्ति–संसारत्यागी जिज्ञासु। ३ पाठांतर सोम–सोम से अभिप्राय कर्तव्य का प्रतीत होता है।

ही है। इस लिये सुंदरदास जी ने तो दो आसन—सिद्धासन और पद्मासन वर्णन कर काम को हलका कर दिया। इन आसनों का प्रकरण हठप्रदीपिका, योगचिंतामणि आदि ग्रंथों में वर्णन किया है। परंतु गुरुगम्य है।]

सिद्धासन के लक्षण। मनहर छंद।

येड़ी वाम पांव की लगावै सींवनि के वीचि।
वाही जोनि ठोर ताहि नीकैं करि जानिये॥
तैसैं ही युगति करि विधि सौं भलैं प्रकार।
मेढहू के ऊपर दक्षन पांव आनिये॥
सरल[1] शरीर दृढ़ इंद्रिय संयम[2] करि,
अचल ऊर्द्ध दृश्य भ्रू के मध्य ठानियें।
मोक्ष के कपाट[4] कौं उघारत[3] अवश्यमेव,
सुंदर कहत सिद्ध आसन वखानियें॥ ४०॥

पद्मासन के लक्षण। छप्पय छंद।

दक्षिण उरु[5] उप्परय प्रथम वामहिं पग आनय।
वामहिं उरु उप्परय तबहिं दक्षिण पग ठानय[6]॥
दोऊ कर पुनि फेरि[7] पृष्टि पीछै करि आवय।
दृढ़ कैं ग्रहै अंगुष्ट चिबुक[8] वक्षस्थल[9] लावय॥

---

१ देह को कड़ा न रखै। २ मन सहित इंद्रियों का निरोध विषयों से। ३ भवांरे। ४ किवाड—परदा, द्वार। ५ जांघ। ६ रखै। ७ दाहिने हाथ से बायां पांव और बायें हाथ से दाहिना पांव। ८-९ ठोढ़ी को छाती से मिलावै।

1272

इहिं भांति दृष्टि उन्मेष[1] करि अग्र नासिका राखिये।
सब व्याधि हरण योगीन[2] की पद्मासन यह भाषिये॥४१॥

[सिद्धासन और पद्मासन को कह कर प्राणायाम के वर्णन के पूर्व नाड़ी और चक्रों का तथा वायु का कुछ कुछ निर्देश करते हैं। नाड़ी अनेक (१०९ वा १०१) हैं, उनमें दश प्रधान हैं और दश में भी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन अग्रवर्ती हैं। इडा वा चंद्र नाड़ी बांई तरफ और बाएँ स्वर से संबंध रखती है। पिंगला वा सूर्य दाहिनी तरफ और दाहिने स्वर से संबंध रखती है। इड़ा पिंगला के मध्य सुषुम्ना वा अग्नि मध्यमर्वती वा मेरुदंड तथा इड़ा पिंगला के अमाव संमेलन रूप होती है। इस तीसरी नाडी के साधन वा स्थिरता को ही योगी अपना लक्ष्य करते हैं। इसी का जानना कठिन है और इसी से योग सिद्धि मिलती है। दश प्रकार के पवन ये हैं—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान पांच तो ये और नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय ये पांच अन्य हैं। उनके स्थान कर्म बताते हैं। यथा—]

दश वायु स्थान कर्म वर्णन। कुंडलिया छंद।

प्राण हृदय मांहि बसत है गुद मंडले अपान।
नाभि समानहिं जानियें कंठहिं बसै उदान॥
कंठहिं बसै उदान व्यान व्यापक घट[3] सारे।
नाग करय उद्गर[4] कूर्म सो पलक उघारै॥
कृकल सु उपजे क्षुधा देवदत्तहिं जृंभाणं[5]।
मुयें धनंजय रहै पंचपूरव सो प्राणं॥४९॥

१ पलक नीचों करे। २ अन्य पुरुषों की भी व्याधि हर सकते हैं परंतु योगियों की विशेष करके, क्योंकि उन्हीं के हित के लिये शिवजी ने इनका उपदेश किया है। ३ शरीर। ४ डकार। ५ जम्हाई।

[दश वायुओं को कह कर षट्चक्रों का निर्देश करते हैं— १ आधार, २ स्वाधिष्ठान, ३ मणिपूरक, ४ अनाह, ५ विशुद्ध, ६ आज्ञा ये छः चक्र हैं। इन के स्थान आकार, वर्ण, देवता, लक्षण, कोष्टक से जानने चाहिए। इन चक्रों के नाम निर्देशादि से यह प्रयोजन है कि प्राणायामादि साधनों से इन चक्रों को भेदन करके सुषुम्ना मार्ग से समाधिसुख की प्राप्ति होती है। अब प्राणायाम की विधि दिखाते हैं।]

प्राणायाम क्रिया। दोहा छंद।

इड़ा नाड़ि पूरक करै, कुंभक राखै माहिं।
रेचक करिये पिंगला, सब पातक कटि जाहिं ॥५७॥

प्राणायाम की मात्रा। सोरठा छंद।

बीज[1] मंत्र संयुक्त, षोड़श पूरक पूरिये।
चवसठि कुंभक उक्त, द्वात्रिंशति[2] करि रेचना ॥५८॥

चौपाई छंद।

बहुरि विपर्यय[3] ऐसै धारै। पूरि पिंगला इड़ा निकारै॥
कुंभक राखि प्राण कौं जीतै। चतुर्वार अभ्यास व्यतीतै ॥५९॥

[इस प्रकार प्राणायाम की विधि कही। प्रथम दहने नथने को अँगूठे से दबा कर बायें से स्वास इतनी देर खींचे कि सोलह वार ॐकार मन में बुलजाय। यह पूरक हुआ। फिर बाएँ नथने को फौरन अनामिका उँगली से दबा कर छाती में स्वास इतनी देर रोकै कि ६४ वार ॐकार मन में बुल जाय। यह कुंभक हुआ। फिर दहिने नथने

---

१ ॐकार, वा जो अपने गुरु का दिया मंत्र हो। २ बत्तीस। ३ उलटा।

पर से अँगूठा धीरे धीरे हटाता जाय और स्वास आहिस्ता आहिस्ता निकाले इतनी देर में कि ३२ बार ॐकार बुल जाय। यह रेचक हुआ। एक ॐकार या एक चुटकी जितनी देर में बुले वा बजे इस काल को मात्रा कहते हैं। फिर इसी तरह उलटा प्राणायाम करे। पिंगला से पूरक कर के बीच में कुंभक रख कर इड़ा से रेचक करे। इस तरह चार बार प्राणायाम के जोड़ करे। इस अभ्यास को बढ़ाने से ही प्रत्याहार तक पहुँचना होता है। गोरक्षनाथ ने सोऽहं का जाप और पूरक कुंभक रेचक में बारह बारह मात्रा—समान मात्रा—से प्राणायाम करना बताया है। इन मात्राओं की संख्या अभ्यास में दूनी—२४—करने से मध्यम प्राणायाम, और तिगुनी ३६—करने से उत्तम प्राणायाम कहा है। इसके उपरांत कुंभक प्रकार, नाद, मुद्रा और बंध के नाम गिनाए हैं जिनकी उपयोगिता योग में प्रायः होती है]

सोरठा छंद।

कुंभक अष्टसु विद्धि मुद्रा दशहि प्रकार की।
बंध तीन तिनि मद्धि उत्तम साधन योग के ॥६४॥

[कुंभक आठ ये हैं—सूर्यभेदन, उज्जाई, शीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छना, केवल। दश मुद्रा ये हैं—महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्यान, मूलबंध, जालंधरबंध, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालन। अष्टक कुंभ के साधन हो जाने पर और मुद्राओं का भी अभ्यास हो तो दश प्रकार के क्रमशः नाद सुनाई देते हैं। इसी को अनाहत नाद कहते हैं जो बिना कारण प्रयास वा उद्योग के स्वयम् भासता है। इसी का अपभ्रंश "अनहद-

---

१ जानो।

नाद" है। नाद ये हैं—भ्रमर गुंजार, शंखध्वनि, मृदंगवाद्य, ताल शब्द, घंटानाद, वीणाध्वनि, भेरिनाद, दुंदुभिनाद, समुद्रगर्ज्जना, मेघ घोष। आगे इंद्रियों के प्रत्याहार का नामोल्लेख किया है। फिर पंचतत्व की पांच धारणाओं का वर्णन दिया है सो जानने ही योग्य है। उन में से एक धारणा आकाश तत्व की नमूने को दी जाती है।]

आकाश तत्व की धारणा। चौपइया छंद।

अब ब्रह्मरंध्र आकाश तत्व है सुभ्रं[1] वर्तुलाकारं[2]।
जहँ निश्चय जानि सदाशिव तिष्ठति अक्षर सहित हकारं॥
तहँ घटिका पंच प्राण करि लीनं परम मुक्ति की दाता।
सुनि शिष्य धारण व्योम तत्व की योगग्रंथ विख्याता॥७४॥

[तदनंतर ध्यान चार प्रकार के कहते हैं—पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ और रूपातीत। ये चारों मानों सीढियां हैं—उत्तरोत्तर ध्यान की वृद्धि का क्रम है। पदस्थ ध्यान की रीति कोई चित्र मूर्त्ति वा वर्ण का स्वेच्छा वा रुचि से ध्यान करना। पिंडस्थ ध्यान में षट्चक्रों का ध्यान। रूपस्थ ध्यान में नाना ज्योतिस्वरूपों का विकाश और रूपातीत में शून्य वा लय ध्यान है—यहां ज्ञाताज्ञेय, ध्याता ध्येय, आधार आधेय रूपी सब भेद मानों पिघल कर एक हो जाते हैं—यही स्वात्मज्ञान रूपी लय है, यही महा आनंदघन है। सुंदरदास जी का रूपस्थ ध्यान वर्णन चमत्कारी और विख्यात है सो ही लिखते हैं—]

रूपस्थ ध्यान। नाराच छंद।

निहारि के त्रिकूट मांहि विस्फुलिंग[3] देखिहै।
पुनः प्रकाश दीपज्योति दीपमाल पेखिहै॥

---

१ देदीप्यमान—चमकदार। २ गोल सा आकार। ३ चिनगारियाँ जो तेजोमंडल से निकलती हैं।

नक्षत्रमाल विज्जुलीप्रभा प्रत्यक्ष होइहै।
अनंत कोटि सूर चंद्र ध्यान मध्य जोइहै ॥७९॥
मरीचिका-समान सुभ्र और लक्ष जानिये।
झलामलं समस्त विश्व तेज मय वखानिये॥
समुद्र मध्य डूविके उवारि नैन दीजिये।
दशौ दिशा जलामई प्रत्यक्ष ध्यान कीजिये ॥८०॥

[और रूपातीत ध्यान के वर्णन में एक अधिक रोचक छंद कहा है सो देते हैं—]

रूपातीत ध्यान। पद्धड़ी छंद।

इहिं शून्य[3] ध्यान सम और नाहिं।
उत्कृष्ट ध्यान सब ध्यान मांहि॥
है शून्याकार जु ब्रह्म आपु।
दशहूँ दिश पूरण अति अमापु ॥८३॥
यों करय ध्यान सायोज्य होइ।
तव लगै समाधि अखंड सोइ॥
पुनि उहै योग निद्रा कहाइ।
सुनि शिष्य देउं तोकौं वताइ ॥८४॥

[अंत में योग का आठवाँ अंग समाधि दिखाते हैं। यह वर्णन भी चमत्कारी है, इससे देते हैं।]

---

१ किरण-प्रकाशरेखा। २ चकाचौंध करनेवाला झलाझल तेज। ३ निर्विकल्पसमाधि की अवस्था में शून्यता की एक दशा होती है। यह निर्गुणवृत्ति की कक्षा है।

समाधि वर्णन । गीतक छंद ।

सुनि शिष्य अबहिं समाधि लक्षण, मुक्त योगी वर्त्तते ।
तहँ साध्य साधक एक होई, क्रिया कर्म निवर्त्तते ॥
निरुपाधि नित्य उपाधि-रहितं इहै निश्चय आनिये ।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ, सा समाधि बखानिये ॥८५॥
नहिं शीत उष्ण क्षुधा तृषा, नहिं मूर्छा[1] आलस रहै ।
नहिं जागरं नहिं सुप्न सुषुपति, तत्पदं योगी लहै ॥
इम नीर महि गरि जाइ लवनं, येकमेक हि जानिये ।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ, सा समाधि बखानिये ॥८६॥
नहिं हर्ष शोक न सुःख दुःख, नहीं मान अमानयो ।
पुनि मनौ इंद्रिय वृत्य नष्टं, गतं ज्ञान अज्ञानयो[3] ॥
नहिं जाति कुल नहिं वर्ण आश्रम, जीव ब्रह्म न जानिये ।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ, सा समाधि बखानिये ॥८७॥
नहिं शब्द सपरश रूप रस नहिं गंध जानय रंच हूं ।
नहिं काल कर्म स्वभाव है नहिं उदय अस्त प्रपंच हूं ॥
यिम क्षीर क्षीरे आज्य आज्ये जले जलहिं मिलानिये ।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि बखानिये ॥८८॥
नहिं देव दैत्य पिशाच राक्षस भूत प्रेत न संचरै ।
नहिं पवन पानी अग्नि भय पुनि सर्प सिंघहिं ना डरे ॥
नहिं यंत्र मंत्र न शस्त्र लागहिं यह अवस्था गानिये[4] ।
कछुं भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि बखानिये ॥८९॥

---

१ मूरछा ऐसा पढ़ने से छंद ठीक होगा। २ छंद के निर्वाह के कारण ऐसा पढ़ना होगा। ३ अमानयो, अज्ञानयो—संस्कृत के द्विवचन का अपभ्रंश। ४ गान से क्रिया—गाइये के अर्थ में।

[इस प्रकार अष्टांग योग साधन करनेवाला युक्त योगी होता है और ब्रह्म को पाता है। अब चतुर्थोल्लास में सांख्य के ज्ञान का वर्णन करते हैं।]

—०—

(४) सांख्यनिरूपण।

[शिष्य ने अष्टांग योग का वर्णन सुन कर गुरु को कृतज्ञता प्रकट करके, अब सांख्य ज्ञान को अपने भ्रमध्वंस के निमित्त गुरु से जानने की प्रार्थना की। तो गुरु ने कृपा कर सांख्य का सार कहना प्रारंभ किया।

श्रीगुरुरुवाच। द्रुमिला छंद।

सुनि शिष्य यह मत सांख्यहि कौ,
जु अनातम आतम[1] भिन्न करै।
अन-आतम है जड़ रूप लिये नित,
आतम चेतन भाव धरै॥
अन-आतम सूक्षम थूल सदा,
पुनि आतम सूक्षम थूल परै।
तिनकौ निरनै अब तोहि कहौं,
जिनि जानत संशय शोक हरै॥ ४॥

---

१ यह आत्म और अनात्म—जड और चैतन्य—का भेद सांख्य ही में नहीं वेदांत में भी वैसा ही वर्णित है। भेद यही है कि सांख्य में जो प्रधान (प्रकृति) की प्रधानता है उसी को वेदांत में अनुचित प्रतिपादन किया है क्योंकि वेदांत में प्रकृति मिथ्या और चेतन ही मुख्य है।

कुंडलिया छंद ।

पुरुष प्रकृतिमय जगत है ब्रह्मा कीट पर्यंत ।
चतुखानि[1] लौं सृष्टि सब शिव शक्ती[2] वर्तंत ॥
शिव शक्ती वर्तंत अंत दहुँवनि को नाहीं ।
एक आहि चिद्रूप एक जड़ दीसत छांहीं[3] ॥
चेतनि सदा अलिप्त रहै जड़ सौं नित कुरुषं[4] ।
शिष्य समुझि यह भेद भिन्न करि जानहु पुरुषं ॥ ५ ॥

[यह सुन कर शिष्य ने पूछा कि आपने पुरुष को तो चैतन्य बताया और प्रकृति को जड़ और पुरुष को प्रकृति से भिन्न भी समझने को कहा, तो फिर यह जगत कैसे पैदा हुआ । गुरु उत्तर देते हैं]

श्रीगुरुरुवाच । छप्पय छंद ।

पुरुष प्रकृति संयोग जगत उपजत है ऐसै ।
रवि दर्पण[5] दृष्टांत अग्नि उपजत है तैसै ॥
सुइ होहिं चैतन्य यथा चम्बक[6] के संगा ।
यथा पवन संयोग उदधि मँहि उठहिं तरंगा ॥

---

१ जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज। २ ब्रह्म=शिव, प्रकृति=शक्ति (पार्वती)। ३ "छायातपौ"-श्रुति। ४ कु=पृथ्वी अर्थात् स्थूल पदार्थ, और रु=शब्द या संयोग, ख=आकाश अर्थात् अखंड सर्वस्थूलव्यापक सूक्ष्म आकाशतत्त्व। जैसे सूक्ष्म आकाश सब स्थूल में व्यापक है और सर्व शब्द का आधार और कारण है और कार्य्य से अलिप्त है। ५ आतशी शीशे (लैंस) में सूर्य्य की किरण के केंद्र-समुदाय पर कोयला रुई आदि पदार्थ जलते हैं। ६ चंबुक (मेगनेट) लोहे के तार आदि को आकर्षण कर उनमें गति उत्पन्न करता है।

अरु यथा सूर संयोग पुनि चक्षु रूप कों ग्रहत हैं।
यों जड़चेतन संयोग तैं सृष्टि उपजती कहत हैं ॥ ७ ॥

[अब प्रकृति पुरुष से कौन कौन तत्व पहिले पीछे किस क्रम से उत्पन्न हुए सोही सृष्टि-क्रम शिष्य पूछता है और गुरु उत्तर देते हैं]

श्रीगुरुरुवाच । दोहा छंद ।

पुरुष प्रकृति संयोग तैं प्रथम भयो महत्तत्व ।
अहंकार तातैं प्रगट त्रिविध सु तम रज सत्व ॥ ९ ॥

गीता छंद ।

तिहिं तामसाहंकार तें दश तत्व उपजे आइ ।
तें पंच विषय रु पंच भूतनि कहौं शिष्य सुनाइ ॥
ये शब्द सपरस रूप रस अरु गंध विषय सुजानि ।
पुनि व्योम मारुत तेज जल क्षति महाभूत बखानि ॥१०॥

(अब इन दसों के गुण कहते हैं)

छप्पय छंद ।

शब्द गुणो आकाश एक गुण कहियत जा महिं ।
शब्द स्पर्श जु वायु उभय गुण लहियहि तामहिं ॥
शब्द स्पर्श जु रूप तीन गुण पावक मांहीं ।
शब्द स्पर्श जु रूप रसं जल चहुं गुण आहीं ॥
पुनि शब्द स्पर्श जु रूप रस गंध पंचगुण अवनि है ।
शिष्य इहै अनुक्रम जानि तूं सांख्य सु मत ऐसैं कहै ॥१२॥

---

१ तेज के अभाव में आंख पदार्थों को नहीं देख सकती वरन तेज की साक्षी से पदार्थ साक्षात् होते हैं। २ बुद्धि—मज्ञा। ३ पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश (पंच महाभूत।)

अथ पंचतत्व स्वभाव । चौपइया छंद ।

यह कठिन स्वभाव अवनि को कहिये द्रावक उदकहि जानहुं ।
पुनि उष्ण सुभाव अग्नि माहिं वर्त्तय चलन पवन पहिचानहुं ॥
आकाश सुभाव सुथिर कहियत है पुनि अवकाश लषावैं ।
ये पंचतत्व के पंच सुभावहि सद्गुरु विना न पावै ॥१३॥

राजसाहंकार । चौपाइया छंद ।

अथ राजसाहंकार तें उपजी दश इंद्रिय सु बताऊं ।
पुनि पंच वायु तिनकैं समीप ही यह ब्योरौ समुझाऊं ॥
अरु भिन्न भिन्न हैं क्रिया सु तिनकी भिन्न भिन्न है नामं ।
सुनि शिष्य कहौं नीकैं करि तोसौं ज्यौं पावै विश्रामं॥१४॥

छप्पय छंद ।

श्रवण तुचा दृग घ्राण रसन पुनि तिनिके संगा ।
ज्ञान सु इंद्रिय पंच भई अप अपने रंगा ॥
वाक्य पानि[3] अरु पाद उपस्थ गुदा हू कहिये ।
कर्मसु इंद्रिय पंच भली विधि जाने रहिये ॥
सुनि प्रानापान समान हूं व्यानोदान सु वायु हैं ।
दश पंच रजोगुण तें भये क्रिया शक्ति कौं पायु[4] हैं ॥१५॥

---

१ तत्वों के गुणों को योग द्वारा पहिचानना गुरु और साधन गम्य है। यथा स्वरोदय साधन से तत्वों के गुण और क्रिया आदि की पहिचान प्रसिद्ध है। २ इस तत्व-ज्ञान से विश्राम अर्थात् चित्त की शांति होती है सब संशय निवृत्त हो जाता है। ३ पाणि=हाथ। ४ पाई जाती है। अथवा क्रिया और शक्ति का पाया (स्थंभ) है।

सात्विकाहंकार। गीतक छंद।

अथ सात्विकाहंकार तैं मन बुद्धि चित्त अहं भये।
पुनि इंद्रियन के अधिष्ठाता* देवता बहु विधि ठये ॥
दिग्पाल मारुत[1] अर्क[2] अश्विनि[3] वरुण जानसु इंद्रियं।
पुनि अग्नि इंद्र उपेंद्र मित्र जु प्रजापति कर्मेंद्रियं[4] ॥१६॥

दोहा छंद।

शशि विधि अरु क्षेत्रज्ञ पुनि रुद्र सहित पहिचानि।
भये चतुर्दश[5] देवता ज्ञानशक्ति यह जानि ॥१७॥

[तीनों गुणों से सूक्ष्म और स्थूल प्रकृति की उत्पत्ति कही जाती है तथा सूक्ष्म और स्थूल कारण शरीर से उत्पन्न हैं। स्थूल देह में प्रधान पंच महाभूत पृथ्वी अप तेज वायु और आकाश हैं। इनका पंचीकरण शास्त्रों में विस्तार से वर्णित है। यथा–अस्थि में पृथ्वीतत्व, त्वचा में जलतत्व, मांस में अग्नितत्व, नाड़ियों में वायुतत्व और रोमावली में आकाशतत्व प्रधान हैं इत्यादि अन्य शरीरांशों के विषय में भी कहा है। और दूसरे प्रकार से जैसे—गुद कर्मेंद्रिय और नासा ज्ञानेंद्रिय पृथ्वी तत्व से; चरण कर्मेंद्रिय और लोचन ज्ञानेंद्रिय ये दोनों तेज (अग्नि) से हैं इत्यादि। फिर ज्ञानेंद्रिय आदि त्रिपुटियां कही हैं–यथा श्रोत्र तो

---

१ पवन। २ सूर्य्य। ३ अश्विनीकुमार। ४ वाक्य आदि पंच कर्मेंद्रिय के क्रमशः देवता पांच ये हैं जो कहे गए। ५ मन आदि चार देवता शशि आदि हैं।

* प्रत्येक इंद्रिय का एक देवता माना गया है सो कोई कल्पित बात नहीं है। जो इंद्रियों की क्रिया और स्वभाव पर एकांत विचार करते हैं उनको परमात्मा की विचित्र शक्तियां वहां निश्चय प्रतीत होती हैं। शक्ति ही देवता हैं।

अध्यात्म और शब्द अधिभूत तथा दिशा इसका देवता (अधिदैव) त्वचा अध्यात्म, स्पर्श अधिभूत और वायु इसका देवता—इत्यादि। इसी तरह कर्मेंद्रिय त्रिपुटी कही है। यथा जिह्वा तो अध्यात्म, वचन अधिभूत और अग्नि इसका देवता इत्यादि। आगे अहंकार अर्थात् अंत:करण त्रिपुटी को बताया है—यथा मन अध्यात्म, संकल्प अधिभूत और चंद्रमा इसका देवता है। इत्यादि। अनंतर स्थूल सूक्ष्म (लिंग शरीर स्थूल शरीर) के तत्वों की गणना तथा संख्या को कहते हैं।]

लिंग शरीर। चौपाई छंद।

नव तत्वनि कौ लिंग प्रबंधा, शब्द स्पर्श रूप रस गंधा।
मन अरु बुद्धि चित्त अहँकारा, ये नव तत्व किये निर्द्धारा ॥४५॥

दोहा छंद।

पंद्रह तत्व स्थूल वपु, नव तत्वनि कौं लिंग।
इन चौबीसहु तत्त्व को, बहु विधि कह्यो प्रसंग ॥ ४६ ॥

चौपइया छंद।

शिष्य ये चौबीस तत्व जड़ जानहु, तिनके क्षेत्र सु कहिये।
पुनि चेतन एक और पचीसहिं, सांख्यहिं मत सों लहिये ॥
(सो) है क्षेत्रज्ञ सर्व कौ प्रेरक, पुनि साक्षी वहु जानहु।
(यह) प्रकृति पुरुष कौ कीयौ निर्णय सद्गुरु कहै सु मानहु ॥४७॥

[उपरांत चारों अवस्थाओं का वर्णन करते हैं—जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया। प्रत्येक अवस्था के संघात (जिन तत्वसमूह से उसकी बनावट है), गुण विशेष, अवस्था का अभिमानी, देवता, भोग्य, स्थान, वाणीभेद, शरीर भेद, इन संज्ञाओं से विवरण किया है। यह क्रम सांख्य और वेदांत दोनों ही के ग्रंथों में आता है।

सो सुंदरदासजी ने बड़े ही विचार और अनुभव से स्पष्ट करके लिखा है।

(१) जाग्रत अवस्था में—व्यष्टि में स्थूल देह, समष्टि में विराट। देह के संघात रूप पंचतत्व, पंचज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेंद्रिय पंच विषय जिन के हेतु रूप पंचतन्मात्रा है, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार, और उन सब के चौदह देवता, प्राणादि पंच और नागादिपंच यों दश वायु, सत्व रज तम तीनों गुण, काल कर्म स्वभाव, इन सब के साथ जीव सचेत रह कर लिंग शरीर रूप कर्त्ता धर्त्ता रहता है। इसमें विश्व अभिमानी और ब्रह्मा देवता, रजोगुण प्रधान, स्थूल भोग्य होता है, नयन को स्थान कहा है, और वैखरी वाणी वर्त्तती है।

(२) स्वप्नावस्था में—संघात तो उपरोक्त है, परंतु लिंग शरीर की प्रधानता से है। समष्टि में वही हिरण्यगर्भ नाम कहाता है। तैजस अभिमानी होता है। सतोगुण प्रधान और विष्णु देवता। वासना भोग्य होती है। कंठ इसका स्थान कहा जाता है, मध्यमा वाणी।

(३) सुषुप्ति अवस्था में—सब तत्व लीन हो जाते हैं, लिंग शरीर भी नहीं केवल कारण शरीर ही तत्व रहता है। यह गाढ़ निद्रा है। प्राज्ञ अभिमानी होता है। अव्याकृत तमो गुण प्रधान। शिव देवता। आनंद स्वरूप भोग्य होता है। पश्यंती वाणी और हृदय स्थान होता है।

(४) तुरीयावस्था में—चेतन तत्व (कारण शरीर भी लय) हो जाता है। कोई गुण भी नहीं वर्तता। कोई उपाधि या वृत्ति भी नहीं। स्वस्वरूप अभिमानी होता है। सोऽहं देवता और परमानंद भोग्य, मूर्द्धा (शिर) स्थान और परावाणी रहते हैं। इन चारों

अवस्थाओं को चार छंदों और उनके समाहार को एक इंदव छंद में कह दिया है। सो ही देते हैं।]

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

जाग्रत् अवस्था। चंपक छंद।

मिलि सबहिन को संघाता। यह जाग्रदवस्था ताता ॥५४॥
सा आहि विश्व अभिमानी। तहँ ब्रह्मादेव प्रमानी ॥
है राजस गुण अधिकारा। पुनि भोगस्थूल पसारा ॥५५॥
सा कहिय नयन स्थानं। बाणी वैखर्या जानं ॥
यह जाग्रदवस्था निर्णय। सुनि शिष्य सुप्र अब वर्णय ॥५६॥

स्वप्न अवस्था। चौपइया छंद।

दशवायु प्राण नागादिक कहियहिं, पंचसु इंद्रिय ज्ञानं।
पुनि पंचकर्म इंद्रिय जे आहीं, तिनकी वृत्य बखानं ॥
अरु पंच विषय शब्दादिक जानहु, अंतहकरण चतुष्टय।
पुनि देव चतुर्दश हैं तिन माँही, सब इंद्रिय संतुष्टय ॥५७॥
यह कालहु कर्म स्वभाव सकल मिलि, लिंग शरीर कहावै।
शिष्य नाम हिरण्यगर्भ पुनि ताकौ, तेजोमय तनु पावै ॥
अब स्वप्न अवस्था याकौं कहिये सा तैजस अभिमानी।
तहँ सत गुण विष्णु देवता जानहु भोग वासना ठानी ॥५८॥
पुनि कंठस्थान मध्यमा वाचा जीवात्मा समेतं।
शिष्य सुप्र अवस्था कीयौ निर्णय समुझि देखि यह हेतं ॥५९॥

सुषुप्ति अवस्था। छप्पय छंद।

सुषुप्ति कारण देह तत्व सब ही तहँ लीनं।
लिंग शरीर न रहै घोर निद्रा वसि कीनं ॥

प्राज्ञ अभिमानी जु, अव्याकृत तमगुण रूप ।
ईश्वर तहँ देवता, भोग आनंद स्वरूप ॥
पुनि पश्यंती वाणी गुप्त हृदय स्थानक जानिये ।
यह कहत जु सुषुपति अवस्था शिष्य सत्य करि मानिये ॥६०॥

तुरीया अवस्था । चर्पट छंद ।

तुर्यावस्था चेतन तत्वं स्वस्वरूप अभिमानीयत्वं ।
परमानंदे भोगं कहियं, सोहं देवं सदा तह लहियं ॥६१॥
सर्वोपाधि विवार्जित मुक्तं, त्रिगुणातीतं साक्षी उक्तं ।
मूर्द्धनि स्थिति पुरा पुनि वाणी, तुर्यावस्था निश्चय जांणी ॥६२॥

चारों अवस्थाओं का समाहार । इंदव छंद ।

जाग्रत रूप लिये सब तत्वनि, इंद्रिय द्वार करै व्यवहारो ।
स्वप्न शरीर भ्रमै नव तत्व कौ, मानत है सुख दुःख अपारो ॥
लीन सबै गुन होत सुषोपति जानै नहीं कछु घोर अँधारो ।
तीनं कौ साक्षी रही तुर्यातत सुंदर सोई स्वरूप हमारो ॥६३॥

(५) अद्वैतनिरूपण ।

[भक्ति, योग और सांख्य इन तीनों के सिद्धांत सुन, तथा सांख्य में तुरीया अवस्था तक जान, अथच तुरीयातीत का संकेत पाकर, शिष्य की रुचि उसही के जानने और अद्वैत के वर्णन को सुनने की हुई । तो उसने कृतज्ञता और नम्रतापूर्वक गुरुदेव से प्रार्थना की । गुरु ने प्रसन्न हो उसकी प्रार्थना मान, कहना प्रारंभ किया । शिष्य, के वेदांत परिपाटी से श्रवण मनन निदिध्यासन किए

---

१ तीनों अवस्थाओं—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—का ज्ञाता और बरतनेवाला ।

हुए और ज्ञाननिष्ठा में परायण होने से, वह अधिकारी हो चुका है। इसलिये गुरु प्रसन्नतापूर्वक उसे महाज्ञान का आदेश देते हैं।]

श्रीगुरुरुवाच । दोहा छंद ।

तुरिया साधन ब्रह्म कौ अहं ब्रह्म यौं होइ ।
तुरियातीतहि अनभवै हूंतूं रहै न कोइ ॥ ७ ॥

इंदव छंद ।

जाग्रत तौ नाहिं मेरे विषै कछु, स्वप्न सु तौ नाहिं मेरे विषै है ।
नाहिं सुषोपति मेरे विषै पुनि, विश्वहु तैजस प्राज्ञ पषै[2] है ॥
मेरे विषै तुरिया नाहिं दीसत, याही तैं मेरौ स्वरूप अषै है ।
दूर तें दूर परैं तें परैं अति सुंदर कोउ न मोहि लषै है ॥ ८ ॥

[शिष्य ने जब सुना कि ब्रह्म तो अति 'परे' है तो उसे संदेह हुआ और उसने गुरु से पूछा कि 'उरे' क्या है ? गुरु उस ही का उत्तर देते हैं। और इसही को विस्तार से समझाने के लिये प्रागभाव, अन्योऽन्याभाव, प्रध्वंसाभाव और अत्यंताभाव का समावेश करते हैं।]

श्रीगुरुरुवाच । दोहा छंद ।

उरै परै कछु वै नहीं वस्तु रही भरपूर ।
चतुरभाव तोसौं कहौं तब भ्रम ह्वैहै दूर ॥ १० ॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

---

१ यह तुरीय नाम चतुर्थ अवस्था से भी आगे जो निर्गुण और निर्विकल्प शुद्ध चेतन ब्रह्म है वही अद्वैत अनिर्वचनीय है। यह महावेदांत का कथन है। २ पषैं=पार्श्व—इधर उधर की ओर। अर्थात् पृथक्। ३ अक्षय, अर्थात् क्षयहीन; सब विकार वा गुण से रहित। ४ क्योंकि बुद्धि से जानने योग्य नहीं।

चतुरभाव की सूचनिका । सवइया छंद ।

मृतिका मांहिन अभाव घटनि कौ, प्रागभाव यह जानि रहाय ।
ता मृतिका के भाजन वहु विधि, अन्यो अन्या भाव गहाय ॥
मृतिका मध्य लीनता सब की, यह प्रध्वंसा भाव लहाय ।
न कछु भयौ न अब कछु ह्वैहै, यह अत्यंताभाव कहाय ॥१३॥

प्रागभाव[1] वर्णन । मनहर छंद ।

पहिलैं जब कछुव न होतौ प्रपंच यह,
एक ही अखंड ब्रह्म विश्व को अभाव है ।
जैसे काठ पाहन सुलभ अति देखियत,
तिन मैं तौ नहीं कछु पूतरी बनाव है ॥
जैसे कंचन की रासि कंचन विसेषियत,
ताहू मध्य नहीं कछु भूषण प्रभाव है ।
जैसे नभ माहिं पुनि बादर न जानियत,
सुंदर कहत शिष्य इहै प्रागभाव है ॥ १४ ॥

अन्योऽन्या[2] भाव । सवइया छंद ।

एक भूमि तें भाजन वहु विधि, कंडा करवा हँडिया माट ।
चपनी ढकन सराव गगरिया, कलश कहाली नाना घाट ॥
नाम रूप गुन जूवा[3] जूवा, पुनि व्यवहार भिन्न ही ठाट ।
सुंदर कहत शिष्य सुनि ऐसे अन्यो अन्या भाव विराट ॥१५॥

[इसी प्रकार ताम्र, लोहा, कपास (रुई), वृक्ष, जल, अग्नि,

---

१ निमित्त कारण वा समवाय कारण से कार्य्य के प्रगट होने से पूर्व जो कार्य्य का न होना । २ अनेक कार्य्यों वा एक-कारणजनित पदार्थों का परस्पर एक दूसरे में न होने की प्रतीति । ३ जुदा जुदा—पृथक् पृथक् ।

वायु, आकाश इतने पदार्थों से बने हुए विकारों (वस्तुओं) का वर्णन रुचिर छंदों में किया है]

प्रध्वंसाभाव। चौपाइया छंद।

यह भूमि विकार भूमि माहिं लीन, जलविकार जल मांही।
पुनि तेज विकार तेज माहिं मिलिहै, वायु वायु मिलि जांही॥
आकाश विकार मिलै आकाशहिं, कारण रहै निदानं।
शिष्य यह प्रध्वंसाभाव सु कहिये, जौ है सो ठहरानं॥२३॥

अत्यंताभाव। मनहर छंद।

इच्छाही न प्रकृति न महत्तत्व अहंकार,
त्रिगुन न शब्दादि व्योम आदि कोइ है।
श्रवणादि वचनादि देवता न मन आहि,
सूक्षम न थूल पुनि एक ही न होइहै॥
स्वेदज न अंडज जरायुज न उद्भिज,
पशुही न पक्षी ही पुरुषही न जोइ है।
सुंदर कहत ब्रह्म ज्यौं कौ त्यौं ही देखियत,
न तौ कछू भयौ अब है न कछु होइ है॥२५॥

छप्पय छंद।

कहत शशा के शृंग आँखि किनहूं नहिं देखे।
बहुरि कुसम आकाश सु तौ काहू नहिं पेखे॥

१ बने बनाए कार्य्य वा पदार्थ, आकार वा रूप में बिगड़ जायं टूट फूट जाँय और अपने जनक समवाय वा निमित्त के रूप वा द्रव्य में परिवर्तित हो जांय। सर्व प्रपंच एक ही मूल कारण में ऐसा लय हो जाय कि उस एक ही कारण को छोड़ और कुछ न रहे। यह अवस्था क्षय के अतिरिक्त तुरीयातीत कक्षा में भी होती है।

त्यौं ही वंध्यापुत्र पिंघूरै झूलत कहिये ।
मृग जल माहें नीर कहूं ढूंढत नहिं लहिये ॥
रजु माहिं सर्प नहिं कालत्रय, शुक्ति रजत सी लगत है ।
शिष यह अत्यंताभाव सुनि ऐसे ही सब जगत है ॥२६॥

❀ ❀ ❀ ❀

दोहा छंद ।

यह अत्यंताभाव है यह ई तुरियातीत ।
यह अनुभव साक्षात् यह यह निश्चय अद्वीत ॥४०॥
नाहीं नाहीं करि कह्यो है है कह्यो बखानि ।
नाहीं है के मध्य है सो अनुभव करि जानि ॥४१॥
यह ही है परि यह नहीं नाहीं है है नांहि ॥
यह ई यह ई जानि तू यह अनुभव या मांहि ॥४२॥
अब कछु कहिबे कौं नहीं कहैं कहां लौं बैन ।
अनुभव ही करि जानिये यह गूंगे की सैन ॥४३॥

[इस प्रकार शिष्य निर्भ्रांत हो, जगत को स्वप्नवत् जानने लगा, और अपनी शुद्ध अवस्था को देख पूर्व अवस्थाओं की निवृत्ति पर आनंदयुक्त आश्चर्य सा प्रगट कर अपने भाव का गुरु के सामने वर्णन करने लगा ।]

---

१ ब्रह्म ऐसा ही है ऐसा इदंता ज्ञान और ब्रह्म यह नहीं है वा ऐसा नहीं है यह अभाव ज्ञान दोनों ही तत्वज्ञान में संभव नहीं हो सकते । इससे है और नहीं के बीच अर्थात् अनिर्वचनीय तीसरी रीति ही उपयुक्त है । सो केवल स्वात्मानुभव पर निर्भर है और वह अनुभव कहने में आता नहीं ।

षर्पट छंद।[1]

कोहं कस्त्वं क्च संसारः, क्च परमार्थः क्च व्यवहारः।
क्च मे जन्मं क्च मे मरणं, क्च मे देहः क्च मे करणं[3] ॥४६॥
क्च मे अद्वय क्च मे द्वैतं, क्च मे निर्भय क्च में भीतं[4] ।
क्च माया क्च ब्रह्मविचारः,क्च मे प्रवृत्तिहि निवृत्ति विकारः॥४७॥
क्च मे ज्ञानं क्च विज्ञानं, क्च मे मन निर्विष विषं जानं ।
क्च मे तृष्णा क्व वितृष्णत्वं, क्च मे तत्वं क्च हि अतत्वं ॥४८॥
क्च मे शास्त्रं क्च मे दक्षः, क्च मे अस्तिहि नास्तिहि पक्षः।
क्च मे कालः क्च मे देशः, क्च गुरु शिष्यः क्च उपदेशः ॥४९॥
क्च मे ग्रहणं क्च मे त्यागः, क्च मे विरतिः क्च मे रागः।
क्च मे चपलं क्च निस्पंदं, क्च में द्वंद्वं क्च निर्द्वंद्वं ॥५०॥
क्च मे वाह्याभ्यंतर भासं, क्च अध ऊर्द्ध तिर्य[10] प्रकाशं ।
क्च मे नाडी साधन योगं, क्च में लक्ष विलक्ष वियोगं[13] ॥५१॥

---

१ श्रीशंकराचार्य्य जी के स्तोत्रों के ढंग का यह वर्णन संस्कृत और भाषा सम्मिलित है। २ क्च=कहां। कहीं को = कौन का अर्थ भी बनता है। ३ अवयव का इंद्रियादि। ४ भीतत्वं=डर। ५ विषरूपी विषय से रहित। ६ वैतृष्णत्व=तृष्णा न रहना। ७ दक्षता। ८ स्पंद गति का न होना। ९ शरीर से भिन्न वा बाहर अनात्मा का ज्ञान, तथा अंदर का बाहर के पदार्थों से भिन्न होने का ज्ञान। १० तिर्य=तिर्यक, तिरछा। ऊँचा, नीचा, आगे पीछे, तिरछा सीधा आदि सापेक्ष ज्ञान केवल प्रकृतिजन्य गुण हैं। ११ इडा पिंगला आदि योगविद्या की नाडियां। १२ कष्ट योग, अथवा स्वेच्छाचार योगक्रिया १३ वियोग=विशेष योग साधन।

कथ नानात्वं कथ एकत्वं, कथ में शून्याशून्य समत्वं।
यो अवशेषं सो ममरूपं, बहुना किं उक्तं च अनूपं ॥५२॥

[गुरु ने शिष्य में यह निश्चय अनुभव जान कर कहा कि हे शिष्य इस ज्ञान की प्राप्ति से तू निर्भय निर्लेप और निर्दोष हो कर ब्रह्म-ज्ञानी हुआ है । उपरांत जीवन्मुक्त पुरुष का लक्षण वा महत्व कह कर ग्रंथ का फल और रचना काल देकर वे ग्रंथ समाप्त करते हैं ।]

दोहा छंद ।

निरालंब निर्वासना इच्छाचारी येह ।
संस्कार पवनहि फिरै शुष्क पर्ण ज्यौं देह ॥ ५७ ॥
जीवन्मुक्त सदेह तूं लिप्त न कबहूं होइ ।
तोकौं सोई जानि है तव समान जे कोइ ॥

❀ ❀ ❀

---

१ अनूप है, जिसकी उपमा वा सादृश्य के लिये कोई पदार्थ नहीं इस लिये बहुत कहने से भी क्या होगा। २ यह साखी सुंदरदास जी के मुख से उनके अंत समय में भी निकली थी । उस समय वही प्रबल वृत्ति उनकी थी जो ज्ञान-समुद्र की समाप्ति के समय थी । अर्थात् देह की उत्पत्ति वासना संस्कार से संभव है, जप तप और ज्ञान से सब कर्म और वासना निवृत्त हो गईं तो आत्मानुभव जो हुआ सो एक निरालंब (निराधार–निर्लेप) और वासनारहित संज्ञा है ऐसी अवस्था वाले का फिर जन्म नहीं हो सकता । उसकी इच्छा केवल मोक्षेच्छा थी सो पूर्ण होने से इच्छानुसार आचार हुआ अर्थात् ब्रह्मवत् वा ब्रह्मलीन हो गया ।

सुंदर ज्ञानसमुद्र को पारावार न अंत ।
विषयी भागै झझकिकैं पैठे कोई संत ॥ ६२ ॥

❀ ❀ ❀

संवत सत्रह से गये वर्ष दसोतर और ।
भाद्रव सुदि एकादशी गुरुवासर शिरमौर ॥ ६५ ॥
वा दिन संपूरण भयौ ज्ञानसमुद्र सु ग्रंथ ।
सुंदर औगाहन करै लहै मुक्ति को पंथ ॥ ६६ ॥

---

(२) अथ लघु ग्रंथावलि।

(१) सर्वांग योग ग्रंथ।

प्रपंच प्रहार।

["इस सर्वांग योग" नामक ग्रंथ में ग्रंथकर्ता सुंदरदास जी
भक्ति, हठ और सांख्य इन तीन पर संक्षेप से कहते हैं। इन ही
विषयों का निरूपण "ज्ञानसमुद्र" में कुछ विस्तार से किया है।
विषय की एकता वा समानता रहने पर भी कई बातों का भेद है।
अनुमान होता है कि 'सर्वांग योग' का निर्माण 'ज्ञान समुद्र' से पूर्व ही
हुआ हो। यह 'पंचेंद्रियचरित्र' से पूर्व आया है जो संवत् १६९१
में बना था और ज्ञानसमुद्र सं० १७१० में रचा गया था। ज्ञान-
समुद्र को क्रम में सब से प्रथम रखने में इसकी उत्कृष्टता ही कारण
प्रतीत हो सकती है परंतु रचनाकाल नहीं।

आदि में भक्तियोग, हठयोग और सांख्ययोग के आचार्यों के
नाम और फिर प्रत्येक योग के चार चार भेद दिए हैं। प्रथम 'उपदेश'
(अध्याय) में 'प्रपंचप्रहार' नाम देकर अनेक मतों की विडंबना
मात्र और उनकी अनावश्यकता तथा स्वप्रतिपाद्य योगत्रिक् की प्रधा-
नता का वर्णन किया है। ज्ञानसमुद्र में इनही अंगों की पुष्टता होगई
है और वह इस ग्रंथ से पूर्व आचुका है, इससे विस्तार से नहीं देंगे।]

---

१ 'योग' शब्द सांख्य आदि शब्दों के साथ जुटाना पुराना ढंग
है कुछ सुंदरदासजी पर निर्भर नहीं है। गीता के अध्यायों में योग शब्द
का प्रचुर प्रयोग है। प्रतीत होता है कि योग से तात्पर्य 'मार्ग' वा 'विधि
का है। 'सर्व' शब्द के होने से मुख्य मुख्य योग के अंग अभिप्रेत हैं।

दोहा छंद।

वंदत हौं गुरुदेव के नित चरणांबुज दोई।
आत्मज्ञान परगट भयौ संशय रह्यौ न कोई ॥ १ ॥
भक्तियोग हठयोग पुनि सांख्य सुयोग विचार।
भिन्न भिन्न करि कहत हौं तीनहुं को विस्तार ॥ २ ॥

(भक्तियोग के आदि आचार्य्य)

सनकादिक नारद मुनी शुक अरु ध्रुव प्रह्लाद।
भक्तियोग सो इन कियौ सद्गुरु कैं जो प्रसाद ॥ ३ ॥

(हठ योग के पूर्वाचार्य्यों के नाम)

आदिनाथ मत्स्येंद्र अरु गोरष चर्पट मीन।
काणेरी चोरंग पुनि हठ सुयोग इनि कीन ॥ ४ ॥

(सांख्य के आद्याचार्य्य)

ऋषभदेव अरु कपिल मुनि दत्तात्रेय वशिष्ट।
अष्टावक्र रु जडभरत इनकै सांख्य सुदृष्ट ॥ ५ ॥

[भक्तियोग चार प्रकार के—भक्तियोग, मंत्रयोग, लययोग,

---

१ नारद, शांडिल्य आदि भक्तिसूत्रादि, शांडिल्य विद्या आदि के प्रसिद्ध आचार्य्य हैं और ध्रुव प्रह्लाद आदि भक्ति शिरोमणि हुए हैं। २ हठयोग के आचार्य्यों के नाम हठ-प्रदीपिका में ये हैं—आदिनाथ, याज्ञवल्क्य, गोरक्ष, मत्स्येंद्र, भर्तृहरि, मंथान, भैरव, कंथादि, चर्पट, कानेरी, नित्यनाथ, कपाली, टिंटिणी, निरंजन आदि। ३ अनीश्वरवादी और ईश्वरवादी सांख्य यों दो प्रकार का है। ऋषभ देवादि पूर्व अनीश्वरवादी विख्यात हैं और कपिल, पंचशिख उत्तर सांख्य के। प्रसिद्ध छः ईश्वरवादी दर्शन ये हैं—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, वेदांत, मीमांसा।

चरचायोग। हठयोग चार प्रकार के--हठयोग, राजयोग, लक्षयोग, अष्टांगयोग। सांख्ययोग के भी इसी तरह ४ प्रकार हैं—सांख्ययोग, ज्ञानयोग, ब्रह्मयोग, अद्वैतयोग। आगे चल कर दूसरे तीसरे चौथे उपदेशों में प्रत्येक का कुछ कुछ वर्णन दिया है। इनके अतिरिक्त अन्य उपायों और मतमतांतरों को मिथ्या कह कर बताया है।]

दोहा छंद।

इन बिन और उपाय हैं सो सब मिथ्या जानि।
छह दरसन अरु छ्यांनवे पाषंड कहूं बषानि ॥१५॥

[भक्ति योगादि के अतिरिक्त अन्य उपायों की उपेक्षा करते हुए ग्रन्थकर्ता ३८ चौपाइयों में विस्तार से उनकी गणना और वर्णन करते हैं। इस गणना में यंत्र, मंत्र, टोना, टामन सिद्धि दिखाने में धूर्तता, दान और कर्म का आडंबर, थोथे पांडित्य की मत्सरता, तपश्चर्या, व्रत और दंभ भरे पाखंडियों का ठगना, जैनी ढूंढियों की मलिनता, कापालिक और शाक्तों की भ्रष्टता, सिद्धियां दिखाने को अनेक कायाकष्ट और करतूतियों का दिखाना, अनेक साधू वेष धारण कर ठग विद्याओं का करना इत्यादि बहुत सी बातें संयुक्त की गई हैं। परंतु ब्रह्मचर्यादि आश्रम और संध्यावंदनादि नित्यनैमित्तिक कर्मों आदि का भी नामोल्लेख हुआ है, परंच यह कोई कटाक्ष नहीं किंतु इन शास्त्र-विहित कर्मों के अनुष्ठान में यदि ज्ञान की हीनता और योग की न्यूनता रहे तो वही त्याज्य वा हेय है। उदाहरण के लिये कुछ चौपाइयां देते हैं। इन सबही चौपाइयों में 'केचित्' शब्द का प्रयोग बहुत हुआ है।]

---

१ यहां 'पाषंड' से प्रतिकूल मतों से प्रयोजन है। सर्वदर्शन संग्रह आदि ग्रंथों में अनेक मतों का दिग्दर्शन है।

चौपई छंद ।

केचित्[1] कर्म स्थापहि जैना ।
केश लुचाइ करहिं अति फैना ॥
केचित् मुद्रा पहिरे कानं ।
कापालिका[2] भ्रष्ट मत जानं ॥१८॥
केचित् नास्तिक वाद प्रचंडा ।
तेतौ करहिं वहुत पाषंडा ॥
केचित् देवी शक्ति मनावैं ।
जीव हनन करि ताहि चढावैं ॥१९॥
केचित् मलिन मंत्र आराधैं ।
वसीकरण उचाटन साधैं ॥
केचित् मुये मसान जगावैं ।
थंभन मोहन अधिक चलावैं ॥२१॥
केचित् तर्कह शास्त्र पाठी ।
कौशल विद्या पकरहिं काठी ॥
केचित् वाद विविधि मत जानैं ।
पढ़ि व्याकरण चातुरी ठानैं ॥२६॥
केचित् कर धरि भिक्षा पावैं ।
हाथ पूछि जंगल कौं धावैं ॥
केचित् घर घर मांगहि टूका ।
बासी कूसी रूषा सूका ॥ ३० ॥

---

१ कितने ही पुरुष अथवा कोई कोई । २ कापालिक–वाम मार्ग और शाक्त भैरव लोग हैं ।

केचित् धोवन धावन[1] पीवैं ।
रहैं मलीन कहौं क्यों जीवैं ॥
केचित् मता अघोरी[2] लीया ।
अंगीकृत दोऊ का कीया ॥ ३२ ॥
केचित् अभष भषत न सँकांही ।
मदिरा मांत मांस पुनि षाहीं ॥
केचित् वपुरे दूधाधारी ।
षांड षोपरा दाष छुहारी ॥ ३३ ॥
केचित् चिर्कट[3] बीनहि पंथा ।
निर्गुन रूप दिखावैं कंथा ॥
केचित् मृगछाला वाघंवर ।
करते फिरहिं वहुत आडंवर ॥ ३७ ॥
केचित् मेघाडंवर बैठे ।
शीतकाल जलसाईं पैठे ॥
केचित् धूमपान करि भूले ।
औंधे होइ वृच्छ मों झूले ॥ ४० ॥
केचित् तृण की सेज वनावैं ।
केचित् लैं कंकरा विछावैं ॥
केचित् व्रतहि गहैं अति गाढे ।
द्वादश वर्ष रहैं पग ठाढे ॥ ४४ ॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

---

१ ओसवालों में ढूँढिया ऐसा करते हैं । २ वाम मार्ग से भी हीनतर मत है । ३ चिथड़े ।

दोहा छंद

बहुत भांति मत देषि कैं, सुंदर किया विचार।
सद्गुरु के जु प्रसाद तें, भ्रमै नहीं झुळगार[1] ॥ ५० ॥

(ख) भक्तियोग।

[भक्ति का वर्णन ज्ञानसमुद्र की भांति नहीं है—न तो नवधा का वर्णन, न प्रेमलक्षणा, और न परा का उल्लेख है। किंतु जो कुछ लिखा है उससे अर्चना (नवधा का एक भेद) प्रतीत होती है। हां इस भक्तियोग को सारे योग रूपी महल का स्थंभ कहा है और योगियों की नाई विरक्ति आदि की आवश्यकता होने की बात आई है। प्रथम दृढ़ वैराग्य धारण कर अटल विश्वास के साथ त्यागी बने, जितेंद्री और उदासीन रहे, घर में रहे चाहे बन में जाय परंतु माया, मोह, कनक, कामिनी, आशा, तृष्णा को छोड़ दे। शील, संतोष, दया, दीनता, क्षमा, धैर्य धारण करे, मान माहात्म्य कुछ न चाहे, सकल संसार को आत्मदृष्टि से देखे। एक निरंजन देव ही की पूजा करे। उसका प्रकार इस तरह लिखा है।]

चौपाई छंद।

मन माहैं सब सौंज[2] सुथापै। बाहर के बंधन सब कापै[3]।
शून्य सु मंदिर अधिक अनूपा। तामहिं मूर्त्ति जोति स्वरूपा ॥ ८ ॥

सहज सुखासन बैठे स्वामी। आगे सेवक करै गुलामी।
संजम उदक स्नान करावै। प्रेम प्रीति के पुष्प चढावै ॥ ९ ॥

चित चंदन लै चरचै अंगा। ध्यान धूप षेवै ता संगा।
भोजन भाव धरे लै आगै। मनसा वाचा कछू न मांगै ॥१०॥

---

१ लगामात्र, लगाव। २ पूजा की सामग्री। ३ काटै।

ज्ञान दीप आरती उतारै। घंटा अनहद शब्द विचारै।
तन मन सकल समर्पन करई। दीन होई पुनि पायनि परई॥११॥
मगन होइ नाचै अरु गावै। गद्गद रोमांचित होइ आवै।
सेवक भाव कहे नहिं चौरै। दिन दिन प्रीति अधिक ही जोरै॥१२॥

[इस प्रकार अपने अंतरभूत इष्टदेव की निरंतर भक्ति और सेवा वैसे ही करे जैसे प्रतिव्रता स्त्री अपने पति की। यही उसकी अनन्यता है।]

मंत्रयोग।

[इस के आगे भक्तियोग का दूसरा अंग मंत्रयोग वर्णन करते हैं। मंत्रयोग के कहने से यह प्रयोजन है कि प्रथम "वैखरी वाणी के द्वारा मंत्र को सीख कर मध्यमा वाणी से उसको वारंवार दोहरावे, मुख से शब्द उच्चारण न होने पावे। जैसे शब्द के कहने से उसके अर्थ का प्रतिपाद्य ग्राह्य होता है इसी तरह से ब्रह्म के द्योतक शब्द से उसका प्रतिपाद्य ब्रह्म ही लिया जायगा, शब्दोच्चारण के अभ्यास से वैखरी और मध्यमा द्वारा मन के अंदर भी अंतर्हित ब्रह्म की धारणा बढ़ती जायगी, मध्यमा की पुष्टि से पश्यंति में अभ्यास का प्रवेश होगा और फिर पश्यंति का पुष्टि से 'परा' वाणी में अभ्यास का निवेश होता जायगा, जैसे बाह्य स्थित आकार वा कल्पित मूर्ति के ध्यान से मनोनिग्रह बिना प्रयास ही होने लग जाता है उसी तरह से मंत्र जाप से चित्त निरोध होता है, भेद इतना ही है कि वहां चाक्षुषेंद्रिय प्रधान है और यहां कर्णेंद्रिय प्रधान है और वैखरी और मध्यमा वाणियां कर्मेंद्रियवत् सहायता करती हैं। निराकार वस्तु का सहसा ध्यान में आजाना कोई खेल नहीं है, इसलिये उस तरफ़ बढ़ने के लिये पूजा, जप आदि उपाय

सीढ़ी की तरह से हैं, इसीलिये ये भक्ति वा योग के अंग माने गए हैं। इसी को महात्मा सुंदरदास जी भक्तियोग के अंतर्गत कर सूक्ष्मता से कहते हैं।]

चौपई छंद।

सुगम उपाई और सदरोजी[1]।
राम मंत्र कौं जौ ले षोजी॥
प्रथम श्रवण सुनि गुरु के पासा।
पुनि सो रसना करै अभ्यासा॥ २३॥
ता पीछे हिरदै में धारै।
जिह्वा रहित मंत्र उचारै।
निस दिन मन तासौं रहै लागो।
कबहुँ नैक न टूटै धागो[2]॥ २४॥
पुनि तहां प्रगट होइ रंकारा[3]।
आपु हि आपु अखंडित धारा।
तन मन बिसरि जाइ तहां सोइ।
रोमहि रोम राम धुनि होइ॥ २५॥
जैसे पानी लौंन मिलावै।
ऐसैं ध्वनि माहिं सुरति[4] समावै।

---

१ सद्य+ताजी=नित्य नई और ताजी आमदनी वा आय। २ तागा—तार। ३ रकार की ध्वनि—अनाहत शब्द की भांति अभ्यासवश भीतर आप ही आप गूँज होने लगती है। रामायण में आया है कि हनुमान जी के शरीर में 'राम' नाम रोम रोम में था। तद्वत् भजन के प्रभाव से ऐसा होना असम्भव नहीं। जो कुछ हो सो करने से हो सकता है।

४ 'सुरति' शब्द का प्रयोग कबीर आदि महात्माओं ने 'श्रुति'

राम मंत्र का इहै प्रकारा।
करै आपुसे लगै न वारा॥ २६॥

लययोग।

[मंत्रयोग की संक्षेप विधि कह चुकने पर लययोग का अनेक
दृष्टांतों से निरूपण करते हैं। लय अर्थात् तल्लीनता भक्ति का एक
प्रौढ़ भाव वा दशा है। जब मन उपास्य वा इष्ट में मग्न हो जाता है
तो उसकी दशा अन्य पदार्थों से सिमट कर वहीं स्थित रहती है। जिन
पुरुषों की प्रकृति ही भगवत्कृपा वा अपने संस्कारों से भक्तिमय होती है
उनको थोड़े प्रयास वा अल्प संसर्ग ही से लय की प्राप्ति होने लग जाती है।
परंतु जिनको ऐसी सामग्री उपस्थित न हो उनको परमात्मा से भक्तियोग
की प्राप्ति की प्रार्थना करनी चाहिए और उसके लिये यथासाध्य प्रयत्न
करना चाहिए। बोल चाल में लय को 'लौ लगाना' कहते हैं, यह लय
मन की वृत्ति का तारतम्य है जो प्रकाश रूप से भी वाणी, कर्म और
लक्षण से भी प्रगट होता है। पपीहे की नाईं रसना से रटना स्वाभाविक
रीति से स्वयं होने लगेगा। जैसे कुंज पक्षि घोसले को छोड़ कहीं भी
जाय, कछुवा अंडों को छोड़ कहीं भी जाय परंतु दृष्टि वा मन अंडों ही
में लगा रहेगा। जैसे बालक, सांप वा हिरन, गान वा वाद्य सुन,
स्तब्ध हो जाता है, बांस पर नट की जैसी वृति होती है, सिर पर गागर
धरे पनिहारी का ध्यान गागर ही में लगा रहता है, बछड़े को छोड़
गाय जंगल में जाती है, बच्चे को छोड़ मां दूर चली जाती है परंतु जी
अपना अपने बच्चे में निरंतर लगा रहता है, इसी प्रकार हरिभक्तजनों
का मन अपने प्रिय इष्टदेव भगवान् में ही लिपटा रहता है। यथा—]

शब्द से लौ या ध्यान के अर्थ में किया है।

चौपई छंद ।

जैसे कुंभ लेइ[१] पनिहारी । सिरि धरि हँसै देइ कर तारी ।
सुरति रहै गागरि कै मंझा । यौं जन लय लावै दिन संझा ॥३४॥
जैसैं गाइ जंगल कौं धावैं । पानी पिवै घास चरि आवैं ।
चित्त रहै बछरा कै पासा । ऐसी लय लावै हरिदासा ॥३५॥
ज्यौं जननी गृह काज कराई । पुत्र पिंघूरै पौढ़त भाई ।
डर अपनै तैं छिन न बिसारै । ऐसी लय जन कौं निस्तारै ॥३६॥
सब प्रकार हरि सौं लै लावै । होइ बिदेह परम पद पावै ।
छिन छिन सदा करै रस पाना । लय तैं होवै ब्रह्म समानां[२] ॥३८॥

चर्चा योग ।

[जैसे 'लय योग' प्रेमलक्षणा भक्ति से कुछ मिलता जुलता है, वैसे ही चर्चा योग को जिसको अब कहेंगे, नवधा भक्ति के कीर्तन से बहुत कुछ मिला सकते हैं । इसी प्रकार मंत्र योग को स्मरण से कुछ कुछ तुलना कर सकते हैं । प्रभु के अपार गुण और उसकी अपार लीला को दृष्टि द्वारा देख कर बारंबार हृदय में आनंदपूर्वक उनके संस्कार जमावे । व्यावहारिक दृष्टि से अर्थात् स्थूल में सुगम, साध्य, परंतु सूक्ष्म और अध्यात्म में उस मार्ग में जानेवालों के लिये कुछ दुःसाध्य परंतु परागति देनेवाला है । अपने अंतःकरण में उस महान् सृष्टि के महान् कर्ता भर्ता की जब मानसिक चर्चा का तार बँधता है और उस विवेचना से जो आनंद प्राप्त होता है उसमें मग्न होकर भक्त अपने स्वामी के विषय में कैसे कैसे विचार बाँधता है सो ही चर्चा योग का

---

१ पकना । २ समान—बराबर ।

रूप बना करता है। उसी के उदाहरण रूप कुछ छंद सुंदरदास जी के वचनामृत द्वारा सुनिए]

चौपई छंद।

अव्यक्त पुरुष अगम्य अपारा। कैसें के करिये निर्धारा।
आदि अंति कछु जाय न जानी। मध्य चरित्र सु अकथ कहानी॥४१॥
प्रथमहिं कीनौं ॐकारा। तातें भयौ सकल विस्तारा।
जावत यह दीसै ब्रह्मंडा। सातों सागर अरु नव खंडा॥४२॥
चंद सूर तारा दिन राती। तीनहुं लोक सृजे बहु भांती।
चारि खानि[1] करि सृष्टि उपाई। चौरासी लष जाति बनाई॥४३॥

* * * *

चर्चा करौं कहां लग स्वामी। तुम सब ही के अंतरजामी।
सृष्टि कहत कछु अंत न आवै। तेरा पार कौन यौं पावै॥४७॥
तेरी गति तूंही पै जानै। मेरी मति कैसे जु प्रवानै।
कीरी पर्वत कहा उचावै। उदधि थाह कैसे करि आवै॥४९॥

[इस प्रकार भक्तियोग, मंत्रयोग, लययोग और चर्चायोग समाप्त कर ग्रंथकार्त्ता सुंदरदास जी कहते हैं—]

दोहा छंद।

ये चारों अंग भक्ति के, नौधा इनहीं मांहि।
सुंदर घट मांहि कीजिये, बाहरि कीजै नांहिं[2]॥ ५१ ॥

---

१ चार खान=जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज। २ क्योंकि बाहर जो कुछ है वह अनित्य और मिथ्या माया है। भीतर अंतरात्मा, अपने संचित द्वारा नित्यता के साथ प्रतीत होता है।

(ग) योग प्रकरण।

हठयोग।

[भक्ति का प्रकरण कह कर अब योग का प्रकरण कहते हैं। इस प्रकरण के भी चार विभाग ग्रंथकर्त्ता ने किए हैं अर्थात् हठ योग, राजयोग, लक्षयोग और अष्टांगयोग। इनमें पहले हठयोग को कहते हैं। "हठ-योग-प्रदीपिका" के अनुसार हठ का वर्णन ज्ञानसमुद्र ग्रंथ में हो चुका है, यहां केवल दिग्दर्शन मात्र है। हठयोग का अधिकारी किसी धर्मात्मा राजा के देश में विधिपूर्वक मठ बनाकर यथाविधि गुरु द्वारा हठ का साधन करे, स्वास जीते, यम नियम का साधन रक्खे, युक्ताहार विहार होकर रहे। सुंदरदास जी ने भोजन का विधान भी दिया है। योग के षट् कर्मों से नेती, धोती, बस्ती तथा त्राटक, नौली मुद्रा, कपालभाती आदि से शरीर की नाड़ियों को शुद्ध करे। निरंतर अभ्यास से आनंद और सिद्धियां प्राप्त होंगी।]

चौपई छंद।

यह षट कर्म सिद्धि के दाता। इन तैं सूक्षम होय सुगाता॥१०॥
आँव पित्त कफ रहै न कोई। नख सिख लौं वपु निर्मल होई।
ह दाभ्यास तैं होय सुछंदा। दिन दिन प्रगटै अति आनंदा॥११॥

राजयोग।

[हठ योग द्वारा मन, शरीर और नाड़ियों को शुद्ध किया हुआ योगी राजयोग के साधन में तत्पर होवे। राजयोग का मार्ग कठिन है। बिना समझे उसमें आनंद नहीं मिलता। राजयोगी उर्ध्वरेता होकर वीर्य को मस्तक वा शरीर में स्तंभन करके अजर काय हो जाता है फिर मनोनिग्रह में तत्पर हुआ शनैः शनैः ब्रह्मानंद को पाने लगता है। जलकमलवत् आप अपने से अलिप्त, क्षुधा पिपासा निद्रा शीत

ऊष्णादिक उसके वशवर्ती होते हैं। राजयोगी के कुछ लक्षण और उसकी कुछ विभूति के लक्षण सुंदरदास जी ने दिए हैं। यथा—]

चौपई छंद।

सदा प्रसन्न परम आनंदा। दिन दिन कला वधै ज्यूं चंदा।
जाकौ दुख अरु सुख नहिं होई। हर्ष शोक व्यापै नहिं कोइ।।१७।।
अग्नि न जरै न बूडै पानी। राजयोग की यह गति जानी।
अजर अमर अति वज्र शरीरा। खड्गधार कछु विधै न धीरा।।२०।।
जाकौं सब बैठ ही सूझै। अरु सबहिन की भाषा बूझै[1]।
सकल सिद्धि आज्ञा महि जाकै[2]। नव निधि सदा रहैं ढिग ताके २१
मृत्यु लोक महि आपु छिपावै। कबहुंक प्रगट सु होय दिखावै।
हृदै प्रकाश रहै दिन राती। दखै ज्योति[3] तेल बिन वाती।।२३।।

लक्ष्ययोग।

[लक्ष्ययोग मे किसी निश्चित वा कल्पित पदार्थ पर दृष्टि वा मन की वृत्ति लगाई जाती है। इसका साधन सुगम है। योग के ग्रंथों में तथा स्वरोदय के अंग में इसका वर्णन आया है यथा 'अधोलक्ष्य' नासिका के अग्र पर दृष्टि का ठहराना इससे मन की चंचलता रुकती है। 'उर्द्धलक्ष्य' आकाश में दृष्टि रखना इससे कई प्रकार की रोशनियां और गुप्त पदार्थ दिखने लगते है। 'मध्यलक्ष्य' मन में किसी पुरुष विशेष का विचार करै इससे सात्विक वृत्ति बढ़ती है। 'वाह्यलक्ष्य' पांचों तत्वों का साधन करे जैसा कि इसका विस्तार स्वरोदय में लिखा है। 'अंतर्लक्ष्य' ब्रह्म नाड़ी के अभ्यास से प्रकाश

---

१ कई एक महात्मा कई वाणियां जानते वा बोलते सुने गए हैं इसका कारण यह योग ही है। २ राजयोग और हठयोग से सिद्धियों का मिलना सुप्रसिद्ध है। ३ ज्योतिस्वरूप परमात्मा का प्रकाश।

का हृदय में उत्पन्न करना। 'ललाट लक्ष्य' एक बड़े चमकते हुए तारे को ललाट में कल्पना कर के देखना। इससे शरीर के रोग निवृत्त होते हैं, और कई गुण भी प्राप्त होते हैं, इसी तरह 'त्रिकुटी लक्ष्य' में लाल रंग के भौंरे के समान का ध्यान करे इससे जगत्प्रिय बनेगा]

अष्टांगयोग।

[अष्टांग योग में—यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि (ये) अंतर्गत हैं। इनका विस्तृत वर्णन 'ज्ञान समुद्र' के तृतीयोल्लास में आ चुका है, इसलिये यहां पुनरोक्ति की आवश्यकता नहीं। समाधि के विषय में एक दो चौपाइयां देते हैं]

समाधि लक्षण। चौपाई छंद।

अब समाधि ऐसी विधि करई। जैसे लौन[1] नीर महिं गरई।
मन इंद्री की वृत्ति समावै। ताकौ नाम समाधि कहावै ॥४९॥
जीवातम परमात्मा होई। समरस करि जग एकै होई।
बिसरै आप कछू नहिं जानै। ता को नाम समाधि बखानै ॥५०॥

❀ ❀ ❀ ❀

सांख्य योग।

[सांख्य योग का वर्णन ज्ञान समुद्र के चौथे उल्लास में कर दिया है इसलिये यहां दोहराने की आवश्यकता नहीं। इसमें केवल नाम मात्र ही चौबीस तत्त्वों की गणना कर दी है। आत्म अनात्म का

---

१ लोन की पूतरी (पुतली) का आख्यान सुप्रसिद्ध है। समुद्र से लवन होता है, लवन से बनी मूर्ति समुद्र में पिघल कर कुछ शेष नहीं रहती, इसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा में उपाधि टूट जाने पर लीन हो जाता है।

भेद, आत्म क्षेत्रज्ञ और शरीर क्षेत्र बताया है। सांख्य योग के ४ प्रकार हैं—सांख्ययोग, ज्ञानयोग, ब्रह्मयोग और अद्वैतयोग। इनका भिन्न भिन्न वर्णन किया है, जिनमें से सांख्य योग का वर्णन ऊपर लिख चुके हैं नेमून की चौपाई देते हैं]

चौपई छंद।

यह चोवीस तत्व वंधानं। भिन्न भिन्न करि कियो वषानं।
सब को प्रेरक कहिये जीव। सो क्षेत्रज्ञ निरंतर सीवं[1] ॥ ९ ॥
सकल वियापक अरु सर्वंग। दीसै संगी आहि असंग।
साक्षी रूप सबन तै न्यारा। ताहि कछू नहिं छिपै विकारा ॥१०॥
यह आतम अन-आतम निरना। समझै ताकूं जरा न मरना।
सांख्य सु मत याही सों कहिये। सत गुरु विना कहौ क्यों लहिये॥

ज्ञान योग।

["ज्ञानयोग में यह सिद्धांत निरूपण किया है कि आत्मा कारण है, और विश्व कार्य है, अर्थात यह सृष्टि आत्मामय है आत्मा ही से इसका विकाश और आत्मा ही में इसका लय है। सुंदर-दास जी ने अनेक उदाहरण दिए हैं जिनसे आत्मा और संसार का अभेद सा समझ में आता है और आत्मा विश्व का निमित्त कारण तथा उपादान कारण भी है। यथा—)

चौपाई छंद।

ज्यौं अंकुर ते तरु विस्तारा। बहुत भांति करि निकसी डारा।
शाषा पत्र और फर फूला। यों आतमा विश्व को मूला ॥१४॥

---

१ शिव—केवल, साक्षी मात्र।

जैसे उपजे वायु वभूरा[1]। देषत के दीसैं पुनि भूरा।
आंटी छूटे पवन समाहीं। आतम विश्व भिन्न यों नाहीं॥१६॥
जैसे उपजे जल के संगा। फेन बुदबुदा और तरंगा।
ताही मांझ लीन सो होई। यों आतमा विश्व है सोई॥१८॥

ब्रह्मयोग।

["ब्रह्मयोग" में इस सिद्धांत का प्रतिपादन है कि जीव को ब्रह्म के साथ उस अभेद अज्ञान का निज अनुभव द्वारा, साक्षात्कार होजाय, कि जो वेदांत के महावाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' से, तथा अपरोक्ष वृत्ति द्वारा प्रकाशित होता है। यथा—]

चौपाई छंद।

ब्रह्मयोग का कठिन विचारा। अनुभव विना न पावै पारा॥२५॥
ब्रह्मयोग अति दुर्लभ कहिये। परचा[2] होइ तबहिं तौ लहिये।
ब्रह्मयोग पावै निःकामी[3]। भ्रमत सु फिरै इंद्रियारामी[4]॥२६॥
आयु ब्रह्म कछु भेद न आनैं। अहंब्रह्म ऐसै करि जानैं।
अहं परात्पर अहं अखंडा। व्यापक अहं सकल ब्रह्मंडा॥३०॥

अद्वैतयोग।

[अद्वैतयोग में वह गुणातीत अवस्था वर्णन की है जो

---

१ भंवर—भ्रमर सा। अथवा भूरे वा भूसरे रंग का। बघूले की आकृति आकाश में जल के भँवर की सी प्रतीत होती है और मिट्टी आदि के मिलने से रंग भी पृथक् हो जाता है। २ परिचय—अनुभव। ३ भाषा में कहीं कहीं संधि नहीं भी करते हैं। ४ वहिर्मुख इंद्रियों से उधर आना असंभव है।

शुद्ध ब्रह्म के निरूपण में "नेति नेति" कह कर उपनिषदों में वर्णन की गई है। इसी प्रकार का वर्णन 'ज्ञानसमुद्र' ग्रंथ में भी आचुका है। यहां केवल बानगी मात्र देते हैं। यथा—]

चौपाई छंद।

अब अद्वैत सुनहु जु प्रकाशा। नाहं नत्वं नां यहु भासा।
नाहिं प्रपंच तहां नहीं पसारा। न तहां सृष्टि न सिरजनहारा॥२७॥
न तहां सत रज तम गुन तीना। न तहां इंद्रिय द्वारन कीना।
न तहां जाग्रत सुप्न न धरिया। न तहां सुषुप्ति न तहां तुरिया॥४९॥

दोहा छंद।

ज्ञे ज्ञाता नहिं ज्ञान तहं, ध्ये ध्याता नहिं ध्यान।
कहनहार सुंदर नहीं, यह अद्वैत बषान॥ ५० ॥

---

(२) पंचेंद्रिय चरित्र ग्रंथ।

["पंचेंद्रिय चरित्र" ग्रंथ में ६ उपदेश हैं, जिनमें से ज्ञान इंद्रियों के वर्णन में पांच और समाहार में एक। प्रत्येक इंद्रिय का स्थानापन्न एक ऐसा पशु वा जंतु लिया है कि जिसमें उस इंद्रिय की प्रबलता होती है। उस प्रबलता के अधीन होकर उस पशु की जो दुर्गति होती है उसीका एक आख्यान के साथ वर्णन किया है। इस प्रकार के दृष्टांत संस्कृत साहित्य में बहुत स्थानों में मिलते हैं।

---

१ आभास, प्रकाश—यह सृष्टि जो भासमान है। २ फैलाव, सृष्टि। ३ क्योंकि कर्त्तापन गुणोपहित होने से होता है। ४ ज्ञेय=जानी जाय सो वस्तु। किसी वस्तु के ज्ञान में तीन बातें अवश्य हों—एक वह पदार्थ, उसका जाननेवाला और जानने की क्रिया जिसके द्वारा ज्ञाता और ज्ञेय का संबंध हो। इसी प्रकार ध्यान में है।

इस प्रकार इंद्रियों और मन की विषयलोलुपता का अच्छा परिचय हो जाता है। इसी से परोपकारी महात्मा सुंदरदास जी ने ऐसे आख्यानों को एकत्र कर, भाषा काव्य कर दिया है। इसमें प्रथमोपदेश में काम-इंद्रिय वा स्पर्श के वश हो कर हाथी बन में से पकड़ा गया यह आख्यान है। दूसरे में भ्रमरचरित्र है, सुगंधप्रिय भ्रमर घ्राण-इंद्रिय के वश हो कमल में बंद हो कर मारा गया। तीसरे में मीनचरित्र है, स्वादुलोलुप मछली रसना-इंद्रिय के फंदे में पड़ शिकारी की बंसी के कांटे से उलझ कर प्राण खो बैठती है। इसी प्रकार मर्कट, बाजीगर के फंदे में पड़ा और शृंगीऋषि का तप वेश्या द्वारा भंग हुआ, (ये दो आख्यान और भी हैं)। चतुर्थ उपदेश में पतंगचरित्र है, रूप का प्रेमी पतंग (जंतु) चक्षु-इंद्रिय की प्रबलता के अधीन हो कर, दीपक में पड़ कर जल जाता है। पंचम उपदेश में मृगचरित्र का वर्णन किया है, श्रोत्र-इंद्रिय की प्रबलता के कारण नाद-रस में निमग्न होकर मृग बधिक के तीर से मारा गया, तथा इसी नाद के आनंद से सर्प भी गारुड़ी के हाथ लगा। छठे उपदेश में मनुष्य के सर्व पांचो ज्ञान-इंद्रियों के वशीभूत होने पर साधारण तथा विशेष रीति से उपदेश वर्णन किया है और इंद्रिय दमन के विषय में स्पष्ट रूप से कहा है। अब छहों उपदेशों से कुछ कुछ छंद साररूप दिए जाते हैं।]

(क) गजचरित्र। चंपक* छंद।

गज क्रीडत अपने रंगा, बन में मदमत्त अनंगा।
बलवंत महा अधिकारी, गहि तरवर लेई उपारी ॥ २ ॥

---

* यह सखी छंद १४ मात्रा का होता है और अंत में यगण वा मगण होता है।

इकु मनुष तहां कोड आवा, तिहि कुंजर देष न पावा ।
उन ऐसी बुद्धि बिचारी, फिरि आवा नग्र मझारी ॥ ९ ॥
तब कह्यौ नृपति सौं जाई, इक गज वन मांझ रहाई ॥१०॥
जौ लै आवै गज भाई, देहौं तव बहुत बधाई ॥११॥
तब विदा होई घर आवा, मन में कछु फिकरि उपावा ॥१५॥
तब बुद्धि विधाता दीनी, कागद की हथनी कीनी ॥१६॥
तब दूत तहां लै जांही, गज रहत जहां बन माहीं ॥१९॥
तहां खंदक कीना जाई, पतरे तृण दीन छवाई ।
तृण ऊपरि मृतिका नाषी, तव ऊपरि हथिनी राषी ॥२०॥
हथनी को देखि स्वरूपा, सठ धाइ पऱ्यौ अँध कूपा ॥२२॥

दोहा छंद ।

धाइ पऱ्यौ गज कूप में, देष्या नहीं विचारि ।
काम-अंध जानै नहीं, कालवूत की नारि ॥ २३ ॥

[हाथी जब फँस गया, तो कुछ दिन उसको भूखा रख कर मद उसका उतार दिया गया और फिर उसे राजा के पास ले आए। और वह वहां बाँधा गया।]

गज भया काम बसि अंधा, गहि राजदुवारै बंधा ।
गज काम अंध गहि कीना, इहि काम बहुत दुख दीना ॥३५॥

दोहा ।

काम दिया दुख बहुत ही, बन तजि बंध्या ग्राम ।
गज बपुरे की को कहै, विश्व नचाया काम ॥ ३६ ॥

[अब यहां ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र, चंद्रमा, पराशर मुनि, शृंगी ऋषि,

---

१ जो कुछ अंदर भरा जाय—भरत । बनावट ।

बालि, रावण, विश्वामित्र, कीचक आदि के आख्यानसूचक वाक्य कहे हैं।]

दोहा छंद।

गज व्यवहारहि देषि करि, वेगहि तजिये काम।
सुंदर निसि दिन सुमरिये, अलष निरंजन राम ॥४५॥

(ख) भ्रमरचरित्र। दोहा छंद।

बैठत भ्रमर कली कली, चंचल चपल सुभाव।
त्रिपति न होइ सुगंध मैं, फिरत सु अपने चाव ॥ ६ ॥

[फूल फूल पर बास लेता लेता भौंरा तृप्त न हुआ। निदान उड़ते उड़ते वह लालची कमल के पुष्प पर पहुँचा। उसकी सुगंध से मस्त होकर उसही में जमा रहा। सूर्यास्त होने पर कमलदल संपुटित होगए। अलि भी उसमें बंद होगया। आनंद से विचारने लगा।—]

चंपक छंद।

मन मैं यौं करत विचारा, सब रात पिऊं रस सारा।
उड़ि जाउं होइ जब भोरा, रजनी आऊं इहिं ठौरा ॥ ७ ॥
यह उत्तम ठौर सुवासा, इहँ करिहौं सदा विलासा।
हम बैठे पुष्प अनेका, कोउ कमल समान न एका ॥ ८ ॥

[रात भर इसी ध्यान में रहा। दिन उगने से पहले उस सरोवर पर एक हाथी जल पीने आया। जल पीकर क्रीडा करते करते कमलों को उखाड़ उखाड़ अपनी पीठ पर मारने लगा। वह कमल भी सूंड में आगया जिसमें वह भौंरा था। बस कमल को पीठ पर दे मारा, फिर पांव से कुचला। भौंरे का भी अंदर चुरकट होगया। सुगंध-लोलुप अलि के यों प्राणांत हुए।]

---

१ तृप्त—संतुष्ट।

चंपक छंद ।

जिन गंध विषै मनु दीना, ते भये भ्रमर ज्यौं छीना ।
जिनिके नासा वसि नाहीं, ते अलि ज्यौं देपु विलाहीं ॥१६॥

(ग) मीनचरित्र। दोहा छंद ।

मीन मग्न जल मैं रहै, जल जीवन जल गेह ।
जल बिछुरत प्राणहिं तजै, जल सौं अधिक सनेह ॥ १ ॥

[अपने निवास भवन में मछली आनंदपूर्वक रहती विचरती थी । किसी का कुछ खटका नहीं था । दैवात् एक धीवर वंसी की डोर में कांटा और मांस की 'बेट' लगा कर आया । बेट को अपना भक्षण जान अजान मछली ने उसको खाया तो कांटे से गला छिद गया । निकालने को बहुत कुछ छटपटाई । ऊपर डोरा हिलते ही वंसी खिची । मछली जल से बाहर आई और उसके प्राण पखेरु उड़ गए । जिह्वा के स्वादवश मीन का यों अंत हुआ । धीवर मछली को ले गली गली बेचता फिरा ।]

चंपक छंद ।

सठ स्वाद माहिं मन दीना, जिह्वा घर घर का कीना ।
जिसं[2] गहिरे ठौर ठिकाना, सो रसना स्वाद विकाना ॥११॥

[मछली की तो हुई सो हुई । एक बंदर स्वादवश पकड़ा गया । बाजीगर ने पृथ्वी में मटकी गाड़ उसमें कुछ खाने को रखा, बंदर ने अंदर हाथ डाला, बाहर न निकाल सका और चिल्लाया तो बाजीगर ने पहुंच कर गले में रस्सी डाल बांध लिया और वह उसे घर घर नचाता फिरा ।]

---

१ विलीयमान होजाते हैं—नाश हो जाते हैं । २ जिसका ।

जो जिह्वा नहीं सँभारा, तौ नांचै घर घर बारा।
यह स्वाद कठिन अति भाई, यह स्वाद सबनि को षाई ॥२३॥

[बंदर की भी क्या चलाई, शृंगी ऋषि महात्यागी थे, वन में रह फल फूल खा घोर तप करते थे। इंद्र ने तपभंग करने को वृष्टि बंद करदी। राजा ने दैवज्ञों के कहने से ऋषि को बुलाने का उपाय किया। एक वेश्या के बन में आकर ऋषि को स्वाद की चाट पर चढ़ा कर उनको वश में कर उनका तप भंग कर दिया।]

जो रसना स्वाद न होई, तौ इंद्री जगै न कोई ॥ ६५ ॥

दोहा।

मीन चरित्र विचारि कैं, स्वाद सबै तजि जीव।
सुंदर रसना रात दिन, राम नाम रस पीव ॥ ६६ ॥

(घ) पतंगचरित्र।

[दीपक की ज्योति पर, चक्षु-इंद्रिय के वश हो, पतंग ऐसा पड़ता है कि उसे अपनी देह की कुछ सुधि नहीं रहती, और दीपक पड़ कर भस्म भी हो जाता है।]

दोहा छंद।

देह दीप छबि तेल त्रिय, बाती वचन बनाइ।
वदन ज्योति दृग देषि कैं, परत पतंगा आइ ॥ १ ॥

[पतंग यह कहां समझता है कि जिस में वह पड़ता है, सो अग्नि है। इस दृष्टि का इतना बल है कि बुद्धि नष्ट होजाती है अपने आपे की सम्हाल भी नहीं रह सकती है।]

चंपक छंद।

यह दृष्टि चहूं दिश धावै, यह दृष्टिहि षता षवावै।
यह दृष्टि जहां जहां अटकै, मन जाइ तहां तहं भटकै ॥ ५ ॥

कोइ योगी जती सन्यासी, वैरागी और उदासी।
जो देह जतन करि राषै, तो दृष्टि जाइ फल चाषै ॥ १९॥

[दूसरी भांति विचार से, डाइन की दृष्टि बुरी होती है, उसके पड़ने से किसी बच्चे को दुःख हुआ, तो डाइन की लोगों ने दुर्दशा की, मूंड मुँड़ा, मुख काला कर, नाक काट, गदहे पर चढ़ा, गली बाज़ार फिरा, बाहर निकाला। यह दृष्टि (नज़रेबद) लगाने का फल हुआ।]

यह सकल दृष्टि की बाजी, सब भूले पंडित काजी।
यह दृष्टि कठिन हम जाना, देवासुर दृष्टि भुलाना ॥२०॥
कोई संत दृष्टि यह आवै, सब ठौर ब्रह्म पहिचानै।
कहै सुंदरदास प्रसंगा, यह देषि चरित्र पतंगा ॥२१॥

दोहा छंद।

देषि चरित्र पतंग का, दृष्टि न भूलहु कोइ।
सुंदर रमिता राम कौं, निसि दिन नैनहुं जोइ ॥ २२ ॥

(ङ) मृगचरित्र।

[हरिन सुंदर नाद पर ऐसा आसक्त हो जाता है कि शत्रु मित्र का भी भेद उसको नहीं भासता। किसी बन में एक मृग बड़ा ही चंचल और अपनी "मौज" से चरता और विचरता रहता था। एक व्याध उधर आ निकला और उसने ऐसा सुंदर नाद बजाया कि मृग की सुध बुध बिसर गई। जब बधिक ने यह हाल देखा तो तीर मार उस का काम तमाम किया। कर्णेंद्रिय के वश होकर नाद के रस की फांसी में फँस कर मृग ने अपने प्राण ही खोए।]

चंपक छंद।

यह नाद विषै मन लावै, सो मृग ज्यौं नर पछितावै।
इहिं नाद विषै जो भीना, सो होइ दिनै दिन छीना ॥ ९ ॥

[इसी प्रकार नाद के वश हो कर सर्प भी पकड़े जाते हैं। इससे जाना गया कि कर्णेंद्रिय के विषय से अर्थात नाद या स्वर से जीव मोहित हो जाता है।]

चंपक छंद।

यह नाद करै मन भंगा, यह नाद करै बहु रंगा।
यहि नाद माहिं इक ज्ञानं, तिहि समुझै संत सुजानं ॥ २१ ॥

दोहा छंद।

मृग चरित्र उपदेश यहु, नाद न रीझहु जान।
सुंदर यह रस त्याग के, हरिजस सुनिये कान ॥ २२ ॥

(च) पंचेंद्रिय-निर्णय।

[अब पांचों इंद्रियों को समुदाय रूप से वर्णन करते हैं और उनके प्रभाव, बल और स्वभाव के निरोध के फल, और अनवरोध के दोष, तथा इंद्रिय-दमन से मनुष्य जन्म का साफल्य वर्णन करते हैं।]

दोहा छंद।

गज अलि मीन पतंग मृग, इक इक दोष विनाश।
जाके तन पंचौं बसै, ताकी कैसी आश ॥ १ ॥

चंपक छंद।

अब ताकी कैसी आसा, जाकै तन पंच निवासा।
पंचौं नर कै घट मांहैं, अपना अपना रस चाहैं ॥ २ ॥

---

१ अनाहद नाद से अभिप्राय है जो समाधि अवस्था में होता है।

इन पंचौं जगत नचावा, इन पंच सबनि कौं षावा।
ए पंच प्रबल अति भारी, कोउ सकै न पंच प्रहारी ॥ ६ ॥
ए पंचौं षोवै लाजा, ए पंचौं कराहिं अकाजा।
ए पंच पंच दिशि दौरैं, ए पंच नरक मैं बोरैं ॥ ७ ॥

दोहा छंद।

पंचौं किनहु न फेरिया, बहुते कराहिं उपाइ।
सर्प सिंह गज बसि करै, इंद्रिय गही न जाइ ॥११॥

[इन पांचों इंद्रियों के वशीभूत होकर मनुष्य पाखंडी साधुओं का भेष बनाकर कोई तो पंचाग्नि ले, कोई चौड़े बैठकर वर्षा, शीत, और घाम ले, कोई निरंतर खड़े रहने से, कोई मौनादि व्रत धारण करने से देह को वृथा कष्ट देते हैं, और कोई हिमालय में गल कर, और काशी करोतादि से देह को नाश करते हैं। वास्तव में तो पांचों इंद्रियों को मारना यही सच्चा तप है। जिसने इनको जीत लिया है उसने सबको जीत लिया है। जिसने इनको दमन किया है वही सच्चा साधु है, यती है, पीर है और वही भगवान का प्रिय है। इंद्रियों को दमन करने की विधि भी कह दी गई है।]

चंपक छंद।

कोउ साधू यह गति जानै, इंद्रिय उलटी सब आनै।
इनि श्रवना सुनै हरि गाथा, तब श्रवना होंहि सनाथा ॥३७॥
हरि दर्शन कौं दृग जोवैं, ए नैन सफल तब होवैं।
हरि चरण कमल रुचि घ्राणं, यह नासा सफल बषाणं ॥३८॥

---

१ दमन करे। २ अंतर्मुखी करे, विषयों से खींच कर अंतर्गामी करे। भगवत् संबंधी विषय को इनका अवलंब बना दे।

इहिं जिह्वा हरि गुन गावै, तब रसना सफल कहावै।
इहिं अंग संत कों भेटै, तब देह सफल दुष मेटै ॥३९॥
कछु और न आनैं चीतै[1], ऐसी विधि इंद्रिय जीतै।
यह इंद्रिन कौ उपदेशा, कोउ समुझै साधु संदेशा[2] ॥४०॥
यह पंच इंद्रिनि कौ ज्ञाना, कोउ समुझै संत सुजाना।
जो सीषै सुनै रु गावै, सो राम भक्ति फल पावै ॥४१॥
यह संवत सोलह सैका, नवका पर करिये एका[3]।
सावन वदि दशमी भाई, कविवार कह्या समुझाई ॥४२॥

---

(३) सुखसमाधि ग्रंथ।

[महात्मा सुंदरदास जी वत्तीस अर्द्ध सवैया वृत्तों में सुख समाधि का निज अनुभव वर्णन करते हैं। जैसा कि सत्याचार्य स्वामी श्री शंकराचार्य आदि वेदांत-प्रवर्तकों ने इस ज्ञान को, सुख समाधि को, अनिर्वचनीय आनंद और अलौकिक सुख बताया है वैसे ही यह महात्मा जी भी उसके वर्णन की चेष्टा करते हैं। वस्तुतः "सुख का सोना" समाधिनिष्ट होना ही है, जैसा कि कहा है "शेते सुखं कस्तु समाधि निष्ठः"[4]—सुख से कौन सोता है ? जो समाधिनिष्ट होता है। इस सुख का स्वाद 'गूंगे के गुड' के समान है, घृत के स्वाद को कोई नहीं बता सकता, यद्यपि सब कोई खाते हैं। परम तत्त्व की प्राप्ति और स्वात्मानुभव का आनंद जब प्राप्त होता है तो स्वयमेव कर्म उसी तरह छूट जाते हैं जैसे सांप की केचुली। यह अंतरवृत्ति और मस्ती कुछ अलबेली ही होती है। यही सबसे ऊंची वस्तु

---

१ चित्त में। २ उपदेश की सैन। ३ संवत् १६९१। श्रावण वदि १०। शुक्रवार॥ ४ शंकराचार्य्यकृत प्रश्नोत्तरमालिका।

है, और घने मोल की वस्तु है, कि जिसके मिल जाने पर वा जिसकी प्राप्ति के अर्थ संसार तुच्छ समझा जाकर छोड़ दिया जाता है। नमूने के तौर पर स्वामी सुंदरदास जी इस सुख को कैसा वर्णन करते हैं सो दिखाते हैं—]

अर्द्ध सवइया छंद।

आत्म तत्व विचार निरंतर, कियौ सकल कर्म को नाश।
घी सौं घौंटि रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥ ५ ॥
कौण करै जप तप तीरथ व्रत कौंण करै यमनेम उपास।
घी सौं घौंटि रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥ ७ ॥
अर्थ धर्म अरु काम जहां लौं मोक्ष आदि सब छाड़ी आस।
घी सौं घौंटि रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥१२॥
वार वार अब कासौं कहिये हूवौ हृदय कँवल विगास।
घी सौं घौंटि रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥२०॥
अंधकार मिटि गयौ सहज ही वाहरि भीतरि भयौ उजास।
घी सौं घौंटि रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥२१॥
जाकौं अनुभव होइ सु जाणै पायौ परमानंद निवास।
घी सौं घौंटि रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥२४॥

---

(४) स्वप्नप्रबोध ग्रंथ।

[इस स्वप्नप्रबोध ग्रंथ में स्वामी सुंदरदासजी ने यह दिखलाया

---

१ घृत का जैसा अनिर्वचनीय आस्वादन होता है और उसके खाने से जो आनन्द की वृत्ति होती है। घृत का घोरा मुख, गले और पेट में बहुत काल तक रहता है। वैसाही समाधि का सुख प्रतीत होता है।

है कि जैसे कोई मनुष्य सोता हुआ स्वप्न में अनेक पदार्थ और विचित्र बातें देखता है और जब तक स्वप्न रहता है सब को सत्य और यथार्थ समझता है, परंतु जब जागता है तो जाग्रत अवस्था की अपेक्षा स्वप्न अवस्था को मिथ्या समझता है क्योंकि स्वप्न में जैसा भासता था वैसा जाग्रत में विद्यमान नहीं मिलता, वैसे ही वह स्थूल संसार परम तत्व रूपी जाग्रत अवस्था प्राप्त होने पर सापेक्षतया स्वप्न सा मिथ्या वा जादू की भांति अयथार्थ प्रतीत होता है। जिनको अंतर्दृष्टि वा लिंग-शरीर वा कारण-शरीर की सिद्धि प्राप्त हो जाती है उन ही को इस बात का आभास होने लग जाता है, फिर जिनको परम शुद्ध तत्व निजानंद अवस्था मिल जाती है उनको तो क्यों नहीं हस्तामलकवत् दिखता होगा। अब स्वामीजी की उक्ति का सार देते हैं।]

दोहा छंद।

स्वप्नै में मेळा भयौ, स्वप्नै मांहि विछोह।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, नहीं मोह निर्मोह ॥ १ ॥
स्वप्नै में राजा कहै, स्वप्नै ही में रंक।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, नहिं साथरो[1] प्रयंक ॥ ५ ॥
स्वप्नै चौरासी भ्रम्यौ, स्वप्नै जम की मार।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, नहिं डूब्यौ नहिं पार ॥११॥
स्वप्नै में सुख पाइयौ, स्वप्नै पायौ दुःख।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, ना कछु दुःख न सुक्ख ॥१५॥
स्वप्नै में यम नेम व्रत, स्वप्नै तीरथ दान।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, एक सत्य भगवान ॥१९॥

---

१ घास का बिछौना।

स्वप्नै में भारत भयौ, स्वप्नै यादव नाश ।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, मिथ्या वचन विलास ॥२४॥
स्वप्न सकल संसार है, स्वप्ना तीनहु लोक ।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, तब सब जान्यौ फोक[1] ॥२५॥

---

(५) वेदविचार ग्रंथ ।

[स्वामी सुंदर दासजी ने २१ दोहों में वेद भगवान को त्रिकांड रूप वृक्ष के रूपक में ऐसा उतम वर्णन किया है और उस वृक्ष के कर्म रूपी पत्र, भक्ति रूपी पुष्प, ज्ञान रूपी फल ऐसी सुंदरता से लगा कर दिखाए हैं कि उसकी अधिक काट छांट करना मानो उस वृक्ष की शोभा बिगाड़ना है । इसलिये हम इसका अधिकांश उद्धृत करते हैं ।]

दोहा छंद ।

वेद प्रगट ईश्वर वचन, तामहिं फेर न सार ।
भेद[2] लहै सद्गुरु मिलें, तब कुछ करै विचार ॥ २ ॥
वेद वृक्ष[3] करि वर्णियौ, पत्र पुष्प फल जाहि ।
त्रिविध[4] भांति शोभित सघन, ऐसो तरु यह आहि ॥ ४ ॥

---

१ तुच्छ, तृण । (मारवाड़ में फोक एक क्षुद्र पोधा वा घास होता है जिसको ऊंट खाते हैं और जिसके फूल का साग होता है, परंतु यह घास बलहीन होता है । फोकट = मिथ्या, यह अर्थ भी है । २ गुह्य और ठेठ पते की बातें विना सच्चे गुरु के प्राप्तव्य नहीं । ३ वेद को प्रायः वृक्षरूप शास्त्रों में वर्णन किया है । ४ त्रिकांडवेद विख्यात है— कर्म्म, उपासना और ज्ञान ।

येक बचन हैं पत्र सम, येक बचन हैं फूल।
येक बचन हैं फल समा, समझि देषि मति भूल ॥ ५ ॥
कर्म पत्र करि जानिये, मंत्र[1] पुष्प पहिचानि।
अंत ज्ञान फल रूप है, कांड तीन यौं जानि ॥ ६ ॥
विषयी देष्यौ जगत सब, करत अनीति अधर्म।
इंद्रिय लंपट लालची, तिनहिं कहै विधि कर्म ॥ ७ ॥
जौ इन कर्मनि कौं करै, तजै काम आसक्ति।
सकल समर्पै ईश्वरहिं, तब ही उपजै भक्ति ॥१६॥
कर्म पत्र महिं नीकसै, भक्ति जु पुष्प सुवास।
नवधा विधि निशि दिन करै, छांडि कामना आस ॥१७॥
पीछै बाधा कछु नाहिं, प्रेम मगन जब होइ।
नवधा कु तब थाकि रहै, सुधि बुधि रहै न कोइ ॥१८॥
तब ही प्रगटै ज्ञान फल, समझै अपनो रूप।
चिदानंद चैतन्य घन, व्यापक ब्रह्म अनूप ॥१९॥
वेद वृक्ष यौं बरनियौं, याही अर्थ विचारि।
कर्म पत्र ताके लगे, भक्ति पुष्प निर्धारि ॥२०॥
ज्ञान सु फल ऊपर लग्यौ, जाहिं कहै वेदांत।
महा बचन निश्चै धरै, सुंदर तब है शांत[2] ॥२१॥

---

१ यहां मंत्र से उसका कार्य्य उपासन भी अंगीकृत होगा।
२ सुंदरदासजी ने अद्वैतवादी हो कर भी कर्म, उपासना को भी कैसा निभाया और आवश्यक कहा है, न कि मूर्ख वेदांतियों की नांई इन उपयोगी साधनों का तिरस्कार किया है।

(६) उक्त अनूप ग्रंथ।

[२१ दोहों के छोटे से ग्रंथ "उक्त अनूप" में यह दिखलाया है कि शरीर तमोगुण, रजोगुण, सतोगुणान्वित है, आत्मा नित्य मुक्त है असंग है, केवल भ्रमही से शरीर में आत्मा का संग माना गया है। जैसे स्थिर प्रतिबिंब जल के हिलने से हिलता हुआ दिखता है वैसेही त्रिगुणात्मक देह में निश्चल आत्मा चंचल सा देख पड़ता है, जड़ के संबंध में चेतन भी ऐसा प्रतीत होता है मानों इसकी चेतन सत्ता खोगई। जब तमोगुण और रजोगुण अथवा इनके साथ सतोगुण मिश्रित रहता है तो उत्तरोत्तर दुष्कर्म, दुःख, उद्यम, सुख और कर्म तथा यज्ञादि शुभकर्म की वांछादि उत्पन्न होती हैं, परंतु जब शुद्ध सात्विक वृत्ति उत्पन्न होती है तब कर्म और वासना, क्या इस लोक की और क्या परलोक की, छूट जाती है; यदि वासना रहती भी है तो मुक्ति की। और किसी सद्गुरु को पाकर उस से पूछने पर वह ऐसे शिष्य को उपयुक्त जानकर "भली भूमि में दीजिये तब वह निपजै षेत" इस आधार पर उसको सत्य उपदेश कर देता है और अल्प काल में ही ऐसे शुद्ध हृदय में निज स्वरूप का स्मरण होकर वह कृतार्थ होजाता है।]

तासौं सद्गुरु यौं कह्यो, तू है ब्रह्म अखंड।
चिदानंद चैतन्य घन, व्यापक सब ब्रह्मंड ॥१५॥
सुनि वह निश्चय धारि कैं, मुक्त भयौ ततकाल।
देष्यौ रजु कौ रजु तहां, दूरि भयौ भ्रम व्याल[१] ॥१६॥

---

१ सर्प।

शुद्ध हृदय में ठाहरै, यह सद्गुरु को ज्ञान।
अजर[1] वस्तु कौ जारि कैं, होइ रहै गळतान ॥१९॥
कनक पात्र में रहत है, ज्यौं सिंहनि कौ दुद्ध।
ज्ञान तहां ही ठाहरै, हृदय होइ जब शुद्ध ॥२०॥
शुद्ध हृदय जाकौ भयो, उहै कृतारथ जानि।
सोई जीवन मुक्त है, सुंदर कहत वषानि ॥२१॥

---

(७) अद्भुत उपदेश ग्रंथ।

[मन और इंद्रियों को विषयों से रोकने वा वचाने के लिये जो विलक्षण उपदेश की विधि ५७ दोहा छंदों में कही है उसी का नाम "अद्भुत उपदेश" ग्रंथ रखा है।]

परमातम सुत आतमा, ताकौ सुत मन धूर्त[2]।
मन के सुत ये पंच[3] हैं, पंचौं भये कपूत ॥ २ ॥
परमात्म साक्षी रहै, व्यापक सब घट मांहि।
सदा अखंडित एकरस, लिपै छिपै कछु नांहि ॥ ६ ॥
ताकौं भूल्यौ आतमा, मन सुत सौं हित कीन्ह।
ताके सुख सुख पावही, ताके दुख दुख कीन्ह ॥ ७ ॥
मनहित बंध्यौ पंच सौं, लपटि गयौ तिन संग।
पिता आपनो छाडि कैं, रच्यौ सुतन के रंग ॥ ८ ॥
ते सुत मद माते फिरहिं, गनैं न काहू रंच।
लोक वेद मरयाद तजि, निसि दिन करहिं प्रपंच ॥९॥

---

१ जो वस्तु अक्षय प्रतीत होती थी परंतु वास्तव में ऐसी न थी, जैसे देह वा अहंकार आदि। २ धूर्त वा अवधूत-रिंद। ३ पांचों ज्ञानेंद्रियां।

पंचौ दौरे पंच दिसि, अपने अपने स्वाद।
नैनूं राच्यौ रूप सौं, श्रवनू राच्यौ नाद ॥१०॥
नथवा रच्यौ सुगँध सौं, रसनू रस वस होय।
चरमू सपरस मिलि गयौ, सुधि बुधि रही न कोय॥१२॥

[ये पाँचों पुत्र पांच ढंगों के वश पड़ गए, बहुत अधीन और दीन हो गए। किसी पूर्व पुण्य से सद्गुरु आ प्रगटे और "श्रवनू" को समझदार जान कर पास बुलाया और चुपके से कान में कहा कि तुम को ठग लिए फिरते हैं, वे तुम्हें लूटना मारना चाहते हैं, तुम्हारी कुशल नहीं है, जल्दी चेतो और अपने पिता (मन) से शीघ्र जा कर कहो। "श्रवन" मन के पास आया और उसने उसको सब समाचार सुनाया। मन श्रवन के साथ सद्गुरु के पास आया और उसने प्रार्थना की कि लुटेरों से बचाइए। सद्गुरु ने कहा कि यह श्रवन तुम्हारा पुत्र तो ठीक है तुम्हारे अन्य ४ पुत्र कुपूत हैं उनको बुला कर समझाओ कि एकमता हो कर रहें और एक ठौर बैठें तो ठगों से छूट जांय। उपाय यह है कि "नैनू" तो श्रीहरि के दर्शन में लगें तो "रूप" ठग भाग जाय, और "नथवा" हरिचरण कमलों की सुवास लिया करे तो "गंध" ठग जाता रहे, और "रसनू" हरि नाम को रटा करे तो "स्वाद" ठग चला जाय, और "चरमू" भगवत् से मिलने की रुचि रक्खा करे तो "स्पर्श" ठग पास न आवे और "श्रवन" हरिचर्चा करे तो "नाद" ठग भाग जाय। इस उपाय से पुत्रों और पिता ने मिल हरि का भजन किया तो पांचों ठगों से बच गए और गुरु ने प्रसन्न हो कर निर्मल ज्ञान बताया।]

---

१ इंद्रियों के ऐसे नाम मनुष्यों के पुत्रों के नामों से समोच्चार बना कर दिए हैं।

तब सद्गुरु इनि सबनि कौं भाष्यौ निर्मल ज्ञान ।
पिता पितामह परपिता, धरिये वाकौ ध्यान ॥५०॥
तब पंचौं मन सौं मिलै, मन आतम सौं जाइ ।
आतम पर आतम मिलै, ज्यौं जल जलहिं समाइ ॥५३॥
अपने अपने तात सौं, बिछुरत ह्वै गए और ।
सद्गुरु आप दया करी, लै पहुंचाये ठौर ॥५४॥
प्रसरे हु ये शक्तिमय, संकोचे शिव होई ।
सद्गुरु यह उपदेश करि, किये वस्तुमय सोइ ॥५५॥
जैसैं हीं उतपति भई, तैसैं ही लयलीन ।
सुंदर जब सद्गुरु मिले, जो होते सो कीन ॥५६॥

---

(८) पंच प्रभाव ग्रंथ ।

[यह छोटा सा ३० दोहों का ग्रंथ इस बात को दिखलाने को है कि भक्ति ब्रह्म की मानों पुत्री है और माया उस पुत्री की दासी है । जो पुरुष भक्ति से संबंध रखते हैं वे तो मानो जाति में हैं और जो दासी से, वे जाति बाहर ही हैं । तीनों गुणों के अनुसार भक्ति तीन प्रकार की, उत्तम, मध्यम, अधम होती है और चौथी अधमाधम गति जगत वा संसारी मायालिप्त पुरुषों की है । इन चारों से ऊपर

---

१ इस दार्शनिक युक्ति को विचारें और उच्चतम दर्शन की युक्ति को भी याद करें । भारत के विद्वानों में ये बातें स्वाभाविक सी होती हैं । आकुंचन प्रसारण का नियम स्थूल में ही नहीं सूक्ष्म में भी है । मनोनिरोध योग है सो पातंजल मुनि कितना पहले कह गए । यहां शक्ति=माया, सृष्टि । शिव=ब्रह्म, निर्गुण वस्तु । २ वस्तु=निर्गुण परात्पर परमात्मा ।

शिरोमणि गति तुरियातीत ज्ञानी की है। इस प्रकार पंच प्रभाव हैं। इनमें ज्ञानी सर्वोत्तम है। वह माया के गुणों से अलिप्त और असंग रहता है।]

देह प्राण कौ धर्म यह शीत उष्ण क्षुत् प्यास।
ज्ञानी सदा अलिप्त है ज्यौं अलिप्त आकास ॥२९॥

---

(९) गुरुसंप्रदाय ग्रंथ।

[इस ग्रंथ में प्रतिलोम रीति से अर्थात् स्वयं अपने आप से लगाकर सुंदरदास जी ने अपने आदि गुरु ईश्वर तक गुरुपरंपरा देकर अपनी ब्रह्मसंप्रदाय का, किसी के प्रश्न के उत्तर में परिचय दिया है। यह प्रणाली अन्य किसी भी स्थल में नहीं मिलती। * इसको दोहा चौपाई में वर्णन किया है जिनकी संख्या ५३ है। प्रारंभ में स्वामी जी ने द्यौसा नगरी में दादू जी के आने पर उनसे कैसे उपदेश ग्रहण कर शिष्यत्व को पाया सो भी लिखा है।]

प्रथमहिं कहौं अपनी वाता।
मोहि मिलायो प्रेरि विधाता।
दादूजी जब द्यौसह आये।
बालपनैं हम दरसन पाये ॥ ६ ॥
तिनके चरननि नायौ माथा।
उनि दीयो मेरे सिर हाथा।

---

* जयगोपालकृत 'दादू जन्मलीला परिचय,' चतुरदास कृत "थंभा पद्धति', राघवदासकृत 'भक्तमाल' (जिसमें दादूजी की ब्रह्मसम्प्रदाय का भी विशेष ब्योरा है), हीरादासकृत 'दादूरामोदय' (संस्कृत का ग्रंथ) इत्यादि में यह नामावली कुछ भी नहीं है।

स्वामी दादू गुरु है मेरौ।
सुंदरदास शिष्य तिन केरौ ॥ ७ ॥

[दादू जी के गुरु वृद्धानंद हुए। वृद्धानंद के गुरु कुशलानंद। आगे जो विस्तार से नामावली दी है वह इस प्रकार है—वीरानंद, धीरानंद, लब्ध्यानंद, समतानंद, क्षमानंद, तुष्टानंद, सत्यानंद, गिरानंद, विद्यानंद, नेमानंद, प्रेमानंद, गलितानंद, योगानंद, भोगानंद, ज्ञानानंद, निःकलानंद, पुष्कलानंद, अखिलानंद, बुद्धयानंद, रमतानंद, अरण्यानंद, सहजानंद, निजानंद, वृद्धानंद शुद्धानंद, अमितानंद, नित्यानंद, सदानंद, चिदानंद, अद्भुतानंद, अक्षयानंद, उजागर, अच्युतानंद, पूर्णानंद, ब्रह्मानंद। इसमें सुंदरदास जी से लगाकर ब्रह्मानंद तक ३८ नाम हैं। ब्रह्मानंद से चलने से ब्रह्मसंप्रदाय कहाई। यह सुंदरदास जी के कहने का अभिप्राय है]

परंपरा परब्रह्म तैं आयौ चलि उपदेश।
सुंदर गुरु तैं पाइये गुरु बिन लहै न लेश ॥४८॥

---

(१०) गुन उत्पत्ति * नीसानी ग्रंथ।

[इस छोटे से ग्रंथ में २० नीसानी छंदों से त्रिगुणात्मक सृष्टि का प्रसार, ब्रह्मा, विष्णु महेश त्रिगुण मूर्ति, इंद्र और सुर, असुर, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, विद्याधर, भूत, पिशाच आदि की रचना, चंद्रमा, सूरज दो दीपक, नभ के वितान में तारों का जडाव, सात द्वीप नौ खंड में दिन रात की स्थापना, सागर और मेरु आदि अष्टकुली पर्वत जिनसे

---

* जयगोपाल कृत 'दादूचर्चा' में इनका उल्लेख है।

⊕ 'नीसानी' शब्द दो अर्थों में लगाया गया है—एक तो छंदनाम, दूसरे नीसानी (निशानी)=पहिचान, लक्षण।

अनेक नदियों का निकास, अठारह भार वनस्पति और अनेक प्रकार के फल फूल और समय समय पर मेघों से पानी का बरसना, मनुष्य पशु पक्षी आदि, स्वेदज जरायुज अंडज उद्भिज, खेचर, भूचर जलचर, अगणित कीट पतंग, चौरासी लाख योनि की जीवाजून आदि सृष्टि उस कर्तार ने वैकुंठ से लगाकर शेष नाग पर्यंत विस्तार से बनाई है। इस सृष्टि को तो बना दिया और आप छुपकर सबमें व्यापक हो कर भी प्रगट नहीं होता है परंतु फिर भी वह चेतन शक्ति घट घट में "छानी" नहीं रहती। यह पदार्थों के "हलन चलन" आदि से जाना जाता है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि वह सब कुछ करता है, फिर भी लिप्त नहीं होता।]

छंद नीसानी।

आपुन बैठे गोपि ह्वै, व्यापक सब कानी[1]।
अद्धं[2] ऊर्द्ध दशहूं दिशा, ज्यौं शून्य समानी ॥१८॥
चेतनि शक्ति जहां तहां, घट घट नाहिं छानी।
हलन चलन जातें भया, सो है सैनानी[3] ॥१९॥
जड चेतन द्वै भेद हैं, ऐसै समुझानी।
जड उपजै बिनसै सदा, चेतन अप्रवानी[4] ॥२०॥
लिपै छिपै नहीं सब करै, जिन मंड मंडानी।
सुंदर अद्‌भुत देखिये, अति गति हैरांनी[5] ॥२२॥

---

१ ओर, तरफ। २ अधः, नीचे। ३ निशानी, पहिचान। ४ अकार यहां ह्रस्व है। अप्रमान्य जिसको वाह्य युक्तियों से प्रमाणित वा सिद्ध नहीं कर सकते। ५ है और प्रगट नहीं, करता है और लिप्त नहीं, और बुद्ध्यादि से अग्राह्य है। इससे आश्चर्य है।

(११) सद्गुरु महिमा नीसानी ग्रंथ।

[२० नीसानी छंदों में सुंदरदास जी ने गुरु की महिमा को वर्णन किया है। सुंदरदास जी का काव्यकल्लोल सबसे अधिक दो स्थानों में देखने में आता है। एक तो गुरु की महिमा और दूसरे ब्रह्म वा ब्रह्मानंद के वर्णन में। यहां प्रत्येक नीसानी छंद उनके चित्त का उद्रेक प्रगट करता है वा सद्गुरु के सच्चरित्र का चित्र सा खैंच देता है।]

* निसानी छंद।

राम नाम उपदेश दे, भ्रम दूर उड़ाया।
ज्ञान भगति वैराग हू, ए तीन दृढ़ाया ॥ ३ ॥
माया मिथ्या सांपिनी, जिनि सब जग खाया।
मुख तैं मंत्र उचारि कैं, उनि मृतक[1] जिवाया ॥ ५ ॥
रवि ज्यौं प्रगट प्रकाश में, जिनि तिमिर मिटाया।
शशि ज्यौं शीतल है सदा, रस अमृत पिवाया ॥ ९ ॥
अति गंभीर समुद्र ज्यौं, तरवर ज्यौं छाया।
[2]बानी बरिषै मेघ ज्यौं, आनंद बढ़ाया ॥१०॥
चंदन ज्यौं पलटै वनी, द्रुम नाम गमाया।
पारस जैसैं परस तैं, कंचन है काया ॥११॥

---

* 'नीसानी' छंद—२३ मात्रा। १३+१० का विश्राम। अंत में गुरु हो। इसको छंदार्णव में 'उड़पट' लिखा है। (छंदरत्नावलि)
१ ज्ञानहीन पुरुष को 'ईशोपनिषद्' में आत्महन कहा है सो मृतक समान ही है। २ वास्तव में 'दादूवाणी' ऐसी ही गुणमयी है।

कामधेन चिंतामनी, तरु कल्प कहाया।
सब की पूरै कामना, जिनि जैसा ध्याया ॥१९॥
सद्गुरु महिमा कहन कौं, मैं बहुत लुभाया।
मुख्य में जिभ्या एकही, तातें पछिताया ॥२०॥

---

(१२) बावनी ग्रंथ।

(पुराने कवियों में अकारादि क्रम से बावनी, ककहरा, कक्का, वा 'बारहखड़ी' नाम देकर एक क्षुद्र काव्य लिखने की प्रणाली थी। सुंदरदास जी के ग्रंथो में भी यह बावनी प्रसिद्ध है। इस में ५२ अक्षर इस प्रकार हैं, 'ॐ, न, मः, सि, द्धं, के पांच और 'अ' से लेकर 'अः' तक (ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, छोड़ कर) १२ और 'क' से लेकर 'ह' तक ३३, और 'क्ष' और 'ज्ञ' (त्र को छोड़ कर) २, इस प्रकार ५२ होते हैं। इस बावनी में ब्रह्म वर्णन और कई अध्यात्म पक्ष की बातें तथा नीति संमिलित वाक्य आ-गए हैं। रचना में चमत्कार यह है कि अर्थ की गहनता के अति-रिक्त छंद में प्रायः ऐसे शब्द लाए गए हैं जिनके आद्यक्षर वे ही हैं जिनसे छंद प्रारंभ होता है। उदाहरणार्थ थोड़े से छंद देते हैं।

चौपई छंद।

अकह अगह अति अमित अपारा।
अकल अमल अज अगम विचारा।

---

१ कल्पतरु=कल्पवृक्ष। २ जिह्वा=जबान। ३ कहने में न आसके—अनिर्वचनीय। ४ ग्रहण, प्राप्त करने योग्य नहीं। ५ माया समान घटने बढ़ने की कला से रहित। निरवयव।

अलष अभेद¹ लषै नाहिं कोई।
अति अगाध अविनाशी सोई ॥१०॥

इत उत जित कित है भरपूरा, इडा पिंगला तैं अति दूरा।
इच्छा रहित इष्ट कौं ध्यावै, इतनी जानै तौ इत पावै ॥१२॥

कक्का करि काया मैं वासा, काया माहिं कँवल प्रकासा।
कंवल मांहि करता कौं जोई, करता मिले कर्म नहिं कोई ॥२२॥

जज्जा जांणत जांणत जांणै,
जतन करै तौ सहज पिछाणै।
जोग जुगति तन मनहिं जरावै,
जरा न व्यापै ज्योति जगावै ॥२९॥

टट्टा टेरि कह्या गुरु ज्ञाना,
टूक टूक है² मरि मैदानां।
टँगय³ न टेक टूट नहिं जाई,
टलै काल औरहिं कौं षाई ॥३२॥

थथ्था थावर जंगम थाना,
थिरक⁴ रह्या सब माहिं समाना।
थिरसु होइ थाकियौ जिनि राहा,
थाहत थाहत मिलै अथाहा ॥३८॥

मम्मा मरि ममता मति आनै,
मोम होइ तब मरम हि जानै।

---

१ भेदरहित—सजातीय विजातीय स्वगत भेदशून्य। २ विषयादि शत्रुओं से ज्ञान के क्षेत्र में। ३ मिटै, खिसके। ४ ठहरा हुआ।

मरद हि मान मैल होइ दूरी,
मन मैं मिलै सजीवनि मूरी[1] ॥४६॥

ररी रती रती समझाया,
रेरे रंक सुमर लै राया।

रमिता राम रह्या भरपूरा,
राषि हृदै पण[2] छाडि न सूरा ॥४९॥

ससा सेत पीत नहि स्यामा,
सकल सिरोमनि जिसका नामा।

संस्कार तें सुमरै कोई,
सोधे मूल सुखी सो होई ॥५१॥

हहा हौंण हार पर राषै,
हरषि हरषि करि हरि रस चाषै।

हाल हाल होइ हेत लगावै,
हँसि हँसि हँसै हंस मिलावै ॥५४॥

करत करत अक्षर[3] का जौरा,
निशा वितीत प्रगट भयौ भोरा।

सुंदरदास गुरू मुषि जाना,
षिरै[4] नहीं तासौ मन माना ॥५७॥

---

१ जड़, बूटी (औषधि)। २ प्रण, व्रत। ३ यहां अक्षर शब्द का श्लेष है—वर्ण (आंक) और अक्षय ब्रह्म। निशा=अज्ञान। ४ क्षर शब्द के साथ इसका जोड़ सुंदर है। ब्रह्म सदा अक्षर है।

दोहा छंद।

क्षर मांह अक्षर लष्या सत् गुरु के जु प्रसाद।
सुंदर ताहि विचार तैं, छूटा सहज विषाद ॥५८॥

---

(१३) गुरुदया षट्पदी ग्रंथ।

[भगवत्पादाचार्य श्रीशंकराचार्य्य जी की षट्पदी जैसे प्रसिद्ध है वैसेही दादूपंथियों और सुंदरदास जी के ग्रंथों के पढ़नेवालों में सुंदरकृत षट्पदी है। दोनों का विषय भिन्न है, सुंदरदास जी ने दादूजी के शिष्य होने से जो लाभ प्राप्त किया उसको वर्णन करते हुए दादूजी के सिद्धांत ज्ञान और उनकी दया और महिमा का वर्णन कर दिया है। सुंदरदास जी ने १२ अष्टक बनाए जो इससे आगे आते हैं। यदि षट्पदी को भी इस संख्या में मिलावें तो १३ होते हैं, क्योंकि यह अष्टकों की चाल से मिलती जुलती सी है। षट्पदी छः त्रिभंगी छंदों में है। छोटी होने से यहां सारी उद्धृत करते हैं। और ३।४ छोड़ कर अष्टकों के केवल एक एक दो दो नमूने ही देते हैं कि जिनसे उनका कुछ कुछ स्वाद जाना जा सके। १२ अष्टकों में से भ्रम विध्वंस में दादूजी के मत की महिमा है। और 'गुरुकृपा' में दादूजी का स्तोत्र ही है, ऐसे ही 'गुरुदेव महिमा' भी स्तोत्र ही है जिससे लोग गुरु को कैसा मानते हैं, यह प्रगट होता है और 'गुरु उपदेश' में दादूजी के उपदेश के महत्व को कहते हुए उनकी स्तुति कही गई है। ये चार अष्टक तो गुरु संबंधी हुए। 'रामजी', 'नाम', और 'ब्रह्मस्तोत्र' परमात्मा के नाम और ध्यान संबंधी हैं। 'आत्मा

---

१ माया—अनित्य पदार्थ।

अचल ' में आत्मा के अचलतादि लक्षण वर्णित हैं । ' पंजाबी ' में पंजाबी बोली में परमज्ञान का उस ढंग से निर्देश है जैसे ' वेदांत के घर' पंजाब में लोग वर्णन किया करते हैं, सूफियों की सी चमक है । 'पीरमुरीद', 'अजब ख्याल' और 'ज्ञानझूलना' ये तीनों प्रायः उर्दू फ़ारसी मिश्रित और 'रिंदाना तर्ज़' पर कहे गए हैं और बड़े ही चटकीले हैं । भाषा में, संस्कृत के ढंग पर, स्तोत्रादि लिख कर भाषा की महिमा को स्वामी जी ने बढ़ा दिया है तथा संस्कृत न जाननेवालों का उपकार किया है ।]

दोहा छंद ।

अलेष[1] निरंजन[2] वंदि कै गुरु दादू के पाइ ।
दोऊ कर तब जोरि करि संतन कौं सिरनाइ ॥ १ ॥
सुंदर तोहि[3] दया करी सतगुरु गहियौ हाथ ।
माता[4] था अति मोहि मैं राता विषया साथ ॥ २ ॥

त्रिभंगी छंद ।

तौ[6] मैं मतमाता विषयाराता बहिया[7] जाता इम वाता ।
तब गोते षाता बूड़त गाता होती घाता पछिताता ॥
उनि सब सुखदाता काढ्यौ नाता आप विधाता गहिलेलौ[9] ।
दादू का चेला चेतनि भेलौ[10] सुंदर मारग बूझेलौ[11] ॥१॥

---

१ लक्ष्य के अयोग्य—जिसको साक्षात् वा लक्ष्य में नहीं लाया जा सकै । २ निर्मल । ३ तुझको, तुझ पर । (यह प्रयोग विशेष ही है) । ४ मत्त—मस्त । ५ रक्त—रत—लीन । ६ यहाँ ' अथ ' शब्द का सा प्रयोजन है—फिर, अब । ७ वात में वा हवा में अर्थात् अन्य मतांतरों की । ८ संसर्ग । ९ पकड़ा । १० मिला हुआ । ११ समझा हुआ ।

तौ सतगुरु आया पंथ बताया ज्ञान गहाया मन भाया ।
सब कृत्रिम माया यौं समुझाया अलष लषाया सचुपाया ॥
हौं फिरता धाया उन्मुनि छाया त्रिभुवनराया दतदेला ।
दादू का चेला चेतनि भेला सुंदर मारग बूझेला ॥२॥
तौ माया वटके कालहि झटके लैकरि पटके मन गटके ।
ये चेटक नटके जानहिं तटके नैंक न अटके वै मटके ॥
जौ डोलत भटके सतगुरु हटके बंधन घटके काटेलो ।
दादू का चेला चेतनि भेला सुंदर मारग बूझेला ॥३॥
तौ पाई जरिया सिरपर धरिया विष ऊषरिया तन तिरिया ।
जौ अब नहिं डरिया चंचल थिरिया गुरु उच्चरिया सो करिया ॥
तब उमग्यौ दरिया अमृत झरिया घट भरिया छूटौ रेलौ ।
दादू का चेला चेतनि भेला सुंदर मारग बूझेला ॥४॥
तौ देख्यौ सीनौं मांझ नगीना मारग झीना पग हीना ।
अब हौ तूं दीना दिन दिन छीना जल विन मीना यौं लीना ॥
जौ सौ परवीना रस में भीना अंतरि कीना मन मेला ।
दादू का चेला चेतनि भेला सुंदर मारग बूझेला ॥५॥

---

१ दादू दयाल । २ कृत्रिम-मिथ्या । ३ उन्मनि मुद्रा से सिद्धि । ४ दत्तात्रेय समान सिद्धि देनेवाला । ५ टूक टूक कर दिया । तोड़ा । ६ झटक दिया-हटा दिया । ७ सबको गटकनेवाले को । ८ चमत्कार । ९ पारंगत लोग । १० निकल गए—नहीं रुके । ११ डपटे-रोके । १२ काटे-तोड़े । १३ धार । १४ छाती-दिल-मन । १५ "तू" का पाठांतर 'तो'। 'तू' रहने से 'दीना' का अर्थ 'दिया' और 'हौं' का अर्थ 'मैं' होगा वा 'मुझे'। मुझे दिया सिद्धफल । अथवा 'तू दीन होगा' यह अर्थ होगा ।

तौ बैठा छाजं अंतरि गाजं रण में राजं नहिं भाजं।
जी कीया काजं जोड़ी साजं तोड़ी लाजं यह पाजं॥
सन सब सिरताजं तबहिं निवाजं आनंद आंजं अकेला।
दादू का चेला चतनि भेला सुंदर मारग बूझेला॥६॥

---

(१४) भ्रमविध्वंस अष्टक।

[८ त्रिभंगी छंदों का यह अष्टक है जिनके आदि में २ दोहे और अंत में २ छप्पय हैं। त्रिभंगी छंद का अंतिम पाद "दादू का चेला भरम पछेला सुंदर न्यारा है षेला" यह है। इस अष्टक में यह बात दिखाई है कि अनेक मतों को देखा और खोजा परंतु किसी से तृप्ति न हुई, सबको सदोष पाया। किसी भी मत से भ्रमरूपी तिमिर दूर न हुआ। सद्गुरु "दादू दयाल" के प्रसाद से आत्मज्ञान प्राप्त होकर प्रकाश उत्पन्न हुआ, मतमतांतर के बाद विवाद से छुटकारा मिला।]

दोहा छंद।

सुंदर देष्या सोधि कै, सब काहू का ज्ञान।
कोई मन मानै नहीं, बिना निरंजन ध्यान॥ १॥
षट दर्शन हम षोजिया योगी जंगम शेष।
संन्यासी अरु सेवड़ा पंडित भक्ता भेष॥ २॥

त्रिभंगी छंद।

तौ भक्तन भावैं दूरि बतावैं तीरथ जावैं फिरि आवैं।
जी कृतम गावैं पूजा लावैं रूठ दिढ़ावैं बहिकावैं॥

---

१ सबसे ऊपर बैठकर छाजना सिराहना। २ आज-अन्न। ३ न्यारा-भिन्न, अद्वय। ४ जती से बड़े-जैन यती वा साधु।

अरु माला नांवैं तिलक बनावैं क्या पावैं गुरु बिन गैला ।
दादू का चेला भरम पछेला सुंदर न्यारा ह्वै खेला ॥ १ ॥
तौ ये मति हेरे सबहिन केरे गहि गहि गेरे बहुतेरे ।
तब सतगुरु टेरे[3] कानन मेरे जाते फेरे आघेरे ।
उन सूर सवेरे उदै किये रे सबै अंधेरे नासेला ।
दादू का चेला भरम पछेला सुंदर न्यारा ह्वै खेला ॥ ८ ॥

---

(१५) गुरु कृपा अष्टक ।

[१ दोहा और १ त्रिभंगी छंद इस तरह आठ युग्मों का अष्टक है और अंत में १ छप्पय है । यह दादू जी की दिव्य महिमा का स्तवन है, उनकी रचित वाणी की भी प्रशंसा आ गई है। जिन्होंने दादू जी का जीवनचरित्र वा उनकी वाणी को पढ़ा, सुना, और समझा है, जिनको ब्रह्मविद्या का कुछ भी चस्का है और जिन्होंने योगियों और संतों की अपार गति का कुछ भी मर्म जाना है वे इन अष्टकों को पढ़ अत्युक्ति नहीं कहेंगे ।]

दोहा छंद ।

दादू-सद्गुरु के चरण, अधिक अरुण[4] अरविंद[5] ।
दुःखहरण तारणतरण, मुक्तकरण सुखकंद ॥ १ ॥

---

१ नाम अथवा क्रियार्थ में धारै । २ भ्रम पीछे रह गया, छूट गया जिसका । ३ बुलावे-शब्द सुनाया । ४ लाल अथवा अरुणोदय के से प्रकाशवाले । ५ कमल-चरणारविंद ।

त्रिभंगी छंद ।

तौ चरण तुम्हारा प्राण हमारा तारण-हारा भव पोतं[1] ।
ज्यौं गहै विचारा लगै न वारा विनश्रम पारा सो होतं ॥
सब मिटै अंधारा होइ उजारा निर्मल सारा[2] सुखराशी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥ ७ ॥

दोहा छंद ।

सद्गुरु सुधा समुद्र हैं, सुधामई हैं नैन ।
नख सिख सुधा स्वरूप पुनि, सुधा सु बरषत बैन ॥८॥

त्रिभंगी छंद ।

तौ जिनि की बानी अमृत बषानी संतनि मानी सुखदानी ।
जिनि सुनि करि प्रानी हृदये आनी बुद्धि थिरानी उनि जानी॥
यह अकथ कहानी प्रगट प्रवानी नाहिन छानी गंगा सी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥ ९ ॥

छप्पय छंद ।

सद्गुरु ब्रह्म स्वरूप रूप धारहिं जग माहीं ।
जिनके शब्द अनूप सुनत संशय सब जाहीं ॥
उर महिं ज्ञान प्रकाश होत कछु लगे न वारा ।
अंधकार मिटि जाइ कोटि सूरज उजियारा ॥

---

१ नाव । चरणों को नाव की उपमा कवियों का काम ही है मिलाओ 'विश्वेशपादांबुजदीर्घनौका' इत्यादि । २ सार=तथ्य वस्तु, महाज्ञान ।

दादू दयाल दहू दिशि प्रगट झगरि झगरि द्वै पंथ थकी।
कहि सुंदर पंथ प्रसिद्ध यह संप्रदाय परब्रह्म की ॥ ९ ॥

---

(१६) गुरु उपदेश अष्टक।

[१ दोहा और १ गीतक छंद ऐसे आठ युग्मों का अष्टक है। छंद का अंतिम चरण "दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोरं प्रणाम हैं" यह है। यह अष्टक भी गुरु महिमा संबंधी ही है परंतु इसमें गुरू के ब्रह्मविद्या के उपदेश को वर्णन करते हुए महिमा कही है।]

दोहा छंद।

सुंदर सद्गुरु यौं कहै याही निश्चय आनि।
ज्यौं कछु सुनिये देषिये सर्व सुप्र करि जानि ॥ ५ ॥

*गीतक छंद।

यह स्वप्न तुल्य दिषाइ दिये, जे स्वर्ग नरक उभै कहांहिं।
सुख दुःख हर्ष विषाद पुनि मानापमान सबै गहांहिं ॥
जिनि जाति कुल अरु वर्ण आश्रम कहे मिथ्या नाम हैं।
दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रणाम हैं ॥ ५ ॥

---

१ हिंदू और मुसलमान। २ दादूजी की संप्रदाय का नाम ब्रह्म-संप्रदाय भी है। इससे माध्वी संप्रदाय को न समझा जावे। ब्रह्म-संप्रदाय कहे जाने के दो कारण हैं—एक तो केवल ब्रह्म की उपासना है, दूसरे दादूजी के गुरु वृद्धानंद का साक्षात् श्री कृष्ण ब्रह्मस्वरूप होना जन्मलीला में लिखा है।

* यह 'हरिगीतिका' छंद है २८ मात्राओं का, १६+१२ पर विश्राम।

(१७) गुरुदेव महिमा स्तोत्र अष्टक ।

[आठ भुजंगप्रयातों का यह अष्टक है, आदि अंत में दो दो दोहे भी हैं । केवल गुरु (दादूजी) की महिमा का स्तवन है ।]

दोहा ।

परमेश्वर अरु परम गुरु दोऊ एक समान ।
सुंदर कहत विशेष यह गुरु तें पावै ज्ञान ॥ १ ॥

छंद भुजंगप्रयात ।

प्रकाशं स्वरूपं हृदै ब्रह्मज्ञानं । सदाचार येही निराकार ध्यानं ।
निरीहं निजानंद जाने जुगादू । नमो देव दादू नमो देव दादू ॥१॥
क्षमावंत भारी दयावंत ऐसे । प्रमाणीक आगे भये संत जैसे ॥
गह्यौ सत्य सोई लह्यौ पंथ आदू । नमो देव दादू नमो देव दादू ॥६॥

दोहा ।

परमेश्वर महिं गुरु बसै परमेश्वर गुरु माहिं ।
सुंदर दोऊ परसपर भिन्न भाव सो नाहिं ॥ २ ॥
परमेश्वर व्यापक सकल घट धारें गुरु देव ।
घट कौं घट उपदेश दे सुंदर पावै भेव ॥ ३ ॥

---

(१८) रामजी अष्टक ।

† मोहनी छंद ।

आदि तुमही हुते अवर नाहिं कोइ जी ।
अकह अति अगह अति वर्णनहिं होइ जी ॥

---

† यह मोहनी छंद नहीं है किंतु २० मात्रा का विपिनितिलक छंद है जिसमें १०+१० मात्रा पर विश्राम है । अंत में रगण है ।

रूप नहिं रेप नहिं स्वेत नाहिं स्याम जी ।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ १ ॥
प्रथम ही आपुतैं मूळ माया करी ।
बहुरि वह कुर्व्विकारि * त्रिगुन ह्वै विस्तरी ॥
पंच हू तत्व तें रूप अरु नामजी ।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ २ ॥
विधि रजोगुण लियें जगत उतपति करै ।
विष्णु सतगुण लियें पाळना उर धरै ॥
रुद्र तमगुण लियें संहरै धामजी ।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ३ ॥
इंद्र आज्ञा लियें करत नहिं और जी ।
मेघ वर्षा करैं सर्व्व ही ठौर जी ॥
सूर शशि फिरत है आठहूं याम जी ।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ४ ॥
देव अरु दानवा यक्ष ऋषि सर्व्व जी ।
साधु अरु सिद्ध मुनि होंहि निहगर्व्व जी ॥
शेष हूं सहस्र मुख भजत निःकामजी ।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ५ ॥
जळचरा थळचरा नभचरा जंतजी ।
चारिहू पानि के जीव अगिनंत जी ॥

---

* पाठांतर 'कुरुविकारि'। 'त्रिविधिकारि' अर्थात् क्रिया और विकारांतर के अर्थ ।

सर्व उपजैं षपैं पुरुष अरु वाम जी ।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ६ ॥
भ्रमत संसार कतहू नहीं वोर[1] जी ।
तीनहूं लोक में काल को सोर[2] जी ॥
मनुष तन यह वडे भाग तें पामै[3] जी ।
तुम सदा एक रस राम जी राम जी ॥ ७ ॥
पूरि दशहूं दिशा सर्व्व में आप जी ।
स्तुतिहि को करि सकै पुन्य नहिं पापँ[4] जी ॥
दास सुंदर कहै देहु विश्राम जी ।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ८ ॥

---

(१९) नामाष्टक ।

* मोहनी छंद ।

आदि तूं अंत तूं मध्य तूं व्योमवत् ।
वायु तूं तेज तूं नीर तूं भूमि तत् ॥
पंचहू तत्व तूं देह तैं ही करे ।
हे हरे हे हरे हे हरे हे हरे ॥ १ ॥
च्यारिहू षानि के जीव तैं ही सृजे ।
जोनि ही जोनि के द्वार आये वृजे[5] ॥

---

१ ओर छोर। २ शोर-जोर शोर। ३ मिलता है। ४ आप का वह स्थान है जहां पुन्य और पापरूपी कर्म रहते ही नहीं। अथवा सब पुन्योमय हो पाप का लेश नहीं रहता॥ * यह 'स्रग्विणी' है, ४ रगणका 'मोहनी' नहीं है। ५ गये-शरीर त्याग कर।

ते सबै दुःख मैं जे तुम्हैं बीसरे ।
ईश्वरे ईश्वरे ईश्वरे ईश्वरे[1] ॥ २ ॥
जे कछू ऊपजे व्याधिहू आधवे[2] ।
दूरि तूही करै सर्व जे वाधवे[3] ॥
वैद तूं औषधी सिद्ध तूं साधवे[4] ।
माधवे माधवे माधवे माधवे ॥ ३ ॥
ब्रह्म तूं विष्णु तूं रुद्र तूं वेष[5] जी ।
इंद्र तूं चंद्र तूं सूर तूं शेष जी ॥
धर्म तूं कर्म तूं काल तूं देशवे ।
केशवे केशवे केशवे केशवे ॥ ४ ॥
देव मैं दैत्य मैं ऋष्य मैं यक्ष मैं ।
योग मैं यज्ञ मैं ध्यान मैं लक्ष मैं ॥
तीनहूं लोक मैं एक तूं ही भजे[6] ।
हे अजे हे अजे हे अजे हे अजे[7] ॥ ५ ॥
राव मैं रंक मैं साह मैं चौर मैं ।
कीर मैं काग मैं हंस मैं मौर मैं ॥
सिंह मैं स्याल मैं मच्छ मैं कच्छये ।
अक्षये अक्षये अक्षये अक्षये ॥ ६ ॥
बुद्धि मैं चित्त मैं पिंड मैं प्राण मैं ।
श्रोत्र मैं बैन मैं नैन मैं घ्राण मैं ॥

---

१ (भाषा में) अनुप्रास के मिलाने को ऐसा संशोधन दिया गया है। २ आधि—दुःख। ३ बाधा—विकार। ४ साधक। ५ रूप। अथवा प्रधान मुख्य। ६ उपासनीय। ७ अजन्मा।

हाथ मैं पाव मैं सीस मैं सोहने ।
मोहने मोहने मोहने मोहने ॥ ७ ॥
जन्म तैं मृत्यु तैं पुन्य तैं पाप तैं ।
हर्ष तैं शोक तैं शीत तैं ताप तैं ॥
राग तैं दोष तैं द्वंद तैं है परे ।
सुंदरे सुंदरे सुंदरे सुंदरे ॥ ८ ॥

---

(२०) आत्मा अचल अष्टक ।

[८ कुंडलिया छंदों में आत्मा की अचलता को और जन साधारण में जो विपरीत ज्ञान हो रहा है उसको लौकिक दृष्टांतों से स्पष्ट कर दिखाया है, यथा आकाश मे बादल दौड़ते हैं परंतु चंद्रमा दौड़ता दिखाई देता है इसलिये चंद्रमा को दौड़ता हुआ कहते हैं । दीपक में तेल और बत्ती जलते हैं परंतु दीपक ही को जलता कहते हैं । इसी तरह अन्य स्थल जानना ।]

कुंडलिया छंद ।

पानी चलॅस सदा चलै चलै लाव अरु बैल ।
पानी चलतो देखिये कूप चलै नहिं गैल ॥
कूप चलै नहिं गैल कहै सब कुवौ चालै ।
ज्यूं फिरतौ नर कहै फिरै आकाश पतालै ॥
सुंदर आतम अचल देह चालै नहिं छानी ।
कूप ठौर को ठौर चलत है चलसरु पानी ॥

❀ ❀ ❀ ❀

---

१ चरस ।

तेल जरै बाती जरै दीपक जरै न कोइ ।
दीपक जरता सब कहै भारी अचरज होइ ॥
भारी अचरज होइ जरै लकरी अरु घासा ।
अग्नि जरत सब कहैं होय यह बड़ा तमासा ॥
सुंदर आतम अजर जरै यह देह विजाती ।
दीपक जरै न कोइ जरत हैं तेलरु बाती ॥ ३ ॥
बादल दौरे जात हैं दौरत दीसै चंद ।
देह संग तैं आतमा चलत कहै मति मंद ॥
चलत कहै मति मंद आतम अचल सदाही ।
हलै चलै यह देह थोपिलै आतम मांही ॥
सुंदर चंचल बुद्धि समझि तातें नहिं बौरे ।
दौरत दीसै चंद जात हैं बादल दौरे ॥ ४ ॥
गंगा बहती कहत हैं गंगा वाही ठौर ।
पानी बहि बहि जात हैं कहैं और की और ॥
कहैं और की और परत हैं देखत घाईं ।
गड़ी ऊखली कहैं कहैं चलती कौं गाड़ी ॥
सुंदर आतम अचल देह हल चल है गंगा ।
पानी बहि बहि जाइ बहै कबहूं नहिं गंगा ॥ ५ ॥
कोल्हू चालत सब कहैं समझ नहीं घट माहिं ।
पाटि लाठि मकड़ी चलै बैल चलै पुनि जाहिं ।
बैल चलै पुनि जाहिं चलत है हांकन हारौ ॥

---

१ आरोपित कर देते हैं । २ भिन्न—अन्य । ३ लाठ पर जो कबजे की सी लकड़ी दाब कर फिरती है ।

पेली घालत चलै चलत सब ठाठ विचारौ ।
सुंदर आतम अचल देह चंचल है मोल्हू ॥
समझि नहीं घट माहिं कहत हैं चालत कोल्हू ॥ ६ ॥

❀ ❀ ❀ ❀

---

(२१) पंजाबी भाषा अष्टक ।

[यह पंजाबी बोली में ८ चौपइया छंदों का अष्टक है। सुंदरदासजी पंजाब में बहुत रहे हैं। इनकी बनावट से स्पष्ट होता है कि पंजाबी का इनको कैसा अच्छा अभ्यास था। पंजाब वेदांत का घर है वहां चरखा कातनेवाली लुगाइयां भी " अहंब्रह्मास्मि " का गीत गाया करती हैं। फिर वहां की वाणी की नस नस में वेदांत रस बसा रहे इसमें अचरज ही क्या ?। पंजाबी भाषा बड़ी सुप्यार है इसमें ओज और वीर रस स्वाभाविक है, पंजाबी भाषा के पदों का लालित्य भी अकथनीय है, पंजाबी गवैये भी बढ़िया होते हैं। सुंदरदासजी ने भी कई पद पंजाबी में बनाए हैं। इस अष्टक में परमात्मा की खोज, उसके खोजनेवालों और खोज के फल (अर्थात् जिसको खोजते थे वह अपने आप में मिला) इत्यादि बातों का बखान है।]

चौपईया छंद ।

सहु दिलदा[2] मालिक दिलदी जाणौं दिल मों[3] बैठा देषै ।
हूंणं[4] तिसनो[5] कोई क्यों करि पावै जिसदे[6] रूप न रेषै ॥

---

१ मूर्ख। (मोलिया का रूपांतर है)। २ का। ३ में। ४ और। ५ को। ६ के।

वै गोसं[1] कुतव[2] पैकंवर मक्के पीर अवलिया सेषै[3] ।
भी सुंदर कहि न सकै कोई तिसनों जिसदी सिफति अलेषै ॥ १ ॥
वहु षोजनहारा तिसनौं पूछै जे वाहरि नों दौड़े ।
वै कोई जाइ गुफा मौं वैठे कोई भीजत चौड़े ॥
भी दिट्ठे सोर्क हजारनि दिट्ठे दिट्ठे लष्पु करोड़े ।
कहि सुंदर षोजु वतावै प्रभुदा वै कोई जगमौं थौड़े ॥ २ ॥
भी वसदा षोजु करैं वहुतेरे षोजु तिणांदे वोलै ।
वह भुल्ले नौं भुल्ला समुझावै सो भी भुल्ला डोलै ॥
वह जित्थैं कित्थैं फिरै विचारा फिरि फिरि छिल्कु छोलै ।
कहि सुंदर अपना वंधनु कप्पै सोई वंधनु षोलै ॥ ३ ॥
भी षोजे जती तपी सन्यासी सभ्भैं दिट्ठे रोगी ।
वह वसदा षोजु न पाया किन्ही दिट्ठे ऋषि मुनि योगी ॥
वै वहुते फिरैं उदासी जगमौं वहुते फिरैं विवोंगी ।
कहि सुंदर कोई विरले दिट्ठे अमृत रस दे भोगी ॥ ४ ॥
पहु षोजी विना षोजु नहिं निकले षोजु न हथ्थौं आवै ।
पंषीदा षोजु मीनदा मारगु तिसनों क्यौं करि पावै ॥

---

१ कुतुब का नायब। दाहिना या बांया एक दूसरा वली (सिद्ध)। २ वह वली (सिद्ध) जो किसी देश वा स्थान विशेष का नियामक वा नियंता समझा जाता है। ३ शेख-मुसल्मानी आचार्य वा महंत। ४ भाई। ५ और-फिर। ५ सिफत=गुण। ६ वह—और, फिर। ७ देखे। ८ सैकड़ों। ९ इनके। १० इधर उधर—यहां वहां। ११ छिलका। वृथा काम। १२ काटे। १३ सब ही। १४ वैरागी-योगी। १५ हाथ में (आवै)।

है अति वारीकु षोजु नाहिं दरसै नदरि किथौं ठहरावै ।
कहि सुंदर बहुत होइ जब नन्हां नन्हेनौं दरसावै ॥ ५ ॥
मी षोजत षोजत सभु जगु इंड्यौं षोज किथौं नहिं पाया ।
तूं जिसनौं षोजै षौज तुसीमौं सतगुरु षोज बताया ॥
तैं अपुना आपु सही जब कीतां षोज इथां ही आया ।
जब सुंदर जाग पयौं सुपनैं थौं सभु संदेह गमाया ॥ ६ ॥
भी जिसदा आदि अंतु नाहिं आवै मध्यहु तिसदा नाहीं ।
वहु बाहिर भीतरु सर्व निरंतरु अगम अगोचर माहीं ॥
वह जागि न सोवै पाइ न भुष्या जिसदे धुप्पु न छांहीं ।
कहि सुंदर आपे आपु अखंडत शब्द न पहुंचै तांहीं ॥ ७ ॥
वै ब्रह्मा विष्णु महेस प्रलैमौं जिसदी पुसै न रूंहीं ।
भी तिसदा कोई पारु न पावै शेषु सहसफणु मूंहीं ॥
भी यहु नाहिं यहु नहिं यहु नाहिं होवै इसदे परे सुतूंहीं ।
वह जो अवशेष रहै सो सुंदर सो तूंहीं सो हूंहीं ॥ ८ ॥

---

(२२) ब्रह्मस्तोत्र अष्टक ।

[आठ भुजंगप्रयात संस्कृत भाषामय छंदों में परमात्मा का विधिनिषेदार्थवाची शब्दों में स्तवन है । संस्कृत में ऐसे स्तोत्रों की कुछ कमी नहीं, इससे यहाँ बानगी ही अलम् होगी ।]

---

१ नजर, दृष्टि । २ किधर को । ३ बारीक–क्षीणों को । ४ खोजा । ५ किया । ६ यहाँ । ७ पड़ा । ८ से । ९ रोवां, बाल, पशम । १० मुखवाला ।

छंद भुजंगप्रयात ।

अखंडं चिदानंद देवाधिदेवं । फणींद्रादि रुद्रादि इंद्रादि सेव्यं ।
मुनींद्रा कवींद्रादि चंद्रादि मित्रं । नमस्ते नमस्ते नमस्ते पवित्रं ॥१॥
न छाया न माया न देशो न कालो । न जाग्रन्नस्वप्नं न वृद्धो न बालो ।
न ह्रस्वं न दीर्घं न रम्यं अरम्यं । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अगम्यं ॥५॥*

---

(२३) पीरमुरीद अष्टक ।

[आठ चामर छंद और एक दोहा छंद का यह अष्टक है । इसमें सूफ़ियों (मुसल्मान वेदांतियों) के ढंग का पीर (मुर्शिद) और मुरीद का स्वल्प परंतु अत्यंत सारपूरित संवाद उर्दूमय भाषा में है । एक तालिब (जिज्ञासु) ने ढूँढते ढूँढ़ते योग्य गुरु पाया, तो गुरु से अपनी अभीष्ट जिज्ञासा की । पीर ने 'मिहर' कर कहा कि खूब बंदगी करता रहैगा तो इस सीधी राह से महबूब (इष्ट देव) को 'पावैगा' । यह हुई ' शरीयत ' । फिर पूछा कि कैसे बंदगी करूं । तो मुर्शिद ने बताया ।]

चामर छंद † ।

तब कहै पीर मुरीद सौं तूं हिर्सरा वुगुजार ।

---

१ सर्व देवों में बड़ा । २ शेष नाग । ३ सेवै वा सेव्य । ४ जिसमें बुद्धि आदि रम सकैं ऐसा भी नहीं और उसके प्रतिकूल भी नहीं ।

* संस्कृतमय ही कृति है, नितांत संस्कृत बनावट करना स्वामीजी को कभी अभिप्रेत नहीं था । इसीसे आधी तीतर आधी बटेर सी बनावट दी गई है कि जिससे दोनों का स्वाद मिले ।

† यह काम रूप छंद २६ मात्रा का, ९+७+१० पर यति ।

५ हिर्स = इच्छा । रा = को । वुगुज़ार = छोड़ दे ।

यह वदंगी तब होयगी इस नफसकौं गहि मार ॥
भी दुई दिल तैं दूर करिये और कछु नहिं चाह ।
यह राह तेरा तुझी भीतर चल्या तूं ही जाह ॥ ३ ॥

[यह हुई 'तरीक़त'। फिर मुरीद ने सवाल किया कि इस 'वारीक राह' को बिना देखे कैसे 'बंदा' चल सकता है, आप बत दीजे। तब पीर ने रास्ता पहचनवाने का 'अमल' बताया। अर्थात् उसी ('इस्मेआज़म') राम नाम की विधि बताई, जिससे उसको पहिचान लेगा और उस ठौर पहुंच जायगा। 'जहां अर्स ऊपर आप बैठा दूसरा नहिं और'। यह हुई 'मारिफ़त'॥ अब मुरीद आगे बढ चुका था। 'ठौर' और 'बैठा' ये शब्द सुन बोला कि जो अजन्मा है, जिसके मा बाप नहीं, वह कैसा है सो यथार्थ बताओ और जब वह 'बेज़्जूरे' है तो उसके 'ठौर' होना और उसका बैठना उठना कैसे बन सकते हैं, वह 'बेचून' (अद्वितीय-असम) है और 'बेनमूले' भी है। तब पीर ने यह कह कर मौन धारण किया "को कहैगा न कह्या न किन हूं अब कहै कहि कौन"। और मुरीद की ओर देख कर (अर्थात् मर्म की सैन करके) आँखें 'मूंद' लीं। यह हुई 'हक़ीक़त। इन चारों योग विधियों द्वारा जो स्थान (मंज़िल वा मुक़ाम) प्राप्त होते हैं वा प्रतिपादित होते हैं उनको सूफी लोग (१) 'मलकूत', (२)

---

१ नफस=अहंकार। 'नफसकुशी' अहंकार का मारना 'तरीक़त' का गुर (उसूल) है। २ अर्श=आकाश, स्वर्ग। ३ अशरीर, अस्थूल। ४ विस्मित, अचरज भरा। शून्य ध्यान के अनंतर यह एक अवस्था होती है जब स्वात्म ज्ञान की प्राप्ति होने लगती है। 'आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन'। (गीता)॥

'जबरूत', (३) 'लाहूत' और (४) हाहूत कहते हैं जैसे चार प्रकार की मुक्तियां संस्कृत ग्रंथों में वर्णित हैं ।]

हैरान¹ है हैरान हैं हैरान निकट न दूर ।
भी सपुनै क्यौं करि कहै तिसकौं सकल है भरपूर ॥
संवाद² पीर मुरीद का यह भेद पावै कोइ ।
जो कहै सुंदर सुनै सुंदर वही सुंदर³ होई ॥ ८ ॥

---

(२४) अजब ख्याल अष्टक ।

[इस अष्टक में भी सूफियों के ढंग की बातें हैं, इसको ऐसा उर्दू फारसी-मय शब्दों और वाक्यों से बनाया है कि मुसलमानों को भी इसमें मनोरंजन हो सकता है । कुछ दुर्वेशी का हाल, दुर्वेश उस मंजिल तक कैसे पहुंच सकते हैं, "इश्के हक़ीक़ी" और उससे "हक्के ताला" का मिलना, उससे गाफिल और हाज़िर कौन है, ईश्वर की महिमा और गुणानुवाद का वर्णन है । इसमें १० दोहे और ८ गीतक छंदों के युग्म हैं । कुछ नमूने देते हैं ।

दोहा छंद ।

सुंदर जो गाफिल⁴ हुआ, तौ वह सांई दूर ।
जो बंदा हाजर हुआ, तौ हाजरां हजूर ॥ ७ ॥

---

१ विस्मय और आश्चर्य में है । २ बात, वर्णन । ३ उत्तम, सिद्ध । सुंदर सा सिद्धि को पहुँचनेवाला । ४ विस्मृत-भूला हुआ । ईश्वर सिद्धि और इष्ट प्राप्ति में निरंतर स्मरण और भजन ही प्रधान साधन है, इसमें भक्ति, ज्ञान, विवेक, विचार आदि योग इसही लिये महात्माओं ने अपने अनुभव से कहे हैं ।

गीतक छंद।

हाजर हजूर कहैं गुसंईयां गाफिलों कौं दूरि है।
निरसंध[1] इकलैस[2] आप वोही तालिवां[3] भरपूरि[4] है॥
वारीक सौं वारीक कहिये वड़ौं वड़ा विसाल है।
यौं कहत सुंदर कंज दुंदर अजव ऐसा ख्याल है॥ ६॥

दोहा छंद।

सुंदर सांई हक्क है, जहां तहां भरपूर।
एक उसीके नूर[6] सों, दीसैं सारे नूर॥ ८॥

गीतक छंद।

उस नूर तैं सव नूर दीसै तेज तैं सव तेज है।
उस जोति सौं सव जोति चमकै हेज[7] सों सव हेज है॥
आफताव[8] अरु महताव[9] तारे हुकम उसके चाल है।
यौं कहत सुंदर कंज दुंदर अजव ऐसा ख्याल है॥ ७॥

दोहा छंद।

ख्याल अजव उस एक का, सुंदर कह्या न जाइ।
सगुन तहां पहुंचै नहीं, थक्या उरैं ही आइ॥ १०॥

---

१ निर=नहीं, संध=मिला हुआ। जिसमें अन्य किसी का मिलाव नहीं। अद्वय। २ अफअल के वजन पर अखलस=अत्यंत शुद्ध, पवित्र। ३ ढूँढनेवालों को—जिज्ञासुओं, भक्तों को। ४ प्रत्यक्ष है—भक्तों के तो पास ही है। ५ जिसकी द्वंद्वता मिट गई है, अथवा जिस परमात्मा में द्वंद्व का प्रवेश नहीं हो सकता। ६ प्रकाश-ज्योति स्वरूप। ७ यहां अस्ति का अर्थ इससे किया जा सकता है। ८ सूर्य। ९ चांद।

(२५) ज्ञानझूलना अष्टक ।

[इस अष्टक में भी वही सूफ़ियों के ढंग का सा मिला जुला रंग आया है । "तसव्वुफ़" के अनुसार इस अष्टक में "मारेफ़त" या "हक़ीक़त" की झलक—दरसाई गई है । तालिब (जिज्ञासु) जिस पद्धति से आत्मानुभव की प्राप्ति की तरफ बढ़ता है, अथवा गुरु शिष्य को जिस प्रकार ब्रह्मज्ञान की सूक्ष्म बातें बताता है, वैसी ही कुछ भेद-भरी बातें संक्षेप में महात्मा सुंदरदास जी ने भी कही हैं, जैसा कि उदाहरणरूप छंदों से प्रगट होगा ।]

झूलना[1] छंद ।

उस्ताद के कदम सिर पै धरौं, अब झूलना पूब बषानता हूं ।
अरवाह[2] में आप विराजता है वह जान[3] का जान है जानता हूं ।
उसही के डुलाये डोलता हूं दिल पोलता बोलता मानता हूं ।
उसही के दिपाये मैं देखता हूं सुन सुंदर यों पहिचानता हूं ॥१॥
कोई योग कहै कोई जाँग[4] कहै कोई त्याग वैराग बतावता है ।
कोई नांव रटै कोई ध्यान ठँठै[5] कोई पोजत ही थकि जावता है ॥
कोई और ही और उपाय करै कोइ ज्ञान गिरा[6] करि गावता है ।
वह सुंदर सुंदर सुंदरँ[7] है कोई सुंदर होइ सो पावता है ॥४॥

---

१ झूलना छंद २४ वर्ण का, जिसमें ७ सगण और ह यगण होते हैं। (छंद रत्नावली हरिराम कृत) यहां इस नियम के अनुसार नहीं है, केवल २४ अक्षर और अंत यगण है । २ आत्माएं । 'मलकूत को मकामे अरवाह' सूफी मजहब में कहा है । ३ जीव, आत्मा । ४ यज्ञ । यज्ञोवै विष्णु' यह श्रुति है । ५ ठहरें. ठाठ रखे । ६ वाणी । ७ है सुंदर वह सुंदरों से भी अति सुंदर है । चौथे सुंदर का अर्थ पवित्र, मलरहित है ।

नहीं गोस[1] है रे नहीं नैन है रे नहीं मुख है रे नहीं बैन है रे ।
नहिं ऐन[2] है रे नहिं गैन[3] है रे नहिं सैन[4] है रे न असैन[4] है रे ॥
नहिं पेट है रे नहिं पीठ है रे नहिं कड़वा है नहिं मीठ है रे ।
नहिं दुश्मन है नहिं ईठ[5] है रे नहिं सुंदर दीठ[6] अदीठ है रे ॥७॥

---

(२६) सहजानंद ग्रंथ ।

[यह सहजानंद ग्रंथ २४ चौपाई दोहों में वर्णित है। इसमें यह बात दिखलाई है कि हिंदू और मुसलमान आदि के धर्म की प्रक्रियाओं में कई विधि विधान आडंबर दिए हैं। परंतु विना अनेक कर्मों के अनुष्ठान के ही तथा विना ही विधि विधान और आडंबर के भी ज्ञान वा आनंद की सहज में प्राप्ति हो सकती है। उसका एक उपाय यह है कि परमात्मा का निरंतर ध्यान और इसका नाम निरंतर रटना। इस साधन से

---

१ गोस (फारसी) कान, कर्णेंद्रिय। २—३ यह ऐन गैन का मसला सूफी मत में एक सम्झौती है। ऐन कहने से निर्गुण तत्त्वरूपता और गैन (नुकता लगाने से) सगुणरूपता का बोध होता है। यह मसला क़ुरान में भी आया है। "सिफातुल्लाहेऐनो व ऐनेज़ातिन्"। और कहा है "जब कि रमज़-ए-नुक्त-ए-हस्ती को दिया दिल में उठा। ऐन में गैन में क्या फेर है अल्लाः अल्लाः।" ४ सम्झौती, इशारा। अनिवर्चनीय होने से केवल अनुभव प्राप्त महात्माओं के इशारों से निर्मल चित्त जिज्ञासु भेद को समझ सकता है। इससे 'सैन' रूप है ऐसा कहा है। असैन-सैन रहित। पूर्व से विपरीत। अर्थात् उसको यथार्थ जानने में सैन भी काम नहीं देती। ५ इष्ट, मित्र, इष्टदेव। ६ दृष्ट, प्रत्यक्ष अदीठ इसका विपरीत।

पूर्वकाल में तथा इस काल में ब्रह्मादिक इंद्रादिक देवता और ऋषि और नारदादिक मुनि और कबीरदास रैदास और दादूदास आदिक तरण तारण हो गए हैं। कुछ उदाहरण भी देते हैं। वेदांत का सिद्धांत है कि सत्य ज्ञान की प्राप्ति जब होती है तो मूल सहित पूर्वसंचित कर्मों का नाश और आगे होनेवाले कर्मों का निरोध आप ही हो जाता है। सहजानंद के कहने में यही तात्पर्य है।]

चौपई छंद।

चिन्ह बिना सब कोई आये, इहां भये दोइ पंथ चलाये।
हिंदू तुरक उठ्यौ यह भर्मा, हम दोऊँ का छाड्या धर्मा ॥ २ ॥
नां मैं कृत्तम कर्म बषानौं, ना रसूल का कलमा जानौं।
ना मैं तीन ताग गलि नाऊं, ना मैं सुन्नत करि बौराऊं ॥ ३ ॥
सहजै ब्रह्म अगिन परँ जारी, सहजि समाधि उनमनी तारी।
सहजै सहज रामँ धुनि होई, सहजे मांहि समावे सोई ॥ ४ ॥

दोहा छंद।

जोई आरंभ कीजिये, सोई संसय काल।
सुंदर सहज सुभाव गहि मेट्यौ सब जंजाल ॥

---

१ पैगम्बर (यहां मोहम्मद)। २ दीन इसलाम का मुख्य मंत्र 'लाइलाहे' इत्यादि। ३ पहनूं। ४ मुसलमान होने का एक प्रधान संस्कार। ५ पागला बनूं। ६ ब्रह्मरूपी अग्नि। ७ जलाई, भस्म की। ८ उन्मनिमुद्रा। ९ ताली लगाई उन्मनि से तिर गया। १० स्मरण सिद्धि से समाधि में अनाहत नाद होने लगा। ११ इस प्रकार ज्ञान ध्यान करनेवाला।

चौपाई छंद ।

सहज निरंजन सब मैं सोई, सहजै संत मिले सब कोई ।
सहजै शंकर लागै सेवा, सहजै सनकादिक शुकदेवा ॥१९॥
सोजा[1] पीपा[2] सहजि समाना, सेन[3] धना[4] सहजै रस पाना ।
जन रैदास[5] सहज कौं वंदा, गुरु दादू सहजै आनंदा ॥२३॥

---

(२७) गृह वैराग बोध ग्रंथ ।

[इस २१ छंदों के ग्रंथ में गृहस्थी और वैरागी का संवाद है । गृहस्थी गृहस्थपने को मुख्य मानता है और वैरागी के दोष बताता है, और वैरागी गृहस्थी में सांसारिकता के अवगुण आरोपण करके गर्हित बताता है । अंततोगत्वा यह निर्णय हुआ कि विरक्त का धर्म गृहस्थ से बना रहता है और गृहस्थ का निस्तारा वैरागी से होता है, जैसा कि नीचे के छंदों में दिखाया है । दोनों के संवाद का सार यह है (१) गृहस्थी ने वैरागी से कहा कि या तो तुमसे परमेश्वर रूठ गया है या तुमको किसी ने बहका दिया है कि तुम विरक्त हुए,

---

१ सोजाजी भक्त-भगवान के भक्त थे । २ पीपाजी भक्त रामानंद जी के शिष्य थे। गांगरोन का राज्य छोड कर भक्ति ज्ञान में तत्पर हो कर भगवत्कृपा के भागी हुए । ३ सेनजी भक्त रामानंद जी के तीसरे शिष्य थे । बांधोगढ के राजा के नाई थे । भगवान् ने एक बार इनकी एवज का काम किया था । ४ धनाजी भक्त रामानंद जी के शिष्य थे । इनका खेत भगवान ने निपजाया था । ५ रैदास जी भक्त, पूर्व जन्म में और इस जन्म में भी श्रीरामानंद जी के शिष्य थे ।

तुमने बुरा किया कि बिना विचारे ही घर छोड़ आए क्योंकि जनक वसिष्ठ आदि महात्माओं ने तो घर ही में सब कुछ पाया है, घर में स्त्री पुत्रादिक का जो सुख है उसको छोड़कर जो मुक्ति चाहता है वह ज्ञानी नहीं है क्योंकि उनको देखने से सब दुःख भाग जाते हैं, वह आनंद कोटि मुक्तियों में भी नहीं प्राप्त होता। तुमने पुत्रकलत्र को छोड़ा सही पर तुम से माया नहीं छूटी, फिर तुम क्या वैरागी हो ? तुम्हारी वासना मिटती ही नहीं, हम गृहस्थियों से आशा किया करते हो। चील की नाईं आकाश में उड़ गए तो क्या हुआ देखते तो हो भोजनाच्छादन रूपी धरती ही की तरफ। याद रक्खो गृहस्थी का आश्रम बड़ा है जहां जती संत चले आते हैं, और वैरागियों के मन का डांवाडोलपना तब ही मिटता है जब भोजन पेट में पड़ता है। (२) इसके उत्तर में वैरागी ने कहा कि मुझको वैराग्य धारण से ज्ञान का प्रकाश मिला है, संसार को उदासीन देख कर वैरागी हुआ हूं, प्रायः विरक्त लोगों ने संसार ही छोड़ा है जैसे ऋषभदेव, जड़भरत आदि। घर दुःखों का भांडार है, जो इस अंध-कूप में पड़ा रहे वह मुक्ति को क्या जाने। सच है नरक का कीड़ा नरक ही को पसंद करता है, चंदन को वह नहीं चाहता। इस शरीर को जिसमें हाड़, मांस, मेद और मज्जा भरे हैं और नव द्वार से निरंतर मल निकला करता है, वैरागी घोर नरक समझता है। माया वही है जिससे आदमी बँधा रहे, वैरागी के कोई वांछा नहीं रहती, उसकी वांछाएं अनायास ही पूरी हो जाती हैं, उसका शरीर इस संसार में जल में कमल के समान निर्लिप्त है। भोजनादि का चाहना शरीर का धर्म है इसके लिये गृहस्थी के यहां जाना कोई दोष नहीं। वैरागी गृहस्थी के घर आ कर जब भोजन पाता है तो गृहस्थी के पंच दोष (चूल्हा,

चाकी, भुवारी आदि जन्य छूट जाते हैं।]

रुचिरा छंद * ।

विरकत धर्म रहै जु गृही तें गृहि कौं विरकंत तारैं जू ।
ज्यों वन करै सिंह की रक्षा सिंहसु वनहिं उबारै जू ॥ २९ ॥
विरकत सुतौ भजै भगवंतहिं गृही सुता की सेवा जू ।
हय के कांन बरावर दोऊ जती सती को भेवा जू ॥ ३० ॥

---

(२८) हरिबोल चितावनी ग्रंथ ।

[सुंदरदास जी ने 'हरिबोल चितावनी' 'तर्क चितावनी' और 'विवेक चितावनी' ऐसे तीन छोटे ग्रंथ लिखे हैं और सवैया (सुंदर विलास) में भी 'उपदेश चितावनी' और 'काल चितावनी' ये दो अंग आए हैं। 'चितावनी' शब्द से अभिप्राय सावधान वा चैतन्य करने का है। जिस उपदेश से मनुष्य की भूल, असावधानी, भ्रम वा विपरीत ज्ञान दूर किया जाय उसके लिये 'चितावनी' ऐसा नाम दिया जाता है। इन ग्रंथों में छंदों का चतुर्थ पाद

---

* रुचिरा द्वितीय प्रकार में विषम चरण १६ के और सम १४ मात्रा के होते हैं (छंद प्रभाकर) ।

१ गृहस्थ के होने से विरक्त की भिक्षा आदि सेवा रक्षा होती है। और विरक्त धर्म के मर्म को गृहस्थियों को उपदेश करके उनको सन्मार्ग पर ला कर भव-सागर से पार उतार देते हैं। २ सिंह के भय से वन को कोई काट नहीं सकता। ३ सेवा करै। ४ घोड़े के दोनों कान बराबर होनाही शोभा है। ५ भेद। जोड़ा।

सबही विरक्त हो जाते तो शीघ्र प्रलय हो जाता।

प्रायः ऐसा है जो चितावनी करने में मुख्य प्रयोजन रखता है और वह प्रत्येक छंद में बार बार आता है। यथा, इस प्रथम 'चितावनी' में "हरि बोलौ हरि बोल" यह चरण तीसौं दोहों में बराबर आया है। इस चितावनी में मनुष्य जन्म की महिमा और उसका वृथा खोने का उलाहना और उपहास्य तथा भगवद्भजन सदा प्रत्येक अवस्था में करते रहने का प्रबोधन किया है। इन चितावनियों में मुख्य एक चमत्कार यह भी है कि इनकी भाषा चटकीली और मुहावरेदार है जिसमें प्रायः ऐसे शब्दों और वाक्यों का प्रयोग है कि जो लोकप्रिय, जनश्रुत वा सर्व-व्यवहृत होते हैं। कुछ दोहे छांट कर देते हैं।]

दोहा छंद।

रचना यह परब्रह्म की, चौराशी झकझोल।
मनुष देह उत्तम करी, (सु) हरि बोलौ हरि बोल॥ १॥
मेरी मेरी करत हैं, देखहु नर की भोल।
फिरि पीछै पछितायेगे, (सु) हरि बोलौ हरि बोल॥ ४॥
हां हा हू हू मैं मुवौ, करि करि घोल मैंथोल।
हाथि कछू आयौ नहीं, (सु) हरि बोलौ हरि बोल॥ ८॥
धाम धूम बहुतैं करी, अंध धंध धमसोल।
धेधंक धीना है गये, (सु) हरि बोलौ हरि बोल॥ १०॥
मोटे मीर कहावते, करते बहुत डफोल।

---

१ झगड़ा, झंझट। २ भूल। ३ हंसी ठट्ठा—हलकी बातें। ४ सलाह—मनसूबे। ५ मार धाड़—धानक धड़िया। ६ धमरोक—धधम। ७ धींगा धिंगाट हो गए। किया कराया सब मिट्टी हो गया। ८ शेखी मेरे दिखाऊ काम। निरर्थक बड़ाई।

मरद गरद में मिलि गये, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ १८१॥
तेरौ तेरैं पास है, अपने मांहि टटोल।
राई घटै न तिल बढै, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ २८॥
सुंदरदास पुकारि कै, कहत बजायें ढोल।
चेति सकै सो चेतियौ, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ ३०॥

---

(२९) तर्क चितावनी ग्रंथ।

[५६ चौपाई छंदों में मनुष्य देह की चारों पनोतियों का मनोग्राही वर्णन और उनमें प्रभु का विस्मरण रह कर मायाजाल के बंधन में पड़े रहना और तत्वज्ञान को विसर जाना और ममता की पोट सिर पर धरे धरे जन्म भर भ्रमते रहना, अंत में हीन दीन हो कर अपनी पाली पोसी प्यारी देह को छोड़ कर चला जाना और फिर इस जन्म के किये पर पछताना, इत्यादि बातों का सूक्ष्म रीति से ऐसा सुंदर चित्र सुंदरदास जी ने खींचा है मानो किसी चित्रकार ने "मीनियेचर पेंटिंग" (Miniature painting) का ही काम कर दिखाया है। प्रत्येक चौपाई का चौथा चरण " अइया मनुष हुं बूझि तुम्हारी " ऐसा आया है। कुछ चौपाइयां देते हैं।]

चौपाई छंद।

पूरण ब्रह्म निरंजन राया,
जिन यह नख सिख साज बनाया।

---

१ सिर से पाँव तक—सांगोपांग शरीर।

ताकहुं भूलि गये बिमचारी,
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥ १ ॥
गर्भ मांहि कीनी प्रतिपाळा,
तहां बहुत होते बेहाला ।
जनमत ही वह ठौर बिसारी,
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ २ ॥
बालापन माँहि भये अचेता,
मात पिता सौं बांध्यो हेता ।
प्रथमहि चूके सुधि न सँभारी,
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ३ ॥
बहुरि कुमार अवस्था आई,
ताहू मांहि नहीं सुधि काई ।
पाइ पेलि हँसि रोइ गुदारी,
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ४ ॥
भयौ किशोर काम जब जाग्यौ,
परदारा कौं निरषन लाग्यौ ।
व्याह करन की मन महि धारी,
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ५ ॥
भयौ गृहस्थ बहुत सुख पाया,
पंच सषी मिलि मंगल गाया ।
करि संयोग बड़ी भ्रमभारी,
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥ ६ ॥

---

१ भ्रमभ्र । अइया=संबोधनार्थ, अरे, हे । २ भूल गए । जो प्रण गर्भ में किया सो याद न रहा । ३ गुजारी, गमाई, खोई ।

जौ त्रिय कहै सु अति प्रिय लागै,
निशि दिन कपि ज्यूं नाचत आगै ।
मारन सहै सहै पुनि गारी,
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥१५॥
यौं करते संतति होइ आई,
तब तौ फूल्यो अंग न माई ।
देत बधाई ता परिवारी,
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥२०॥
पुत्र पौत्र बंध्यौ[1] परिवारा,
मेरे मेरे कहै गंवारा ।
करत बड़ाई सभा मंझारी,
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥२३॥
उद्यम करि करि जोरी माया,
कै कछु भाग्य लिख्यौ सो पाया ।
अज हूं तृष्णा अधिक पसारी,
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥२४॥
निपट वृद्ध जब भयौ शरीरा,
नैननि आवन लाग्यौ नीरा[2] ।
पौरी परयौ करै रषवारी,
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥२५॥
कानहु सुनै न आंषिहु सूझै,
कहै और की औरै बूझै ।

---

१ फैली । २ निर्बलता से जल पड़ने लगा ।

अब तौ भई बहुत बिधि ख्वारी,
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥३०॥
बेटा बहू नजीक न आवैं,
तूं तौ मति चल कहि समुझावैं ।
टूक देंहि ज्यौं स्वान बिळांरी,[1]
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥३१॥
ताकौ कह्यौ करै नहिं कोई,
परवस भयौ पुकारै सोई ।
मारी अपने पांव कुदांरी,[2]
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥३५॥
अब तौ निकट मौति चल आई,
रोक्यौ कंठ पित्त कफ बाई ।
जम दूतनि फांसी विस्तांरी,[3]
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥३७॥
हंस[4] बटाऊ किया पयाना,
मृतक देषि कै सबै डराना ।
घर मांहि तैं ले जाहु निकारी ।
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥ ३९ ॥
लै मसान मैं आय जबही ।
कीये काठ एकठे सबही ॥

---

[1] बिलाई, बिल्ली । २ कुल्हारी—अपने पाँव कुल्हारी मारना—अपना बुरा आप करना । (मुहावरा है)। ३ फाँसी को गले पर फेंका । ४ प्राण पखेरू—जीव ।

अग्नि लगाइ दियौ तन जारी ।
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥ ४३ ॥
सुकृत न कियौ न राम सँभारयौ ।
ऐसो जन्म अमोलिक हारयौ ॥
क्यौं न मुक्ति की पौरि उघारी ।
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥ ४८ ॥
कबहु न कियौ साधु कौ संगा ।
जिनके मिलै लगै हरि रंगा ॥
कलाकंद तजि बनजी पारी ।
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥ ४९ ॥
सकल शिरोमनि है नरदेहा ।
नारायन कौ निज घर येहा ॥
जामहिं पइये देव मुरारी ।
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥ ५५ ॥

---

(३०) विवेक चितावनी ग्रंथ ।

[४७ चौपाई छंदों में शरीर की अनित्यता, मृत्यु अवश्यही

---

१ द्वार—मुक्ति का द्वार ज्ञान और भक्ति है। उसका उघारना इसका साधन। २ शराब खार जो पुराने समयों में बहुत सस्ता होता था। ३ मनुष्य शरीर अन्य योनियों की अपेक्षा उत्तमतर है कि इसमें विवेकादि विशेष है जिनसे परमार्थ साधन हो सकता है। अन्य योनियों में ये यह शक्ति नहीं है इससे वे निकृष्ट और यह श्रेष्ट है सो स्पष्ट है परंतु मनुष्य इस बात को शीघ्र ही भूल जाता है। ४ पाइए। मिल जाते हैं। भगवत्साक्षात—ब्रह्म की प्राप्ति ।

होगी, इस उपदेश के साथ विवेक की उत्तेजना की गई है कि यह शरीर अनित्य है इसका अन्य व्यक्तिगत संबंध भी अनित्य है, जैसे शरीर की स्थिति का निश्चय नहीं वैसे मृत्यु के आने का निश्चय भी नहीं, न जाने कब शरीरपात हो जाय, इसलिये अमरत्व के हेतु ब्रह्मनिष्ठ होनाही एक उपाय है। सबही छंदों में "समझि देखि निश्चै करि मरना" यह अंत्य चरण है। इसका ढंग नीचे लिखे छंदों से प्रतीत होगा जो उदाहरणवत् दिए जाते हैं।]

माया मोह मांहि जिनि भूलै[1]।
लोग कुटंब देखि मत फूलै॥
इनके संग लागि क्या जरनां[2]।
समझि देखि निश्चै करि मरना॥ ३॥
अपने अपने स्वारथ लागै।
तूं मति जानै मोसनै[3] पाँगै॥
इनकौं पहिले छोड़ि निसरना।
समझि देखि निश्चै करि मरना॥ ५॥
या शरीर सौं ममता कैसी।
याकी तौ गति दीसत ऐसी॥
ज्यौं पाळे का पिंड पिघरना।
समझि देखि निश्चै करि मरना॥ ९॥
दिन दिन छीन होत है काया।
अंजुरी मैं जळ किन ठहराया॥

---

१ मत। २ जळना—मरना। क्या इनका इतना घनिष्ट संबंध रखेगा कि सती की नाईं इनके साथ ही जळेगा। ३ साथ। ४ लिपटे।

ऐसी जानि वेगि निस्तरना।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ ११ ॥
पंड विहंड काळ तन करिहै।
संकट महा एक दिन परिहै।
चाकी[1] मांहि मूंग ज्यौं दरना।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ १३ ॥
काळ खरा सिर ऊपर तेरे।
तू क्या गाफिल इत उत हेरे ॥
जैसे वधिक हतै तकि हरना।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ १७ ॥
जोरि जोरि धन भरे भँडारा।
अर्व पर्व कछु अंत न पारा ॥
पोपी हांडी हाथि पकरना।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ १९ ॥
वहु विधि संत कहत हैं टेरै।
जम की मार परै सिर तेरै ॥
धर्मराइ कौं लेपा भरना।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ २४ ॥
वेद पुरान कहै समुझावै।
जैसा करै सु तैसा पावै।
तातैं देखि देखि पग धरना।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ २९ ॥

---

१ चाकी—रीती।

काम क्रोध वैरी घट माहीं।
और कोउ कहुं वैरी नाहीं॥
राति दिवस इनहीं सौं लरना।
समझि देखि निश्चै करि मरना॥ ३१॥
गर्व न करिये राजा राना।
गये विलाई देव अरु दाना॥
तिनके कहूं पोजहू पुरै ना।
समझि देखि निश्चै करि मरना॥ ३६॥
जुदा न कोई रहने पावै।
होइ अमर जो ब्रह्म समावै॥
सुंदर और कहूं न उवरनौं।
समझि देखि निश्चै करि मरना॥ ४०॥

---

(३१) पवंगम छंद।

[इस ग्रंथ का नाम ग्रंथकर्त्ता ने और कुछ न रख कर केवल "पवंगम" ही रख दिया जो उस छंद का नाम है जिसमें यह ग्रंथ वर्णित है। इसमें पवंगम (अरिल) के १८ छंदों में विरहिनी का मनोविकार वा पुकार कही गई है, प्रत्येक छंद के चरण के अन्त्य-पद में "लाटानुप्रास" की रीति से, शब्दालंकार की चतुराई से, वेदांत के कई रहस्य बताए हैं। एकही शब्द को चार चार अर्थों में सरसता से प्रयोग किया है। सब छंद देते हैं।]

---

१ पांव—खोज खुर=निशान। २ बचना। बचने का और दूसरा उपाय ही नहीं है।

पवंगम छंद (अरिल छंद) ।

पिय के विरह वियोग, भई हूं बावरी ।
सीतल मंद सुगंध, सुबात न बावरी ॥
अब मोहि दोष न कोइ परौंगी बावरी ।
(परि हां) सुंदर चहुं दिशि विरह सु घरी बावरी* ॥१॥
विरहनि के मन माहिं, रहै यह सालरी ।
तजि आभूषण सकल, न वोढ़त सालरी ॥
वेगि मिलै नहिं आइ, सु अबकी सालरी ।
(परि हां) सुंदर कपटी पीव, पढ़ै किहि सालरी †॥६॥
दूभर रैनि विहाय, अकेली सेजरी ।
जिनके संग न पीव, विरहिनी सेजरी ॥

---

१ पवंगम (प्लवंगम) छंद—२१ मात्रा का जिसमें आदि गुरु हो अंत में रगण हो वा गुरु हो। यह साधारण मत है। जब ११+१० पर यति हो तो प्रायः अरिल कहाता है और इसी को चांद्रायणा भी कहते हैं जब ११ मात्रा जगणांत और १० मात्रा रगणांत हो। (छंद प्रभाकर पृ० ५०)। इस छंद में 'पर हां' सुखोच्चारण वा गान के अर्थ सिवाय लगा दिया जाता है, छंद में उसकी गणना नहीं है।

* प्रथम छंद में 'बावरी' शब्द में ४ अर्थ है—(१) पगली (२) पवन+री (अरी सखी), (३) वापी—बावली, (४) बावर=घेरा।

† छठे छंद में 'सालरी' के ४ अर्थ—(१) खटका—कांटा, (२) एक प्रकार की ओढनी, दुपट्टा, (३) साल=संवत+(री) (४) शाल=चटसाल।

बिरहै संकल वाहि, बिचारी सेजरी ।
(परि हां) सुंदर दुःख अपार न पाऊं सेजरी ॥११॥
पीव बिना तन छीन, सूकि गई साषरी ।
हाड़ रहै कै चाम, बिरहनी साषरी ॥
निशिदिन जोवै माग, बिचारी साषरी ।
(परि हां) सुंदर पति कौं छांडि, फिरत है साषरी॥१४॥

---

(३२) अडिल्ला छंद ।

[उपरोक्त 'पवंगम' ग्रंथ की नाई यहाँ छंद-भेद से अर्थात् अडिल्ला छंदों में विरहिनी की कथा गाई गई है और यहीं लाटानुप्रास का प्रयोग करके अनेकार्थ का संयोग किया गया है, जैसा नीचे के छंदों से ज्ञात होगा ।]

१—११ वें छंद में—दूभरे=दुखदायिनी, बिहाय=छोड़ वा हाय ! । और 'सजरी' के ४ अर्थ (१) पलंग, बिछौना (री), (२) से=वे+जरी=जली, बली, (३) से=वह+जरी=जड़ी, बँधी । (४) से=वह, जरी=जड़ी, बूटी, दवा ।

२—१४ वे छंद में 'साषरी' के ४ अर्थ—(१) साख=फसल, (२) शाखा=डाली, अथवा सांख (पतली). (३) सा=वह+खरी=खड़ी, (४) सा=वह, खरी=गयी । अर्थात् दीन हीन दशा में ।

३—अडिल्ला छंद—चौपाई छंद का एक भेद है—इसमें १६ मात्रा अंत्य लघु और युग्मचरण वा चरण चतुष्टय में अंत में यमक हो अर्थात् वही शब्द अर्थांतराय से आवे । सुंदरदास जी ने अंत के चारों चरणों में यमक दिया है और अडिल्ला कहा है । और आगे ३३ वें ग्रंथ में मडिल्ला में 'मडिल्ल' छंद के दो दो चरणों में यमक रखा है । (हरिदास

पिय बिन सीस न पारौं पाटी ।
पिय बिन आंषिनि बाँधौं पाटी ॥
पिय बिन और लिषू नहिं पाटी ।
सुंदर पिय बिन छतियां पाटी[1] ॥ ९ ॥
मैं तौ प्रीति करत नहिं जाना ।
पीव सु लै आये नहिं जाना ॥
निशि दिन विरह जरावत जाना ।
सुंदर अब पियहीं पै जानां[2] ॥ ६ ॥
पिय बिन जागी रजनी सारी ।
पिय बिन कबहु न पहरी सारी ॥
सुंदर विरह करवत सारी ।
विरहनि कहौ रहैं क्यौं सारी[3] ॥१०॥
मात पिता अरु काका काकी ।
सुत दारा गृह संपति काकी ॥

कृत छंद रत्नावली) । 'छंद प्रभाकर' में इसी को 'ढिल्ला' लिखा है और लक्षण यह दिया है कि अंत में भगण प्रत्येक चरण में हो, यमक का कुछ नियम नहीं दिया है ।

१—पाटी के चार अर्थ—(१) पटिया । सीमंत । (२) पट्टी । किसी को न देखूं । (३) पत्री । अथवा पाटी पर चित्र । (४) ढकी वा गडी ।

२—'जाना' के चार अर्थ—(१) सीखा, (२) बरात, (३) जीव, (४) चलना ।

३—'सारी' के चार अर्थ—(१) सब, (२) ओढनी, (३) खैंची वा धार की बनी हुई । (४) साबित वा स्वस्थ सँवारी हुई ।

ज्यौं कोइल सुत सेवै काकी ।
सुंदर रिद्ध राषि करि काकी[1] ॥१३॥
गर्भ माहिं तव किन तूं पाला ।
अब माया कौं दौड़त पाला ॥
ऐसी कुबुद्धि ढांक दे पाला ।
सुंदर देह गले ज्यौं पाला[2] ॥१५॥
आगैं महापुरुष जे भूता ।
तिनि वसि कीया पंचौ भूता ॥
अब ये दीसत नाना भूता ।
सुंदर ते मरि मरि ह्वै भूता[3] ॥२०॥
ऐसे रटि जैसे सारंगा ।
अनत न भ्रमि जैसे सारंगा ।
रसिक होइ जैसे सारंगा ॥
तो सुंदर पावै सारंगा[4] ॥२४॥
रिपु क्यौं मरे ज्ञान कौ सरना ।
तातैं मन मैं वासी सरना ॥

१—'काकी' के चार अर्थ—(१) चाची, (२) किस की, (३) कव्वी, (४) क्या किया ।

२—'पाला' के चार अर्थ—(१) पोषण किया, (२) पैदल, (३) पाल, ढक्कन, (४) बरफ ।

३—'भूता' के चार अर्थ—(१) हुए, (२) पंच महाभूत, (३) प्राणी—नानात्व कर के, (४) भूत पिशाच।

४—'सारंगा' के चार अर्थ—(१) पपीहा, (२) हिरण, (३) मोर, (४) सारंगपाणी—अर्थात् परमात्मा अथवा वह + रंग ।

देषि विचारि बहुरि औसरना।
सुंदर पकरि राम को सरना ॥२९॥

---

(३३) मडिल्ला छंद ग्रंथ ।

[" पवंगम छंद " और " अडिल्ला छंद " नामवाले ग्रंथों की भांति " मडिल्ला छंद " नाम का भी ग्रंथ २० मडिल्ला (चौपाई) छंदों में लिखा है परंतु इसमें विरहिन की पुकार की जगह उपदेश-रत्न भिन्न भिन्न लिखे हैं। भेद इतना ही है कि इसमें लाटानुप्रास के स्थान में यमक आए हैं अर्थात् दो चरणों में एक शब्द और दो चरणों में दूसरा शब्द ।]

बंधन भयौ प्रीति करि रामा। मुक्त होइ जौ सुमरे रामा।
निश दिन याही करे विचारा। सुंदर छूटै जीव विचारा ॥ १ ॥
एक कर्म बंधन ह्वै मोटा। तैं बंधी कर्मन की मोटा।
याही सीष सुनै किन काना। सुंदर देह जगत सौं काना ॥ २ ॥

१—'सरना' के ४ अर्थ—(१) तीर+नहीं, (२) सड़ना—बिगड़ना, (३) अवसर+नहीं, (४) शरण ।

२ मडिल्ला छंद—किसी छंदो ग्रंथ में नाम नहीं मिला। परंतु लक्षण से यह अडिल्ला छंद होता है। इसमें दो दो चरणों में यमक है।

३—रामा—(१) स्त्री, (२) राम, भगवान ।

४—विचारा—(१) विचार, (२) बेचारा, गरीब ।

५—मोटा (१) भारी, बड़ा, (२) मोट, गठरी ।

६—काना (१) कान, कर्ण, (२) कन्नी, तरह ।

मूरष तृष्णा बहुत पसारी[1]। हरद हींग लै भया पसोरी।
औरनि कौं ठगि ठगि धन सांचा। सुंदर हरिसौं होइ न सांचा[2]॥ ३ ॥
तृष्णा करि करि परजा भूले। तृष्णा करि करि राजा भू ले[3]।
तृष्णा लगि दशहूं दिश धाया। सुंदर भूषा कबहु न धाया[4]॥ ४ ॥
पाट पटंबर सोना रूपा। भूल्यौ कहा देषि यह रूपा[5]।
छिन मैं बिलै जात नहिं वारा। सुंदर टेरि कह्या कै वारा[6]॥ ९ ॥
जौ तूं देहि धणी कौ लेषा। तौ तूं जौ जानै सो लेषा[7]।
जौ तो पैं नहिं आवै जावा। तौ सुंदर टूटैगी जावा[8] ॥१०॥
बरषा सीस शीत मधि नीरा। उष्ण काल पावक अति नीरा[9]।
ऐसी कठिन तपस्या साधी। सुंदर राम बिना का साधी[10]॥१२॥
सिर पर जटा हाथ नष राषा। पुनि सब अंग लगाई राषा[11]।
कहै दिगंबर हम औधूता। सुंदर राम बिना सब धूता[12] ॥१४॥

१—पसारी (१) फैलाई, (२) दवा बेचनेवाला।

२—साँचा (१) संचित किया, (२) सच्चा, निष्कपट।

३—भूले (१) भूल गये (ईश्वर को), (२) भू=पृथ्वी, ले= लेते हैं।

४—धाया (१) गया, (२) धाया, अघाया।

५—रूपा (१) चाँदी, (२) रूप।

६—वारा (१) देर, समय, (२) बार, दफे।

७—लेखा (१) हिसाब, (२) ले=लेकर+खा=खाजा।

८—जावा (१) जवाब, (२) जबाड़ी, जीभ।

९—नीरा (१) जल, (२) निकट।

१०—साधी (१) साधन की, (२) सा=वह+धी=बुद्धि।

११—राषा (१) रक्खे, (२) राख, भस्म।

१२—औधूता=अवधूत। धूता=धूर्तता।

योगी सो जु करै मन न्यारा । जैसे कंचन काटै न्यारा[1] ।
कान फड़ायें कोइ न सीधा । सुंदर हरि मारग चलि सीधा[2] ॥१५॥
जौ सब तैं हूवा वैरागी । सो क्यों होइ देह वैरागी[3] ।
निश दिन रहै ब्रह्मसौं राता । सुंदर सेत पीत नहिं राता[4] ॥१६॥
जीव दया कहा कीनी जैना । ज्ञान दृष्टि अभिअंतर जैना[5] ।
जीव ब्रह्म कौ लह्यौ न षोजा । सुंदर जती भये ज्यौं षोजा[6] ॥१८॥
कथा कहै वहु भांति पुराणीं । नीकी लागै वात पुराणी[7] ।
दोष जाइ जब छूटै रागा । सुंदर हरि रीझै सो रागा[8] ॥२०॥

---

(३४) बारह मासिया ग्रंथ ।

[काव्य की सब प्रकार की कृतियों वा बनावटों में मुमुक्षु जनों तथा जिज्ञासुओं की रुचि बढ़ाना वा अद्वैत-ब्रह्मविद्या के उपयोगी सिद्धांतों

१—न्यारा (१) भिन्न, (२) न्यारिया, जो सोने चांदी को साफ करता है ।

२—सीध (१) सिद्ध, (२) सही, जो टेढ़ा न हो ।

३—वैरागी (१) विरक्त, (२) विशेष अनुरागी ।

४—राता (१) रत, अनुरक्त, (२) लाल अर्थात् भेद भाव नहीं रहें ।

५—जैना (१) जैन, जिन मत धारी, (२) जै=जो यदि । ना = नहीं ।

६—खोजा (१) खोज, पता, (२) नपुंसक (ख्वाजासरा से खोजा) ।

७—पुराणा (१) पुराण शास्त्र की, (२) प्राचीन ।

८—रागा (१) मोह, विषयानुराग, (२) राग, गान ।

को मनोरंजक बना कर दिखाना, यही सुंदरदास जी का अभीष्ट रहा है; तदनुसार बहुत से क्षुद्र ग्रंथों की रचना की गई है और काव्य के प्रायः अंगों का समावेश किया गया है। 'बारह मासिया' लिखना कवियों की एक चाल है-परंतु वेदांत का पंडित भी बारह मासिया लिखे यह कौतुहल-वर्धक है। बारह मासियों में प्रायः विरहिनी की पुकार होती है, प्रत्येक मास में जो व्यथा ऋतु के अनुसार उसके तन और मन पर बीतती है, उस ही की राम-कहानी वह कहती है। सुंदरदास जी के बारह मासिए में विरहिनी तो यह जीवात्मा है, जो स्वारोपित वा स्वोपार्जित उपाधि (अध्यास) के प्रभाव से निज भाव की भिन्नता मान कर और फिर अपने 'पीव' मूल ब्रह्म के वियोग में विह्वल ज्ञान के उदय की अवस्था में हो कर विरह दशा को प्राप्त होती है। वास्तव में यह भी भक्ति का एक प्रकार है जो पूर्वसंचित गुरुकृपा और भगवदिच्छा से प्राप्त होता है। इस दशा को भोगनेवाले बहुत थोड़े पुरुष दिखाई देते हैं। उस प्यारे "पीव" परमात्मा के विरह में जीवात्मा कैसे कातर होता है, उसी को महात्मा सुंदरदास जी कैसे सीधे ढंग से वर्णन करते हैं, सो नीचे के उदाहरणों से प्रगट होगा।]

पवंगम छंद (अरिल्ल छंद)।

प्रथम सखी री चैत वर्ष लागौ नयौ।
मेरौ पिव परदेश बहुत दिन कौ गयौ॥

---

१ इस बारहमासिया का वेदांतिक वा परामक्ति संबंधी अर्थ अध्यात्म-रीति से भिन्न होता है जिसको विस्तार से यहाँ देने की आवश्यकता नहीं। पाठक स्वयं विचार सकते हैं। साधारण अर्थ तो स्पष्ट ही है।

विरह जरावै मोंहि विथा कासौं कहौं ।
(परि हां) सुंदर ऋतु वसंत कंत विन क्यौं रहौं ॥ १ ॥

भादौं गहर गँभीर अकेली कामिनी ।
मेघ रह्यौ झर लाय चमंकत दामिनी ।
वहुत भयानक रैन पवन चहुं दिशि वहै ।
(परि हां) सुंदर विन उस पीव विरहिनी क्यौं रहै ॥ ६ ॥

पोस मास की राति पीव विन क्यौं कटै ।
तलफि तलफि जिव जाय करेजा अति फटै ॥
सूनी सेज संताप सहै सो वावरी ।
(परि हां) सुंदर काढ़ौं प्रान सुअवहिं उतावरी ॥१०॥

---

(३५) आयुर्बल भेद आत्मा विचार ग्रंथ ।

[यह तेरह चौपाई का छोटा सा ग्रंथ काल और आयु की महिमा का है । इसमें जो जो दशाएँ आयु की मनुष्यलोक और अन्य लोकों में होती हैं उनसे शरीर की अनित्यता और क्षणभंगुरता की प्रतीति दृढ़ होती है । सतयुगादि में मनुष्य की आयु बहुत बड़ी होती थी, उत्तरोत्तर घटते घटते कलियुग में सौ वर्ष की आ ठहरी, परंतु पूर्णायु सब की नहीं होती । बहुत से अल्पायु ही पाते हैं, और क्या अल्पायु और क्या दीर्घायु सबका अंत आ ही जाता है, घटते घटते घट ही जाता है, यहां तक कि वर्षों के महीने, महीनों के दिन, दिनों की घड़ियां, और घड़ियों के पल रह जाते हैं ।]

चौपई छंद।

येक पलक घटै स्वासा होइ, तासौं घटि बढ़ि कहै न कोइ।
पंच च्यारि त्रिय द्वै इक स्वास, अर्ध पाव अधपाव विनाशै ॥ ८ ॥
यौं आयुर्बल घटतौ जाइ, काल निरंतर सबकौं षाइ।
ब्रह्मा आदि पतंग जहां लौं, उपजे विनसै देह तहां लौं ॥ ९ ॥
यथा बांस लघु दीरघ दोइ, तिनकी छाया घट विधि होइ।
जब सूरज आवै मध्यान, दोऊ छाया एक समानै ॥१०॥
यौं लघु दीरघ घट कौ नाश, आतम चेतन स्वयं प्रकाश।
अजर अमर अविनाशी अंग,सदा अखंडित सदा अभंग ॥११॥
घटै न बढ़ै न आवै जाइ, आतम नभ ज्यौं रह्यौ समाइ।
ज्यौं कोई यह समझै भेद, संत कहै यौं भाषै वेद ॥१२॥

---

(३६) त्रिविध अंतःकर्ण भेद ग्रंथ।

[वेदांत में अंतःकर्ण चतुष्टय मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार नामों से प्रसिद्ध है। सुंदरदासजी ने प्रत्येक के प्रश्नोत्तर में तीन तीन

---

१ चौपाई १५ मात्रा की अंत्यलघु प्रायः।

२—एक पलक, एक घडी, एक मुहूर्त, दिन रात्रि आदि में जितने जितने स्वास साधारण स्वस्थ पुरुष लेता है वह शास्त्रों में बहुत स्थलों में वर्णित है।

३—आयु के साथ स्वासों की गणना भी घटती जाती है यही विनाश का क्रम है।

४—सूर्य के उतार चढाव से छाया का न्यूनाधिक्य और मध्य में मध्यान्ह का दृष्टांत छाया का लघुतम रूप बताया है।

भेद दिखाए हैं। एक बाह्य दूसरा अंतः और तीसरा परम इस प्रकार अंतःकर्ण के बारह भेद प्रभेद हुए।]

उत्तर। चौपाई छंद।

बहै वाहिर्मन भ्रमत न थाकै, इंद्रियद्वार विषै सुख जाकै।
अंतर्मन यौं जानै कोहं, सुंदर ब्रह्म परम मन सोहं॥ २॥
बहिर्बुद्धि रजतम गुण रक्ता, अंतर्बुद्धि सत्व आसक्ता।
परम बुद्धि त्रय गुण तें न्यारी, सुंदर आतम बुद्धि विचारी॥ ४॥
बहिर्चित्त चितवै अनेकं, अंतर्चित्त चितवन येकं।
परम चित्त चितवन नाहिं कोई, चितवन करत ब्रह्ममय होई॥ ६॥
बहि जो अहं देह अभिमानी, चारि वर्ण अंतिज लौं प्रानी।
अंतः अहं कहै हरिदासं, परम अहं हरि स्वयं प्रकाशं॥ ८॥

---

(३७) " पूरबी भाषा बरवै "।

[२० बरवा छंदों में पूर्बी भाषामय कविता के ढंग पर विपर्यय गूढार्थवत्, ब्रह्मज्ञान के भेद को लिखा गया है यथा—]

नंदा छंद (बरवा छंद)।

सद्गुरु चरण निनौऊं मस्तक मोर।
बरवै सरस सुनावउं अद्भुत जोर॥ १॥

---

१ ये तीन भेद तीन शरीरों के—स्थूल, सूक्ष्म, कारण—अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमय कोशों के अनुसार हैं। यह क्रम पूर्ण रीति से सोदाहरण हृदयंगम होने से वेदांत की परिपाटी में कुछ आक्षेप को स्थान नहीं रहता। २ नवाऊं।

औरउ अचिरज देषलं[1] बाँझ क[2] पूत ।
पंगु चढ़ल[3] पर्वत पर वड़ अवधूत ॥ ५ ॥
बहुत जतन कैलांवल[4] अदभुत बाग ।
मूल उपर तर डरियां देषहु भाग ॥ ८ ॥
सहज फूल फर लागल[6] बारह मास ।
भंवर करत गुंजारनि विविध विलास ॥ ९ ॥
अंबडार पर बैसलँ[7] कोकिल कीर ।
मधुर मधुर धुनि बोलहिं सुख कर सीर[8] ॥ १० ॥

❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁

सुख निधान परमातमा आतम अंस[9] ।
मुदित सरोवर मंहियां क्रीड़त हंस ॥ २६ ॥
रस महियां रस होइहि नीरहि नीर ।
आतम मिलि परमातम षीरहि षीर ॥ २८ ॥
सरिता मिलहि समुद्रहिं भेद न कोइ ।
जीव मिलहि परब्रह्महि ब्रह्महि होइ[10] ॥ १९

---

१ देखा । २ क=के । ३ चढा । ४ किया । ५ भाग कर वा कैसा अचरज है । ६ लगे । ७ बैठे । ८ धारा । ९ जीवात्मा, महात्मा । १० जीव ब्रह्मरूप है इसलिये ब्रह्म में मिलना एक व्यवहार पक्ष में कथन मात्र है । सुंदरदास जी का ढंग इस विषय के वर्णन का ऐसा सुंदर और सुगम है कि इस बड़ी कठिन बात को फूलों की सी माला कर दिखाया है ।

(३८) फुटकर काव्यसार ।

[सुंदरदास जी ने जो फुटकर काव्य किया वह उनकी मूल प्राचीन पुस्तक में एक स्थानी है तदनुसार ही यहां भी क्रम रक्खा गया है। इसमें चौबोला, गूढ़ार्थ, आद्यक्षरी, अंत्याक्षरी, मध्याक्षरी, चित्रकाव्य, गणागण विचार, नवनिधि अष्टसिद्धि, आदि हैं । इनमें पिछले प्राय: छप्पय छंद ही में हैं, फिर अंतर्लापिका बहिर्लापिका, निर्गत, निगडबंध, सिंहावलोकनी, अंत समय की साषी आदि हैं। इन में से कुछ चाशनी की भांति लिख दिए जाते हैं।]

(क) चौबोला से दोहा छंद।

पी पर देशैं गवन करि, वरवट गये रिसाइ ।
परा सषी मो रोवना, सालरि दै नहिं जाइ ॥ १ ॥
वहे रावरे कौन दिसि, आव राषि मन मोर ।
हरैं हरैं जिमि फिरहु, करहु कृपा की कोर ॥ २ ॥

---

१ पीपरदा=गाँव का नाम है। 'पी पर देशैं' इसका श्लेष है। वरवट=गाँव का नाम है। वरवट=फरवट, शीघ्र। परास और मोर= गाँवों के नाम हैं। श्लेष में सखी मुझे रोना पड़ा। सालरदा=गांव का नाम। श्लेष में हृदय की साल जाइ (मिटै) नहीं।

२ वहेरा=वहेडा (औषधि)। रावरे=आपके कौन सी तरफ वा देश में वह रहता है वा वसता है। अथवा रे राव (प्रीतम) कौन देश वा किस धुन में फिरते हो । आवरा=आंवला (औषधि) और आव मेरा मन रख। हरडै (औषधि) हल जा कर जैसे लौट आता है अथवा हर महादेव जैसे प्रसन्न हो जाता है वैसे लौट आओ। इसमें त्रिफला का नाम भी आ गया और दूसरा अर्थ भी आ गया।

दुवा तिहारी लेत ही, कलमष रहे न कोइ ।
काग दशा सब मिटि गई, लेषकर्म यों होई ॥१३॥
आगरासु मम पीव है, दिल्लि में और न कोइ ।
पटनारी तातैं भई, राजमहल में सोई ॥१४॥
काशी लागा बहुत ही, गया और ही वाट ।
अजो ध्यान अब करत हौं, तिरवेनी के घाटै ॥१५॥

(ख) गूढ़ार्थ से दोहा छंद ।

रसु सोई अमृत पिवै, रन सोई जिह ज्ञान ।
सुप सोई जो बुद्धि बिन, तीनौं उलटे जानँ ॥१५॥

---

१ दुवात—कलम—कागज—लेख—ये शब्द और अर्थ दूसरा आता है । 'तिहारी' दुआ (दवा) से पाप (रोग) नहीं रहा । कच्चे की दशा पाप वा रोग की अवस्था मिट गई ।

२ आगरा, दिल्ली, पटना और राजमहल शहरों के नाम हैं । श्लेष का अर्थ—मेरा पीव अति चतुर और प्रवीण है । मेरे मन में पीव को छोड़ कुछ समा नहीं सकता । मैं राजमहल (परागति) में इसलिये जाता हूं कि मैं पटनारी (परमभक्त वा कृपापात्र) बन चुका हूं ।

३ काशी, गया, अयोध्या और त्रिवेनी (प्रयाग) तीर्थ स्थानों वा शहरों के नाम हैं । दूसरा अर्थ—(काशिन् = चमकनेवाला) योग से तपने चमकने लगा अथवा आसन (काशी = आसन) पर बैठ कर बहुत योग वा तप किया तो संसार छूट परमार्ग चला गया । तो (अजो = अजपा, वा मुख्य) अजपा का वा ब्रह्म का (अज = अजन्मा) ध्यान अब करता हूं । जिस से इड़ा पिंगला और सुषुम्ना के घाट मार्ग में रहता हूं ।

४—रसु का उलटा सुर । रन का उलटा नर । सुप का उलटा पसु (पशु) ।

तारी बाजैं कुंभ ज्यौं, षैरा गर्व गुमान ।
लेवो मिथ्या रात दिन, लाभ न होइ निदान ॥१९॥

कर्म काटि न्यारा भया, बीसौं विस्वा संत ।
रमैं रैनि दिन राम सौं, जीवै ज्यौं भगवंत ॥२१॥

नाम हृदै निश दिन सुनै, मगन रहै सब जाम ।
देषै पूरन ब्रह्म कौं, वहाँ येक विश्राम ॥२२॥

(ग) मध्याक्षरी ।

शंकर कर कहि कौन	पिनाक ।
कौन अंबुज रस रंगा ।	भ्रमर ।
अति निलज्ज कहि कौन	गनिका ।
कौन सुनि नादहि भंगा ।	कुरंग ।
काम अंध कहि कौन	कुंजर ।
कौन कै देषत डरिये ।	पन्नग ।
हरिजन त्यागत कौन	कलेस ।
कौन षायें तें मरिये ।	मोहुरौ ।
कहि कौन धात जग में खंन ।	कनक ।
रसना कौं को देत वर ।	सारदा ।

अब सुंदर द्वै पषि त्याग कैं,
नाम निरंजन लेहु नरं ॥ १ ॥

१—तारी का उलटा रीता । खैरा का रोखै । लेवो का बोलै । लाभ का भला ।

२—क + वी + र + जी चारों चरणों के पहिले अक्षर जोड़ने से ।

३—नामदेव-चारों चरणों के पूर्वाक्षर जोड़ने से ।

४—'नाम'...आदि अक्षर 'पिनाक' आदि के मध्य से निकलते हैं ।

(घ) काव्य-लक्षण और गणागण।

छप्पय छंद।

नख शिख शुद्ध कवित्त पढ़त अति नीकौ लगौ।
अंग हीन जो पढ़ै सुनत कविजन उठि भगौ॥
अक्षर घटि बढ़ि होइ षुडावत नर ज्यौं चल्लै।
मात घटै बढ़ि कोइ मनौं मतवारौ हल्लै॥
औढेरे[1] कांणे[2] सो तुक अमिल अर्थहीन अंधो यथा।
कहि सुंदर हरिजस जीवें[3] है हरिजस बिन मृतकहि तथा॥२५॥

माधोजी है मगण यहहै[4] यगण कहिज्जै।
रगण रामजी[5] होइ सगण सगलै[6] सुलहिज्जै॥
तगण कहैं तारक[7] जरात[8] सु जगण कहावै।
भूधर भणियें भगण नगण सुनि निगम बतावै॥
हरिनाम सहित जे उषरहिं तिनकौं सुभगण अठ्ठ हैं।
यह भेद जके जानै नहीं सुंदर ते नर सठ्ठ हैं॥२६॥

---

१ बहंगा, एक आंख से टेढ़ा देखनेवाला। २ कांणा, एकाक्षी। ३ जीवन-मूल है। शांतरस भगवतगुणानुवाद वा ब्रह्मविद्या ही काव्य का मुख्य गुण हो सकता है शृंगारादि नहीं। ४ 'इदमस्ति' 'अयमात्मा' का अनुवाद है। ५ रमयतीति रामः। ६ सर्वव्यापक। ७ तारनेवाला वा तारक मंत्र। ८ जरा बुढ़ापा जिसमें नहीं अर्थात् अजर—नित्य। ९ भूधर भगवान का नाम अथवा शेष (पिंगल)। १० वेद वा भगवान। भगवान वा देवता के नाम वा गुणमय जो छंद हो उसमें गुण दोष नहीं माना जाता।

सप्तवार, बारह मास, बारह राशि नाम ।

प्रगट होइ आदित्य सोमं जब हृदये आवै ।
मंगल दशहू दिशा बुद्ध तब ही ठहरावै ॥
बृहस्पति ब्रह्म स्वरूप शुक्र सब भाषत ऐसैं ।
थावर जंगमं मध्य द्वैत भ्रम रहै सु कैसैं ॥
है अति अगम्य अरु सुगम पुनि सद्गुरु विन कैसे लहैं ।
यह बारहिं वार विचार करि सुन्न वार सुंदर कहैं ॥२९॥

कार्त्तिक काटै कर्म मार्गसिर गति यज्ञाँसा ।
पोष मिल्यौ सतसंग माघ सब छाड़ी आसा ॥
फाल्गुण प्रफुलित अंग चैत्र सब चिंता भागी ।
वैसाषा अति फली जेठ निर्मल मति जागी ॥

---

१ चंद्रनाडी की सिद्धि से सूर्यनाडी (पिंगला) की सिद्धि हो अथवा शीतलता शांति के होने से ज्ञानरूपी सूर्य उदय हो । २ जो सर्वत्र मंगलमय ब्रह्म को मानता है वही बुद्ध = ज्ञानी है । ३ बृहस्पति भी 'वीर्यों वै ब्रह्म' ऐसा कहता है । ४ शुक्र=शुक्राचार्य वा वीर्य । क्या देवता क्या दानव दोनों के ही गुरु ब्रह्म का स्वरूप 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' ऐसा कहते हैं—यह भी अर्थ होता है । अथवा वे 'थावर जंगम' ...इत्यादि वाक्य कह कर ब्रह्म की सर्वव्यापकता बताते हैं । ५ जो पुरुष स्थावर को अनात्म कहते हैं सो भ्रम में हैं । किंतु क्या स्थावर और क्या जंगम सब ही ब्रह्ममय हैं इनका भेद देख कर द्वैतभाव नहीं लाना । ६ वार वार (निरंतर) अथवा वरे ही वरे । आगे पहुँचने की गम्य नहीं । वा वारों के नामों को विचार कर यह श्लेष काव्य बनाया ।

७ जिज्ञासु । बारह महीनों में उत्तरोत्तर ज्ञानोन्नति हुई सो ही नाम में सार्थक होना दिखाते हैं ।

आषाढ़ भयो आनंद अति श्रावण स्रवति अमी सदा ।
भाद्रव द्रवति परब्रह्म जदि अश्वनि शांति सुंदर तदा ॥३०॥

मीन स्वाद सौं बंध्यौ मेष मारन कौं आयौ ।
वृषं[1] सूकौ तत्काल मिथुन करि काम वहायौ ॥
कर्क[2] रहौ उर माहिं सिंघ आवतौ न जान्यौ ।
कन्या चंचल भई तुलत अकतूल[3] उडान्यौ ॥
वृश्चिक विकार विष डंक लगि, सुंदर धन ।मितन भयौ ।
परि मकर न छाड्यो मूढ़ मति कुंभ फूटि नरतन गयौ ॥३१॥

मन गयंद । छप्पय ।

मन गयंद बलवंत तास के अंग दिषाऊं ।
काम क्रोध अरु लोभ मोह चहुं चरन सुनाऊं ॥
मद मच्छर[4] है सीस सुंडि त्रिष्णा सुडुलावै ।
द्वंद दसन हैं प्रगट कल्पना कान हलावै ॥
पुनि दुविधा दृग देषत सदा पूंछ प्रकृति पीछे फिरै ।
कहि सुंदर अंकुस ज्ञान के पीलवान गुरु वसि करै ॥३२॥

च्यार अवस्था, च्यार वर्ण ।

अंत्यज देह स्थूल रक्त मल मूत्र रहे भरि ।
अस्थि मांस अरु मेद चर्म आच्छादित ऊपरि ॥
शूद्रसु लिंग शरीर वासना वहु विधि जामाहिं ।
वैश्यहु कारण देह सकल व्यापार सु तामाहिं ॥

---

१ वृप=वृष । २ कर्क=कडक—हिम्मत वा कसक—कमी । ३ अंडी, गावटा (यह शब्द सुंदरदास जी ने अपभ्रंश कर के लिखा है) । ४ मात्सर्य ।

यह क्षत्रिय साक्षी आतमा तुरिय चढ़ें पहिचानियें ।
तुरिया अतीत ब्राह्मण वही सुंदर ब्रह्म बषानियें ॥३६॥

सप्त भूमिका ।

प्रथम भूमिका श्रवन चित्त एकाग्रहि धारै ।
द्वितीय भूमिका मनन श्रवन करि अर्थ विचारै ॥
तृतीय भूमिका निदिध्यास नीकी विधि करई ।
चतुर भूमि साक्षात्कार संशय सब हरई ॥
अब तासौं कहिये ब्रह्म विंदु वर वरियान वरिष्ठ है ।
यह पंच षष्ट अरु सप्तमी भूमि भेद सुंदर कहै ॥३८॥

सुख दुख नींद अरूप जबहिं आवैं तब जानैं ।
शीतहुँ उष्ण अरूप लगें ते सब पहिचानैं ॥
शब्द रु राग अरूप सुनें ते जानें जाँहीं ।
वायु हु व्योम अरूप प्रगट बाहरि अरु माँहीं ॥
इहिं भाँति अरूप अखंड है सो कैसैं करि जानियें ।
कहि सुंदर चेतन आतमा यह निश्चय करि आनियें ॥३९॥

---

१ सप्त व्याहृती सात लोकों (जगत वा अस्ति मात्र के द्योतक वर्णों) के सांकेतिक रूप हैं । जिनके प्रवेश मार्ग चार रूपवान् और तीन अरूपवान परस्पर हैं उनको वर—वरियान और वरिष्ट कहा है। उत्तरोत्तर उन्नत और सूक्ष्म हैं ।

२ रूपरहित अनेक पदार्थ हैं जो इंद्रियों से प्रत्यक्ष नहीं हो सकते, बुद्ध्यादि से उनकी प्रतीति होती है। इस ही प्रकार बुद्धि से परे जीवात्मा वा ब्रह्म है सो बुद्धि से तो प्रत्यक्ष नहीं हो उसका ज्ञान योग

एक सत्य परब्रह्म येक तें गनती गनिये ।
दस दस आगें एक एक सौ ताँई भनियें ॥
एकहि को विस्तार एक को अंत न आवै ।
आदि एक ही होइ अंत एकहि ठहरावै ॥
ज्यौं लूता तंत पसारि कै बहुरि निगलि लूता रहै ।
यौं सुंदर येक अनेक ह्वै अंत वेद एकै कहै ॥४०॥

(छ) अंतर्लापिका ।

लंक मारि क्षत्रिय प्रहारि हलधारि रहै कर ।
महीपाल गोपाल व्याल पुनि धाइ गहै वर ॥
मेघ आस धुनि प्यास नाश रुचि कँवल वास जिहिं ।
बुद्धतात हनुतात प्रगट जगतात जानिं तिहिं ॥
तुम सुनहु सकल पंडित गुनी अर्थहि कहो विचार करि ।

मार्ग से संभव है। उत्तरोत्तर उत्क्रांति इस ज्ञान में भी है जो "स्थूला-रुंधात न्याय" से सिद्ध होती है। साइंस, विज्ञान, के धुरंधर 'हक्सले 'टिंडल' आदि ने भी इस बात को माना है। यही बात हमारे देश के भिक्षुक साधुओं तक को ज्ञात रही है। यहाँ की अध्यात्म विद्या की महिमा है।

१ लूता (मकडी) का दृष्टांत उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र आदि में ठौर ठौर आया है। यहाँ सृष्टि का विस्तार और उसका लय, एक से अनेक और पुनः अनेक में एक—अन्वय व्यतिरेक—सृजन और संहार—उत्पत्ति और नाश रूपेण—जानना। प्रसिद्ध ग्रीक (यूनानी) दार्शनिक 'अरस्तू' और 'अफलातून' ने भी 'एक और तीन' और 'एक से अनेक' को और 'लौट कर अनेक से एक' की ऐसी ही युक्तियां दी हैं।

चत्वार शब्द सुंदर वदत राम देव सारंग हरि[1] ॥४३॥

(ज) निगडबंध ।

अधर लगै जिन कहत वर्ण कहि कौन आदि कौं ।
सब ही तें उत्कृष्ट कहा कहिये अनादि कौं ॥
कौन बात सो आहि सकल संसारहि भावै ।
घटि बढ़ि फेरि न होइ नाम सो कहा कहावै ॥
कहि संत मिलै उपजै कहा दृढ़ करि गहिये कौन कहि ।
अब मनसा वाचा कर्मना सुंदर भजि परमानंद हि[2] ॥४८॥

---

१ राम = (१) रामचंद्र, (२) परशुराम, (३ बलराम । देव = (१) राजा, (२) भगवान, (३) शिव (सर्पधारी) । सारंग = (१) मोर, (२) पपीहा, (३) भौंरा । हरि = (१) चंद्रमा, (२) पवन, (३) विष्णु वा ब्रह्मा । गुनी = गुणी = गुणवान पंडित अथवा गुनी + अर्थ = त्रिगुण अर्थ, तीन तीन अर्थ ।

२ 'प + र + मा + न + द' इन अक्षरों में ओष्ठ्य 'पकार' प्रथम है पवर्ग में । फिर आगे का एक अक्षर 'रकार' जोडने से 'पर' हुआ जिसका अर्थ परमात्मा । ऐसे ही 'रमा' = लक्ष्मी जो सब को प्रिय है और 'परमा' = सुखमा = शोभा यह भी सब को भाती है । आगे 'परमान' = नाप, तोल, प्रमाण, परिमान — जो अटल है घट बढ नहीं सकता । अंत में 'परमानंद' = ब्रह्मानंद जो सत और सद्गुरु की कृपा से मिलता है । इसी आनंद वा परमगति को दृढ कर पकडना सिद्धों का काम है और दृढता निश्चय का बोधक है सो ' हि ' शब्द से क्रिया जा सकता है जो 'परमानंद' शब्द के अंत में है अर्थात् परमानंद ही दृढकर रखना चाहिए । 'परमानंद' शब्द में 'नकार' के ऊपर का अनुस्वार छंद के अर्थ अर्द्ध बोला जायगा ।

(म) चित्रकाव्य के बंध।

(१) छत्रबंध। छप्पय छंद।

सुनहु अंक की आदि दशा इक विधि सुव केते।
रस भोजन पुनि जान भनौ योगांगहि जेते॥
जलज नाभि दल बूझि हुई कै कंचन वानी।
निरषि भवन कै कहौ रंभ वय किती बषानी॥
जग मांहि जु प्रगट पुरान कै नंदन नष कर पग गनं।
सब साधन कै सिरछत्र यह सुंदर भजहु निरंजनं॥ १॥

(२) नागपाश बंध। मनहर छंद।

जनम सिरानो जाय भजन विमुख सठ।
(देखो "सवैया" में उपदेश चितावनी छंद २९)॥

---

१ अंक का आदि 'एक' वा 'एका' है। विधिसुत = सनकादिक चार और रस छः हैं (भोजन चार प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य)। योगांग—अष्ट अंग योग के हैं। जलज नाभि = ब्रह्मा, उसके कमल के दल, पत्र दश हैं। कंचन वाणी = बारह हुई। भुवन = लोक चौदह हैं (सात ऊपर सात नीचे) रंभा की अवस्था सोलह वर्ष की। पुराण अठारह। नंदन = पुत्र, उसके हाथ पांव के नख बीस हैं। 'दशाइक' का अर्थ यह भी सुना है कि 'सुन' हु अंक का आदि अर्थात् अंक का आदि पहिले शून्य है। और दिशा भी शून्य है और एका पर शून्य धरने से दश होता है और एक पर एक अर्थात् आपस में मिलने वा जुड़ने से १ + १ = २ दो होते हैं। या दशाइक = दो का अर्थ हुआ सो नहीं। सात 'सुंदर भजहु निरंजनं' इसका छत्रबंध ग्रंथ के आदि में दिया है।

२ नागपाश का चित्र भी आदि में है।

(ञ) "दशों दिशा" के सवैयों से ।

[सुंदरदास जी ने भारतवर्ष के बहुत से विभागों में भ्रमण किया था, इस भ्रमण का कुछ वृत्तांत उन्होंने १० सवैयों में लिखा है, उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत करते हैं । यह सवैया आजतक कहीं मुद्रित नहीं हुए थे ।]

छंद इंदव ।

हिक्क[1] लहौर दा नीर भी उत्तम हिक्क लहौर दा बाग सिराहे ।
हिक्क लहौर दा चीर भी उत्तम हिक्क लहौर दा मेवा सिराहे ॥
हिक लहौर दे हैं विरहीजन हिक्क लाहौर दे सेवग भाए ।
कितक बात भली लाहौर दी ताहिते सुंदर देषने आए ॥ ४ ॥
ब्रिच्छ न नीर न उत्तम चीर न देशन में गत देश है मारू ।
पांव में गोषरु[2] भुंटे गहैं अरु आंप मैं आइ परै उड़ि वारू ॥
रावरि छाछि पिवैं सब कोइ सु ताहि तें पाज रतैं धुरु[3] नारू ।
सुंदरदास रहो जनि बैठि के बेगि करो चलिवे को विचारू ॥ ६ ॥
भूमि पवित्रहु लोग विचित्रहु रागरु रंग उठै तत ही तें ।
उत्तम अन्न असन्न वसन्न प्रसन्न है मन्न जु षात घही तें ॥
ब्रिच्छ अनंत रु नीर वहंत रु सुंदर संत विराजत ही तें ।
नित्य सुकाल पड़ै न दुकाल सु मालव देश भलौ सवही तें ॥ ७ ॥
पूरव पच्छिम उत्तर दच्छिन देश विदेश फिरे सब जानें ।
केतक द्यौस फतेपुर माहिं सु केतक द्यौस रहे डिंडवानें ॥
केतक द्यौस रहे गुजरात उहांहुं कछु नहिं आन्यौ है ठानें ।
सोच विचारि कै सुंदरदास जु याहिते आन रहे कुरसाने ॥ ८ ॥

---

१ इक=एक । २ गरभूट । ३ रतौंधी रोग ।

सुच्छि अचार कछू न विचार सुमास छठैं कबहूं कस न्हांहीं।
मूंड धुजावत बार परै गिरते सब आटे मैं ओसनि जांहीं॥
बेटी रु बेटन कौ मल धोवत वैसैहिं हाथन सौं अन पांहीं।
सुंदरदास उदास भयौ मन फूहड़, नारि फतेपुर मांहीं॥ ९॥

कंदरु मूल भले फल फूल सुरस्सरि कूल बनें जु पवित्तर।
आधि न व्याधि उपाधि नहीं कछु तारि लगैं तें हरैं जमुनुत्तर॥
ज्ञान प्रकाश सदाहि निवास सु सुंदरदास तरै भव दुस्तर।
गोरषनाथ सराहिहै जाहि सु जोग के जोग भली दिश उत्तर॥१०॥

इति श्री सुंदरदास कृत फुटकर काव्य का सार समाप्त।
सर्व लघु ग्रंथ समाप्त।

---

१ मन्वंतर, दीर्घकाल (तक तारी=समाधि लगी रहे।)

सुंदर विलास।

अथ सवैयासार।

["सवैया" ग्रंथ के संबंध की बातें विशेषतया भूमिका में लिख दी गई हैं। स्वामी सुंदरदास जी की कविता का यह ग्रंथ शिरोमणि और इससे उतर कर 'ज्ञानसमुद्र' है। क्या काव्यछटा और क्या ज्ञान की शैली, जिस माधुर्य्य और ओज आदि गुणों के समारोह से इन दोनों ग्रंथरत्नों में वर्णित है वैसे भाषा साहित्य भर में स्यात् कठिनाई ही से किसी अन्य ग्रंथ में मिले। इस 'सार' में हम उन छंदों को छांट कर रखते हैं जो क्या दादू पंथियों में और क्या सर्व साधारण काव्यप्रेमी और ज्ञानरसिकों में प्रसिद्ध या प्रियतर हैं या प्रचलित या प्राय: कंठस्थ किए जाते हैं अथवा जो हमारी बुद्धि में कितने ही कारणों से चुने जाने के योग्य प्रतीत हुए हैं।]

---

(१) गुरु देव को अंग।

[इस अंग के छंदों को पढ़ कर प्रतीत होगा कि पहिले समयों में गुरुभक्ति कैसी हुआ करती थी। हमारे जान भारतवर्ष की बड़ी गहन विद्याओं और विशेषत: अध्यात्मविद्याओं की उन्नति का मूल कारण यह गुरुभक्ति ही रही होगी। सुंदरदास जी बचपन ही से दादू जी के शिष्य हुए थे; तब भी उनकी प्रगाढ़ गुरुभक्ति को देखने से उनके चित्त और बुद्धि का कैसा अच्छा अनुमान हो जाता है; वास्तव में

स्वामी ने गुरु की कृपा का फल पा लिया था। 'दयालु' की दयालुता भी इससे भली भाँति प्रगट हो जाती है कि थोड़े ही दिनों में अपने एक बालक शिष्य को क्या समृद्धि प्रदान कर गए। धन्य ऐसे गुरु और ऐसे शिष्यों को जिन्होंने ब्रह्मविद्या का पुष्कल दान संसार को किया और अगाध शिष्य प्रेम और गुरुभक्ति प्रकाशित की।]

इंदव छंद।

मौजं करी गुरुदेव दया करि शब्द सुनाइ कह्यौ हरि नेरौ।
ज्यौं रवि कैं प्रगट्यें निश जावैसु दूरि कियौ भ्रम भाँति अँधेरौ॥
काइक वाइक मानस हू करिहै गुरुदेवहि वंदन मेरौ।
सुंदरदास कहै कर जोरि जु दादू दयाल कौ हूँ नित चेरौ॥१॥
पूरण ब्रह्म विचार निरंतर काम न क्रोध न लोभ न मोहै।
श्रोत्र त्वचा रसना अरु घ्राण सु देखि कछू कहुँ नैनन मो है॥
ज्ञान स्वरूप अनूप निरूपण जासु गिरा सुनि मोहन मोहै।
सुंदरदास कहै कर जोरि जु दादूदयालहि मोर नमो है॥२॥

---

१ मौज (फारसी श०)=लहर, हुल्लर, आनंद। २ सर्व अध्यात्म दीक्षाओं में मंत्र, शब्द, इंगित ही प्रथम प्रवेश का कारण होता है। नेरौ=नीड़ा, निकट, ब्रह्म हमारे भीतर है, दूर ढूँडने की आवश्यकता नहीं, यही दादू जी का चरम सिद्धांत था। ३ मिट जाती है जैसे। ४ भांज कर=दूर कर के। ५ कायिक, वाचिक, मानसिक। ६ वंदनीय अथवा गुरु के अर्थ वंदन नमस्कार। ७ यहां नित (नित्य वा नियत) शब्द आने से चेरो शब्द के अर्थ में विशेषता आ गई है। सदा दास।

८ मोह है (संज्ञा)। ९ मोह को प्राप्त (नहीं) होवै। १० नमन अर्थात् दमन हुआ है। ११ नमस्कार है।

धीरजवंत अडिग्ग जितेंद्रिय निर्मल ज्ञान गह्यौ दृढ़ आदू।
शील संतोष छमा जिनकैं घट लागि रह्यौ सु अनाहद नादू॥
भेष न पच्छ निरंतर लच्छ जु और नहीं कछु वाद विवादू।
ये सब लच्छन हैं जिन माहिं सु सुंदर कै उर है गुरु दादू॥३॥
भौ जल में वहि जात हुते जिनि काढ़ि लिए अपने कर आदू।
और संदेह मिटाय दियौ सब काननि टेर सुनाइ कैं नादू॥
पूरण ब्रह्म प्रकास कियौ पुनि छूटि गयौ यह वाद विवादू।
ऐसी कृपा जु करी हम ऊपर सुंदर कै उर है गुरु दादू॥४॥
कोउक गोरख को गुरु थापत कोउक दत्त[1] दिगंबर आदू।
कोउक कंथर[2] कोउक भरथर[3] कोउ कबीर को राखत नादू॥
कोउ कहै हरदास[4] हमार जु यों करि ठानत वाद विवादू।
और तो संत सबैं सिर ऊपर सुंदर कै उर है गुरु दादू॥५॥

❀ ❀ ❀ ❀

जोगी कहैं गुरु जैन कहैं गुरु वोध कहैं गुरु जंगम[5] मानैं।
भक्त कहैं गुरु न्यासी[6] कहैं वनवासी कहैं गुरु और बखानैं॥
शेख[7] कहैं गुरु सोफी[8] कहैं गुरु याही तें सुंदर होत हरानैं।
वाहु कहैं गुरु वाहु कहैं गुरु है गुरु सोई सबै भ्रम भानैं॥७॥

---

१ दत्तात्रेय योगीश्वर दिगंबर योगियों के पंथ के आदि आचार्य।
२ कंथरनाथ योगी। ३ भर्तृनाथ प्रसिद्ध भर्तृहरि राजा जी योगी हुए।
४ यह हरिदास निरंजनी डिडवानें (मारवाड) में हुए; दादू जी के शिष्य थे। फिर कबीर पंथ में हो गए और भिन्न पंथ चलाया।
५ योगियों का एक पंथ जो लिंगपूजक और नंदीसेवक है।
६ संन्यासी। ७ मुसलमान धर्म का आचार्य। ८ मुसलमानी वेदांत का अनुयायी।

सो गुरुदेव लिपै न छिपै कछु सत्व रजो तम ताप निवारी ।
इंद्रिय देह मृषा करि जानत सीतलता समता उर धारी ॥
व्यापक ब्रह्म विचार अखंडित द्वैत उपाधि सबै जिनि टारी ।
शब्द सुनाय संदेह मिटावत सुंदर वा गुरु की बलिहारी ॥८॥
पूरण ब्रह्म बताय दियो जिनि एक अखंडित व्यापक सारै ।
रागरु दोष करैं अब कौन सौं जोइ है मूल सोइ सब डारै ॥
संशय सौक मिट्यौ मन कौ सब तत्व विचार कह्यौ निरधारै ।
सुंदर सुद्ध किए मल धोइ सु है गुरु को उर ध्यान हमारै ॥९॥
ज्यौं कपरा दरजी गहि ब्यौंतत काष्टहि कौं बढ़ई कसि आनैं ।
कंचन कौं जु सुनार कसै पुनि लोह को घाट लुहारहि जानैं ॥
पांहन कौं कसि लेत सिलावट पात्र कुम्हार के हाथ निपानैं ।
तैसैं हि शिष्य कसै गुरु देवजु सुंदरदास तबैं मन मानैं ॥१०॥

मनहर छंद ।

शत्रु ही न मित्र कोऊ जाकें सब हैं समान,
देह को ममत्व छांडे आतमा ही राम हैं ।
औरऊ उपाधि जाकैं कबहूं न देपियत,
सुख के समुद्र मैं रहत आठौं जाम हैं ॥
ऋद्धि अरु सिद्धि जाके हाथ जोरि आगे परी,
सुंदर कहत ताके सब ही गुलाम हैं ।
अधिक प्रशंसा हम कैसैं करि कहि सकैं,
ऐसे गुरु देव कौं हमारे जु प्रनाम हैं ॥ ११ ॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

---

१ मिथ्या । २ कसौटी पर धर कर, भला बुरा परख कर । ३ डौल, गढ़ने का ढंग । ४ बनें, छिप कर तैयार हो ।

काहू सौं न रोष काहू सौं न राग दोष,
काहू सौं न वैरभाव, काहू की न घात है।
काहू सौं न वकवाद काहू सौं नहीं विषाद,
काहू सौं न संग न तौ कोऊ पक्षपात है॥
काहू सौं न दुष्ट वैन काहू सौं न लैन दैन,
ब्रह्म कौ विचार कछु और न सुहात है।
सुंदर कहत सोई ईसनि कौ महा ईस,
सोई गुरु देव जाके दूसरी न वात है॥ १३ ॥
लोह कौं ज्यौं पारस पषान हू पलटि लेत,
कंचन छुवत होइ जग में प्रमानियें।
द्रुम कौं ज्यौं चंदनहुं पलटि लगाई वास,
आपुके समान ताके शीतलता आनियें॥
कीट कौं ज्यौं भ्रिंगहुं पलटि के करत भ्रिंग,
सोउ उड़ि जाइ तातौ अचिरज मानियें।
सुंदर कहत यह सगरै प्रसिद्ध वात,
सद्य शिष्य पलटै सुसद्य गुरु जानियें॥ १४ ॥
गुरू विन ज्ञान नाहीं गुरु विन ध्यान नाहीं,
गुरु विन आतमा विचार ना लहतु है।
गुरु बिन प्रेम नाहिं गुरु विन प्रीति नाहिं,
गुरु विन शीलहू संतोष ना गहतु है॥
गुरु विन प्यास[1] नाहिं वुद्धि कौ प्रकास नाहिं,
भ्रमहू कौ नाश नाहिं संशय रहतु है।

१ ज्ञान और मुक्ति की इच्छा, जिज्ञासुता—मुमुक्षता।

गुरु विन घाट नाहिं कौड़ी विन हाट नाहिं,
सुंदर प्रगट लोक वेद यौं कहतु है ॥ १५ ॥

पढ़े के न वैठो पास अषिर न वांचि सकै,
विनहि पढ़े तें कैसैं आवत है फारसी।
जौहरी के मिलें विन परष न जानै कोइ,
हाथ नग लियें फिरै संशै नहिं टारसी।
वैद न मिल्यौ कोऊ वूंटी को वताइ देत,
भेद विनु पायें वाके औषद है छारसी।
सुंदर कहत मुख रंचहूं न देष्यौ जाइ,
गुरु विन ज्ञान ज्यौं अंधेरे मांहिं आरसी ॥ १६ ॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

गुरु तात गुरु मात गुरु वंधु निज गात,
गुरु देव नखसिख सकल संवारयो है।
गुरु दिए दिव्य नैन गुरु दिए मुख वैन,
गुरु देव श्रवन दे सब्द हू उचारयौ है ॥
गुरु दिए हाथ पांव गुरु दियौ शीस भाव,
गुरु देव पिंड मांहि प्रान आइ डारयौ है।
सुंदर कहत गुरु देवजू कृपालु होइ,
फेरि घाट घरि करि मोहिं निसतार्‌यो है[२] ॥१९॥

❀ ❀ ❀ ❀

---

१ 'हाट घाट' और 'कौड़ी विन हाट' ये लोकश्रुतियां हैं। इसी प्रकार अनेक कहावतें और मुहाविरे "सवैया" ग्रंथ में हैं। २ जैसे द्विजातियों में द्विजन्मा होने का अर्थ है वैसे ही गुरु से शिष्यता में घटांतर होने में है। ज्ञान की दीक्षा से मनुष्य की कायापलट हो जाती है।

भूमि हू की रेनु की तो संख्या कोऊ कहत हैं,
भार हू अठारा द्रुम तिन के जो पात हैं।
मेघनि की संख्या सोऊ ऋषिनि कही विचारि,
बुंदनि की संख्या तेऊ आइकैं विलात हैं॥
तारनि की संख्या सोऊ कही है पुरान मांहिं,
रोमनि की संख्या पुंनि जितनेक गात हैं।
सुंदर जहां लौं जंत सब ही को होत अंत,
गुरु के अनंत गुन कापै कहे जात हैं॥२१॥

(गुरु की तौ महिमा अधिक है गोविंद तें)

गोविंद के किए जीव जात हैं रसातल कौं,
गुरु उपदेशे सु तौ छूटे जम फंद तें।
गोविंद के किए जीव बस परे कर्मनि के,
गुरु के निवाजे सो फिरत हैं स्वछंद तें॥
गोविंद के किए जीव बूड़त भौसागर में,
सुंदर कहत गुरु काढ़े दुख द्वंद तें।
और हू कहां लौं कछु मुख तें कहैं बनाइ,
गुरु की तौ महिमा अधिक है गोविंद तें॥२२॥

(ऐसी कौंन भेट गुरुदेव आगे राषिए)

चिंतामनि पारस कलपतरु काम धेनु,
औरऊ अनेक निधि वारि वारि नाषिए।
जोई कछु देषिए सु सकल विनासवंत,
बुद्धि मैं विचार करि वहु अभिलाषिए॥
तातैं अब मन वच क्रम करि कर जोरि,
सुंदर कहत सीस मेलिह दीनें भाषिए।

वहुत प्रकार तीनौं लोक सब सोधे हम,
ऐसी कौंन भेट गुरुदेव आगैं राषिए ॥२३॥

❀ ❀ ❀ ❀

जोगी जैन जंगम संन्यासी वनवासी वोध,
और कोऊ भेष पच्छ सब भ्रम भान्यौ[1] है।
तापस ऋषीसुर मनीसुर कवीसुर ऊ,
सबनि को मत देषि तत्त पहिचान्यौ है॥
वेदसार तंत्रसार समृति पुरान सार,
ग्रंथनि को सार सोई हृदै मांहिं आन्यौ[2] है।
सुंदर कहत कछु महिमा कही न जाइ,
ऐसो गुरुदेव दादू मेरे मन मान्यौ है ॥२६॥

---

(२) उपदेशचितावनी[3] को अंग।

हंसाल छंद ❀ (राम हरिराम हरि वोलि सूवा)

तौ[4] सही चतुर तूं जानैं[5] परवीन अति,
परैं जनि पिंजरे[6] मोह कूवा।

---

१ तोड़ा है, निवारण किया है। २ लाए हैं। ३ चिताने—चैतन्यता पहुंचानेवाला। कोई कोई चिंतामणि लिखते हैं सो अशुद्ध है।

❀ ३७ मात्रा का। २०+१७, २० पर यति। मात्रा छंद।

४ इसका संवंध—'चतुर तौ तू सही' (ठीक, खूब) परंतु जान (बूझ कर) 'पिंजरे मत परै'। ५ छापे की पुस्तकों में 'तूं जान' का 'सुजान' देकर पाठ भ्रष्ट कर दिया जिससे छंद भंग अलग हुआ। ६ किसी किसी प्रति में 'पंजरे' पाठ है सो शुद्धता में ठीक है।

पाइ उत्तम जनम लाइ[१] लै चपल मन,
गाइ गोविंद गुन जीति जूवा ।
आपु ही आपु अज्ञान नलिनी बंध्यौ,
बिना प्रभु विमुख कै बेर मूवा[२] ।
दास सुंदर कहै परम पद तौ[३] लहै,
राम हरि राम हरि बोलि सूवा ॥ १ ॥

(हक्क[४] तूं हक्क तूं बोलि तोता)

नफ्स[५] शैतान कौं आपुनी कैद करि,
क्या दुंनी मैं फिरै षाइ गोता ।
है गुनहगार[६] भी गुनह ही करत है,
षाइगा मार तब फिरै रोता ॥
जिन तुझे षाक सौं अजब पैदा किया,
तूं उसे क्यौं फरामोश[७] होता ।
दास सुंदर कहै सरम तब ही रहै,
हक्क तूं हक्क तूं बोलि तोता ॥ २ ॥

(भी तुही भी तुही बोलि तूती)

आब[८] की बूंद औजूद पैदा किया,
नैंन मुख नासिका करि संजूती[९] ।

---

१ पकड़ । २ मरा इस लिये फिर जनमा । ३ निश्चय ही जब तौ । सूए का नलिनी (नालिका) पर अपने पंजों से लटनका प्रसिद्ध है ।

४ हक्क = सत्य ईश्वर । 'हक्क तू' (हक्क तू) ऐसा शब्द तोतों को प्रायः मुसलमान पढ़ाते हैं । और 'भी तुही' 'नबीजी' आदि भी । ५ अहंकार रूपी शैतान (महाशत्रु) । ६ पापी ७ भूलना । ८ पानी । (वीर्य) । ९ संयुक्त । बनीठनी ।

ख्याल ऐसा करै उही लीए फिरै,
जागि कै देषि क्या करै सूती ॥
भूलि उस खसम कौं काम तैं क्या किया,
वेगि दै यादि करि मरि निपूती ।
दास सुंदर कहै सर्व सुख तौ लहै,
भी तुही भी तुही बोलि तूती ॥ ३ ॥

(एक तूं एक तूं बोलि मैंनां)

अव्वल उस्ताद के कदम की षाक हो,
हिरस तुगुंजार सब छोड़ि फैंनां ।
यार दिलदार दिल मांहि तूं याद कर
है तुझी पास तूं देषि नैंनां ॥
जांन का जांन है जिंद का जिंद है,
है सषुन का सषुन कछु समुझि सैंनां ।
दास सुंदर कहै सकल घट मैं रहै,
एक तूं एक तूं बोलि मैंनां ॥ ४ ॥

मनहर छंद ।

वार वार कह्यो तोहि सावधान क्यों न होहि,
ममता की मोठ सिर काहे कौं धरतु है ।

---

१ मालिक और पति स्त्री को उलाहना देने में कहा शब्द है गाली के बराबर तथा सत्य भी है कि ईश्वर से मालिक को भूली । २ हिर्स = कामना, इच्छा, लोभ । तुगुजार = छोड़ दे । ३ फेनापिंड = मिथ्या वस्तुओं को अथवा ग्रामीण भाषा में फेन = मिथ्या कर्म । ४ ज्ञानी—जानने वाला, जीव ५ जीव । मूल । ६ बात । भेद की बात ।

मेरौ धन मेरौ धाम मेरो सुत मेरी वाम,
मेरे पशु मेरौ ग्राम भूल्यो यों फिरतु है ॥
तूं तौ भयौ बावरौ विकाइ गई बुद्धि तेरी,
ऐसो अंध कूप गृह तामैं तूं परतु है ।
सुंदर कहत तोहि नक हूं न आवै लाज,
काज कौं विगारि कैं अकाज क्यौं करतु है ॥ ६ ॥
तेरै तौ कौं पेच पर्‌यौ गांठि अति घुरि गई,
ब्रह्मा आइ छोरै क्यौं हिं छूटत न जवहू ।
तेल सौं भिजोइ करि चीथरा लपट राषै,
कूकर की पूंछ सूधी होइ नहीं तव हू ॥
सासू देत सीष वहू कीरी कौं गनति जाइ,
कहत कहत दिन वीत गह्यौ सव हू ।
सुंदर अज्ञान ऐसौं छाड़्यो नहिं अभिमान,
निकसत प्रान लषै चल्यो नहिं कव हू ॥ ७ ॥
वालू मांहिं तेल नहिं निकसत काहू विधि,
पाथर न भीजै वहु वरषत घन[1] है ।
पानी के मथें तें कहुं घीव नाहिं पाइयत,
कूकस के कूटैं नहिं निकसत कन है ॥
सून्य कूं मूठी भरे तें हाथ न परत कछु,
ऊसर कैं वांहें कहां उपजत अन है ।
उपदेश औषध कवन विधि लागै ताहि,
सुंदर असाध्य रोग भयो जाके मन है ॥ ८ ॥

---

१ मेघ । वादल ।

चारू के मंदिर मांहिं बैठि रह्यौ थिर होइ,
राषत है जीवने की आसा केऊ दिन का।
पल पल छीजत घटत जात घरी घरी,
विनसत वार कहा षवरि न छिन की॥
करत उपाइ झूंठे लैन दैन षान पान,
मूसा इत उत फिरै ताकि रही मिनकी।
सुंदर कहत मेरी मेरी करि भूल्यौ सठ,
चंचल चपल माया भई किन किन की॥ १० ॥
घरी घरी घटत छीजत जात छिन छिन,
भीजत ही गरि जात माटी कौसौ ढेल है।
मुकति के द्वारे आई सावधान क्यौं न होहि,
वार वार चढ़त न त्रिया कौ सौ तेल है॥
करि लै सुकित हरि भजन अखंड उर,
याही मैं अंतरै परै यामैं ब्रह्म मेल है।
मनुष जनम यह जीति भावै हारि अब,
सुंदर कहत यामैं जुवा कौ सौ षेल है॥ १३ ॥
जोवन कौ गयौ राज और सब भयौ साज,
आपुनि दुहाई फेरि दमामो वजायौ है।
लकुटी हथ्यार लियें नैनन कौ ढालि दियें,
सेतवार भये ताकौ तंवू सौ तनायौ है॥

---

१ बिल्ली। २ मनुष्य देह पाकर। ३ ब्रह्म से दूरी। ४ अन्य मिस। ५ नकारा बजा चुका। ६ अंधा हो गया। आंख की ढकनी ढाल सी है सो ही ढाल हो गई। जैसे ढाल आगे आने से आगे कुछ नहीं दिखाई देता।

दसन गए सु मानौं दरवान दूर कीये,
जौंगरीं परी सु और विछौंना विछायौ है।
सीस कर कंपत सु सुंदर निकारयौ रिपु,
देषत ही देषत वुढ़ापौ दौरि आयौ है॥ १४ ॥

इंदव छंद ।

पाइ अमोलिक देह इहै नर क्यों न विचार करै दिल अंदर।
कामहु क्रोधहु लोभहु मोहहु लूटत हैं दसहूं दिस द्वंदर[2] ॥
तू अव वंछत है सुरलोकहि कालहु पाय परै सु पुरंदर।
छाड़ि कुवुद्धि सुवुद्धि हृदै धरि आतमराम भजै किन सुंदर[3] ॥१७॥
इंद्रिनि के सुख मानत है सठ या हित ते वहुतै दुख पावै।
ज्यौं जल मैं झष मांसहि लीलत स्वाद वध्यौ जल वाहरि आवै॥
ज्यौं कपि मूठि नँ छाड़त है रसना वसि वंदि पर्‍यो विललावै।
सुंदर क्यौं पहिले न संभारत जो गुर षाइ सु कान विंधावै ॥१८॥
देषत के नर दीसत है परि लच्छन तो पशु के सव ही है।
वोलत चालत पीवत षात सुवै घर वै वन जात सही है॥
प्रात गए रजनी फिरि आवत सुंदर यौं नित भारवही है।
और तो लच्छन आइ मिले सव एक कमी सिरसिंग नहीं है॥२१॥

---

१ जुरी, लुरी, वुढ़ापे से सिमटी खाल। २ दुंद मचा कर। 'अंदर' अनुप्रास मानैं तो 'सुंदर' को 'स्वंदर' पढ़ैं। ३ इसमें आठ भगण (ऽ॥) होने से २४ अक्षर का किरीट सवैया है, इंदव नहीं। आगे १८ आदि संख्या के छंद इंदव ही हैं। ४ मटकी में खाने में लालच से वंदर ने हाथ डाला कि फंदे में हाथ फंस गया। (देखो 'पंचेंद्रिय चरित्र' का उपदेश ३)।

तूं ठगि कैं धन और को ल्यावत तेरेउ तौ घर औरइ फोरै ।
आगि लगै सब ही जरि जाय सु तू दमरी दमरी करि जोरै ॥
हाकिम कौ डर नाहिन सूझत सुंदर एकहि बार निचोरै ।
तू परचै नहिं आपुन पाइसु तेरिहि चातुरि तोहि ले बोरै ॥२५॥

मनहर छंद ।

करत प्रपंच इनि पंचनि कै वस पर्यौ,
परदारा रत भै[1] न आनत बुराई कौ ।
परधन हरै परजीव की करत घात,
मद्य मांस षाइ लव लेश न भलाई कौ ॥
होइगौ हिसाब तब मुख तैं न आवै ज्वाब,
सुंदर कहत लेषा लेत राई राई कौ ।
इहां तो किये विलास जमकी न तोहि त्रास,
उहां तौ न हुैहै कछु राज पोपांबाई कौ ॥ २६ ॥
दुनिया को दौरता है औरति कौ ढौरता है,
औजूद को भोरता है वटोही सराइ का ।
मुरगी कौ मोसता है बकरी कौ रोसता है,
गरीब कौ पोसता है बेमिहर्र गाइ का ।
जुलम कौ करता है धनी सौं न डरता है,
दोजप कौ भरता है पजाना षलाइ का ।

---

१ यहां ह्रस्व के लक्षणानुसार ह्रस्व वर्ण होना था परंतु सुंदरदास जी प्रायः गण नियम नहीं निबाहते । २ भय, डर । ३ पोपका राज । ४ कहता है । ५ शरीर, काया । ६ संसार रूपी सरॉय का मुसाफिर । ७ मार खाता है । ८ शत्रु ।

होइगा हिसाब तब आवैगा न ज्वाब कछु,
सुंदर कहत गुन्हगार है षुदाइ का ॥ २७ ॥
कर कर आयौ जब षर षर काट्यो नारै,
भर भर बाज्यौ ढोल घर घर जान्यौ है।
दर दर दौर्यौ जाइ नर नर आगे दीन,
वर वर बकत न नैंक अलसान्यौ है॥
सर सर सोधै धन तर तर तोरै पातै,
जर जर काटत अधिक मोद मान्यो है।
फर फर फूल्यौ फिरै डर हरपै न मूढ़,
हर हर हँसत न सुंदर सकान्यौ है॥ २८ ॥
जनम सिरानौ जाय भजन विमुख सठ,
काहे कौं भवनँ कूप बिन मीच मरिहै।
गहत अविद्या जानि शुक नलिनी ज्यौं मूढ़,
करम विकरम करत नहिं डरिहै ॥
आपुहि तैं जात अंध नरकनि वार वार,
अजहूं न शंक मन मांहि अब करिहै।
दुख कौ समूह अवलोकि कै न त्रास होइ,
सुंदर कहत नर नागपासि परिहै ॥ २९ ॥

---

१ पूर्व जन्म के कर्म कर के यहां जन्म लिया। २ नाग (बच्चे की नाभि का नाल) काटा अर्थात् सब जन्मक्रिया हुई। ३ जैसे रोंख से पत्ता तोड़ कर भरोटा बनाया जाता है। ४ बीता जाता है। ५ घर—शरीर वा संसार। ६ यह छंद चित्रकाव्य की रीति में नागबंध रूप में आता है। लिखित प्राचीन पुस्तक में सुंदरदास जी ने

(३) काल चितावनी को अंग ।

इंदव छंद ।

तैं दिन चारि विराम लियौ सठ
तेरे कहैं कछु व्हैगइ तेरी ॥
जैसहिं बाप ददा गये छांडि सु
तैसहिं तूं तजि है पल फेरी ॥
मारिहै काल चपेटि अचानक
होइ घरीक मैं राप की ढेरी ॥
सुंदर लैन चलै कछु संग सु
भूलि कहै नर मेरि हि मेरी ॥ ३ ॥

कै यह देह जराइ कैं छार किया
कि किया कि किया कि किया है ॥
कै यह देह जिमीं महिं षोदि दिया
कि दिया कि दिया कि दिया है ॥
कै यह देह रहै दिन चारि जिया
कि जिया कि जिया कि जिया है ॥
सुंदर काल अचानक आइ लिया
कि लिया कि लिया कि लिया है ॥ ४ ॥

अपने हाथ से यह चित्र बनाया है। इसी से यहाँ भी दिया है। नाग पाश प्राचीन काल में एक महा अस्त्र होता था जिससे बड़े बड़े योद्धा बांधे जाते थे। यह संसार भी वैसा ही बंधन है। १ क्रिया की पुनरुक्ति कालक्रम और एक निश्चय के दिखाने को है।

तू कछु और विचारत है नर तेरौ विचार धर्‌यो हि रहैगौ ।
कोटि उपाय करै धन के हित भाग लिख्यौ तितनौहि लहैगौ ॥
भोर कि सांझ घडी पल मांझ सु काल अचानक आइ गहैगौ ।
राम भज्यौ न कियौ कछु सुकृत सुंदर यौं पछिताइ कहैगौ ॥ ७ ॥
सोइ रह्यौ कहा गाफिल ह्वैकरि तौ सिर ऊपर काल दहारै[1] ।
धामस धूमस लागि रह्यौ सठ आय अचानक तोहि पछारै ॥
ज्यौं वन मैं मृग कूदत फांदत चित्रक[2] लै नख सौं उर फारै ।
सुंदर काल डरै जिहिं कै डर ता प्रभु कौं कहि क्यों न सँभारै ॥ १० ॥

मनहर छंद ।

करत करत धंध कछुव न जानैं अंध,
आवत निकट दिन आगिलौ चपाकि दै[3] ।
जैसै बाज तीतर कौं दाबत अचानचक,
जैसै वक मछरी कौं लीलत लपाकि दै[4] ॥
जैसै मक्षिका की घात मकरि करत आइ,
जैसै सांप मूषक कौं ग्रसत गपाकि दै[5] ।
चेत रे अचेत नर सुंदर सँभारि राम,
ऐसैं तोहि काल आइ लेइगो टपाकि दै[6] ॥ १४ ॥
मेरौ देह मेरौ गेह मेरौ परिवार सब,

---

१ गर्जना करै । २ चीता । ३ झट—अचानक बिजली की नाईं । 'दै' शब्द रजवाडी भाषा में क्रियाविशेषण होता है जिसका अर्थ 'कर के' होता है । इसका दूसरा रूप 'देनी' भी होता है जैसे 'झटदेंणी' । ४ झप से निगले । ५ एक सपट्टे में ग्रास कर ले । ६ चट उठा लेगा यह अभिप्राय है ।

मेरौ धन माल मैं तो बहु विध भारौ हौं[1]।
मेरे सब सेवक हुकम कोऊ मेटै नाहिं,
मेरी जुवती कौ मैं तो अधिक पियारो हौं।
मेरौ वंस ऊंचौं मेरे बाप दादा ऐसे भये,
करत बड़ाई मैं तौ जगत उजारौ हौं।
सुंदर कहत मेरौ मेरौ कर जानैं सठ,
ऐसे नहिं जानैं मैं तो कालही को चारौ हौं ॥ १५ ॥

ऊठत बैठत काल जागत सोवत काल,
चलत फिरत काल काल बौर घस्यौ है।
कहत सुनत काल पावहू पिवत काल,
काल ही के गाल महिं हर हर हँस्यौ है ॥
तात मात बंधु काल सुत दारा गृह काल,
सकल कुटंब काल कालजाल फस्यौ है।
सुंदर कहत एक राम बिन सब काल,
काल ही को कृत कियौ अंत काल ग्रस्यौ है ॥ १७ ॥

बरषा भये तें जैसें बोलत भँभोरी सुर,
पँडन परत कहुं नेक हूं न जानिये।
जैसें पूंगी बाजत अखंड सुर होत पुनि,
ताहू मैं न अंतर अनेक राग गानिये।

---

१ 'हूं' को कहीं कहीं 'हौं' भी लिखा है। 'हौं' का अर्थ 'मैं' भी है। २ कर्म—रचना। ३ खाया। काल ही करता है, वही मारता है। ४ झींगरी, झिल्ली। ५ ठहराव।

जैसैं कोऊ गुंडी कौं चढावत गगन माहिं,
ताहू की तौ धुनि सुनि वैसे ही वषानियें।
सुंदर कहत तैसैं काल कौ प्रचंड वेग,
रात[3] दिन चल्यौ जाइ अचिरज मानियें ॥ २१ ॥

झूठे हाथी झूठे घोरा झूठे आगै झूठा दोरा,
झूठा बंध्या झूठा छोरा[4] झूठा राजा रानी है।
झूठी काया झूठी माया झूठा झूठे धंधै लाया,
झूठा मूवा झूठा जाया झूठी याकी बानी है ॥
झूठा सोवै झूठा जागै झूठा जूझै झूठा भागै,
झूठा पीछै झूठा लाँगै झूठे झूठी मानी है।
झूठा लीया झूठा दीया झूठा षाया झूठा पीया,
झूठा सौदा झूठै कीया ऐसा झूठा प्रानी है *॥ २५ ॥

झूठ सौ बंध्यौ है लाल[6] ताही तैं ग्रसत काल,
काल विकराल व्याल सब ही कौं षात है।
नदी कौ प्रवाह चल्यौ जात है समुद्र माहिं,
तैसैं जग काल ही के मुख मैं समात है[7] ॥

---

१ कनकव्वा। डुगडा जिसको घूंघरू बाँध कर रात को चराग सहित चढा देते हैं। २ लगातार शब्द होना। ३ रात दिन ही मानों काले धौले संकेतद्योतक हैं। भागवत में इनको काले धोले चूहे कर आयु काटने के कारण कहा है। ४ छोरा—मुक्त किया। मुक्ति भी मिथ्या भ्रम है। ५ पीछा करै, अनुसरे। ६ प्यारा, पुत्र। ७ गीता में विराट् स्वरूप के वर्णन में "यथा नदीनां बहवुवेगाः" इत्यादि है।

* यह छंद सर्व दीर्घाक्षरी है जो चित्र काव्य का एक रूप है।

देह कौं महत्व तातैं काल कौ भै मानत है,
ज्ञान उपजें तें वह काल हू विलात है।
सुंदर कहत परब्रह्म है सदा अखंड,
आदि मध्य अंत एक सोई ठहरात है ॥ २६ ॥

इंदव छंद।

काल उपावत काल षपावंत काल मिलावत है गहि माटी।
काल इलावत काल चलावत काल सिषावत है सब आंटी ॥
काल बुलावंत काल भुलावंत काल डुलावंत है वन घाटी।
सुंदर काल मिटै तब ही पुनि ब्रह्म विचार पढ़ै जब पाटी ॥२७॥

---

(४) देहात्मा बिछोह को अंग।

इंदव छंद।

मात पिता जुवती सुत बांधव लागत है सबकौं अति प्यारौ।
लोग कुटंब घरौ हित राषत होइ नहीं हमतैं कहुं न्यारौ ॥
देह सनेह तहां लग जानहु बोलत है मुख शब्द उचारौ ॥
सुंदर चेतनि शक्ति गई जब बेग कहै घर मांहि निकारौ ॥३॥

---

१ ज्ञान की उत्पत्ति से काई भय नहीं। २ दिक् का अभाव। ३ उपजाता है, बनाता है। ४ नष्ट करता है, लय करता है। ५ चतुराइयां, चक्कर। ६ खेंचता है। ७ आदि सत्य अवस्था का विस्मरण करा देता है। ८ कर्म के फेर में डाल कर इतस्ततः ले जाता है। ९ जैसे चटशाल में बालक पढ़े वैसे बाल्यावस्था से ही पढ़े। १० मांहि से बाहर।

मनहर छंद ।

कौन भांति करतार कीयौ है शरीर यह
पावक के मध्य देषौ पानी कौ जमावनौं ।
नासिका श्रवन नैन वदन रसन वैन
हाथ पांव अंग नख शिख कौ वनावनौं ॥
अजव अनूप रूप चमक दमक ऊप
सुंदर सोभित अति अधिक सुहावनौं ।
जाही क्षन चेतना शकति जव लीन होइ ।
ताही क्षन लगत सवनि कौं अभावनौं ॥ ५ ॥
रज अरु वीरज कौ प्रथम संयोग भयौ,
चेतना शकति तव कौन भांति आई है ।
कोऊ एक कहै वीज मध्य ही कियौ प्रवेश,
किनहूंक पंचमास पीछे कै सुनाई है ॥
देह कौ विजोग जव देपत ही होइ गयौ,
तव कोऊ कहौ कहां जाइकै समाई है ।
पंडित ऋषीस्वर तपीस्वर मुनीस्वरऊ ।
सुंदर कहत यह किनहू न पाई है[3] ॥ ९ ॥
देह तौ सुरूप तौलौं जौलौं है अरूप माहिं ।
सव कोऊ आदर करत सनमान है ।
टेढी पाग वाँधि वार वार ही मरोरै मूंछ ।

---

१ जठराग्नि में विंदु का बदला और शरीर बनना । २ ओप—चमक वा शोभा । ३ यह विषय कैसा विचार करने के योग्य है सो पाठक स्वयं ध्यान दें ।

बांह मुसकारै अति धरत गुमान है ॥
देस देस ही के लोग आइकैं हजूर होहिं ।
बैठ कर तषत कहावै सुलतान है ।
सुंदर कहत जब चेतना सकति गई ।
वहै देह ताकी कोऊ मानत न आनं है ॥११॥

---

(५) तृष्णा को अंग ।

इंदव छंद ।

नैननि की पलही पल मैं क्षण आध घरी घटिका जु गई है ।
जाम गयौ जुग जाम गयौ पुनि सांझ गई तब राति भई है ॥
आज गई अरु कालिह गई परसौं तरसौं कछु और ठई है ।
सुंदर ऐसैं हिं आयु गई तृष्णा दिनही दिन होत नई है ॥ १ ॥

दुमिला छंद[3]

कनहीं कन कौं बिललात फिरै सठ जाचत है जनही जन कौं ।
तनही तन कौ अति सोच करै नर षात रहै अनही अन कौं ॥
मन ही मन की तृष्णा* न मिटी पुनि धावत है धन ही धन कौं ।
छिन ही छिन सुंदर आयु घटी कबहूं न गयौ बन ही बन कौं[4] ॥ २ ॥

इंदव छंद ।

लाप करोरि अरब्ब परब्बनि नीलि पदम्म तहां लग षाटी ।
जोरिहि जोरि भंडार भरे सब और रही सु जिमीं तर दाटी[5] ॥

---

१ उकसावै, कुछ कुछ उठावै फिर मरोरै । २ सौगंद, आतंक ।
३ यह गणछंद २४ अक्षर का है जिसमें ८ सगण (।।ऽ) होते हैं । ४ इसमें से चिन्ह बनता है । ५ पृथ्वी में गाड़ दी ।

* छंद के नियम से 'तृसना' पढ़ना चाहिए ।

तौंहु न तोहि संतोष भयौ सठ सुंदर तैं तृष्णा नहिं काटी ।
सूझत नाहिंन काल सदा सिर मारि कैं थाप मिलाइहै माटी ॥४॥
भूष नचावत रंकहि राजहि भूप नचाइ कैं विश्व विगोई ।
भूष नचावत इंद्र सुरासुर और अनेक जहां लग जोई ॥
भूष नचावत है अध ऊरध तीनहुं लोक गनै कहा कोई ।
सुंदर जाइ तहां दुख ही दुख ज्ञान विना न कहूं सुख होई ॥६॥

(हे तृसना कहि कै तुहि थाक्यौ)

तैं कछु कान धरी नहिं एकहु बोलत बोलत पेटहि पाक्यौ ।
हौं कोउ बात बनाइ कहूं जब तैं सब पीसत ही सब फाक्यौ[१] ॥
केतक द्यौंस भये परमोधत[२] तैं अब आगहिं[३] कौं रथ हांक्यौ[४] ।
सुंदर सीष गई सब ही चलि तृसना कहि कैं तुहि थाक्यौ ॥१२॥

---

(६) अधीर्य उराहने को अंग ।

[उपनिषदों में ऐसा वर्णन आया है कि सृष्टि के आदि, अंत और मध्य तीनों में क्षुधा प्रधान है । तृष्णा भी उसी क्षुधा का अंग है । सर्वभक्षक, सर्वव्यापक अग्नि भी विराट विश्व की भूख ही कही जाती है, सब भूतव्यापिनी यह क्षुधा जीवों को कर्मों में प्रेरणा करती रहती है । इष्ट, भोज्य और अभिलषित पदार्थों के न मिलने से

---

१ 'पीसते फाकना' मुहावरा है । काम के होने से पहले ही उतावलापन कर काम बिगाड़ना । २ प्रबोधन करते, समझाते । ३ आगे को ही । ४ रथ हांकना, मुहावरा है । जैसे रथ में बैठनेवाला किसी की प्रतीक्षा न कर अभिमान से आगे चला जाता है । यहाँ तृष्णा की वृद्धि से प्रयोजन है ।

प्राणियों को अधीरता होती है विशेष करके उत्कट क्षुधा जब व्याप्त होती है उस समय धीरों का भी धैर्य छूट जाता है। इस क्षुधा का प्रधान स्थान पेट है, यह पेट पापी जो कुछ नाच नचाता है नाचना पड़ता है। राजा, रंक, ज्ञानी, ध्यानी, पंडित, मूर्ख, आबाल वृद्ध सब इसके वशीभूत हैं। इसी पेट की महिमा को अथवा तज्जनित अधैर्य की व्यवस्था को महात्मा सुंदरदास जी ने सुललित शब्दावरण में द्वादश छंदों में वर्णन किया है। इस अंग को "पेट का अंग" भी कहा जाता तो ठीक होता। इस पेट की विपत्ति से उकता कर मनुष्य कभी कभी परमेश्वर को भी उपालम्भ देने लग जाता है और अपनी प्रारब्ध को भी कोसता है। ऐसी बातों को भी चोज भरे वाक्यों में ग्रंथकर्ता ने लिखा है।

इंदव छंद।

पाव दिये चलनै फिरनै कहुं हाथ दियै हरि कृत्य करायौ।
कान दिये सुनिये हरि कौ जस नैन दिये तिनि माग दिपायौ॥
नाक दियौ मुख सोभत ताकरि जीभ दई हरि कौ गुन गायौ।
सुंदर साज दियौ परमेश्वर पेट दियौ परि पाप लगायौ॥१॥
कूप भरै अरु वापि[1] भरै पुनि ताल भरै वरषा रितु तीनौं।
कोठि भरै घट माट भरै घर हाट भरै सब ही भर लीनौं॥
पंदक[2] पास उषारि भरै पर पेट भरै न बड़ौ दर दीनौं।
सुंदर रीतुई[3] रीतु रहै यह कौन पढा परमेश्वर दीनौं॥२॥

मनहरन छंद।

किधौं पेट चूल्हा किधौं भाटो किधौं भार आहि,

1 बावली। 2 दर दर दीन करनेवाला। 3 रीता।

जोई कछु झोंकिये सु सब जरिजातु है ।
किधौं पेट थल किधौं वावी किधौं सागर है,
जितौ जल परै तितौ सकल समातु है ॥
किधौं पेट दैत्य किधौं भूत प्रेत राक्षस है,
षावुं पावुं करै कहूं नैकु न अघातु है ।
सुंदर कहत प्रभु कौन पाप लायौ पेट,
जब तैं जनम भयौ तब ही कौं पातु है ॥ ३ ॥
पाजी[1] पेट काज कोतवाल कौं अधीन होत,
कोतवाल सु तौ सिकदार आगें लीन है ।
सिकदार दीवान कें पीछे लग्यौ डोलै पुनि,
दीवान हूं जाइ पातिसाह आगें दीन है ॥
पातसाहि कहै या पुदाइ मुझे और देइ,
पेट ही पसारै नहिं पेट वसि कीन है ।
सुंदर कहत प्रभु क्यौ हुं नाहिं भरै पेट,
एक पेट काज एक एक कौ अधीन है ॥ ५ ॥

इंद्व छंद ।

पेटहि कारन जीव हतै वहु पेटहिं मांस भषैरु सुरापी[2] ।
पेटहि लैकर चोरि करावत पेटहि कौं गठरी गहि कांपी[3] ॥
पेटहि पांसि गरे महिं डारत पेटहि डारत कूपहु वापी ।
सुंदर काहि को पेट दियो प्रभु पेट सो और नहीं कोउ पापी ॥ ९ ॥
औरन कौं प्रभु पेट दियौ तुम तेरे तौ पैट कहू नाहिं दीसै ।
ये भटकाइ दिये दशहूं दिशि कोउक रांधत कोउक पीसै ॥

---

१ पयादा । २ सुरा पीनेवाला होता है । ३ काटी ।

पेटहि कारनि नाचत हैं सब ज्यौं घर हि घर नाचत कीसै[१]।
सुंदर आपु न षाहु न पीवहु कौंन करी इनि ऊपर रीसै[२] ॥१०॥

मनहर छंद।

काहे कौं काहू कै आगै जाइ कै अधीन होइ,
दीन दीन वचन उचार मुख कहते।
जिनि कै तौ मद अरु गरव गुमान अति,
तिनि कै कठोर बैन कबहूं न सहते॥
तुम्हारेई भजन सौं अधिक लैलीन अति,
सकल कौं त्यागि कैं एकंत जाइ गहते।
सुंदर कहत यह तुमहीं लगायौ पाप,
पेट न हुतौ तौ प्रभु बैठि हम रहते॥११॥

---

(७) विश्वास को अंग।

[उपरोक्त अंग में अधैर्य और पेट की पुकार से मानों एक प्रकार अविश्वास की नकल दीख पड़ती है, इस के साथ ही ग्रंथकर्ता ने विश्वास का अंग जुटा दिया है जिसमें जगद्भर्ता की पोषणशक्ति और उसके अद्भुत प्रबंध को दिखाया है कि वह ईश्वर ऐसा शक्तिमान् है कि जीव की उत्पत्ति के साथ ही उसके पालन पोषण का प्रबंध कर देता है। जिसको चोंच देता है उसको चून भी देता है, जिसका जैसा आहार है उसको वैसा ही पहुँचता है; कीड़ी को कण और हाथी को मण। कोई भी जंतु जीव भूखा रह कर नहीं

---

१ बंदर। २ कोप।

होता, ईश्वर सब को पहुँचाता है। इसलिये उस पर विश्वास रखना चाहिए और वृथा पेट की पुकार नहीं करनी चाहिए।]

इंदव छंद।

होहि निश्चिंत करै मति चिंतहि चंच दई सोहि चिंत करैगो।
पांव पसारि पर्‌यौ किन सोवत पेट दियौ सोइ पेट भरैगो॥
जीव जिते जल के थल के पुनि पाहन मैं पहुंचाइ धरैगौ।
भूषहि भूष पुकारत है नर सुंदर तूं कहा भूष मरैगो॥१॥
धीरज धारि विचार निरंतर तोहि रच्यौ सु तौ आपुहि ऐहै[1]।
जेतक भूष लगी घट प्राणहि तेतक तू अनयासहि पैहै[2]॥
जौ मन मैं तृसना करि धावत तौ तिहुं लोक न पात अघैहै[3]।
सुंदर तू मति सोच करै कछु चंच दई सोई चूंनिहु दैहै॥२॥

मनहर छंद।

काहे कौ वयूँरा[4] भयौ फिरत अज्ञानी नर,
तेरौ तो रिजक तेरै घर वैठैं आइहै।
भावै तूं सुमेरु जाहि भावै जाहि मारूदेश,
जितनौक भाग लिष्यौ तितनौ हि पाइहै॥
कूप मांझ भरि भावै सागर कै तीर भरि,
जितनौक भांडौ नीर तितनौ समाइहै।
ताहिलै संतोष करि सुंदर विश्वास धरि,
जितनौ रच्यौ है घट सोइ जु भराइहै*॥ ८॥

---

१ आ जायगा या आ जाता है। २ पायगा। ३ तृप्त होगा या होता है। ४ पवन का बबूला।

* पाठांतर—'भमराई'।

देषि धौं सकल विश्व भरत भरनहार,
चूंच कै समान चूनि सबहि कौ देत है।
कीट पशु पंषी अजगर मच्छ कच्छ पुनि,
उनकै न सौदा कोउ न तौ कछु षेत है॥
पेटहि के काज राति दिवस भ्रमत सठ,
मैं तो जान्यौ नीकै करि तू तौ कोउ प्रेत है।
मानुष शरीर पाइ करत है हाइ हाइ,
सुंदर कहत नर तेरै सिर रेत है॥११॥

---

(८) देहमालिनता गर्वप्रहार का अंग।

[इस क्षणभंगुर काया के स्थूलांश के गुणों से गर्वित होनेवाले अदरशों के उपदेश निमित्त यह चेतावनी है। इस देह में अनेक मल भरे हैं। हाड़ मांस रक्त, कफ, आदि मल से पूरित रहते हैं तिस पर भी लोग ऐंठते और गर्व में भरे रहकर ईश्वर और सुकार्यों को भूले रहते हैं सो ही दुःख का कारण होता है।]

मनहर छंद।

देह तौ मलीन अति बहुत बिकार भरे,
ताहू माहिं जरा व्याधि सब दुःख रासी है।
कबहूंक पेट पीर कबहूंक सिरबाहि[3],
कबहूंक आंखि कान मुख मैं बिथासी है॥

---

१ तू देख तो सही, क्या तू नहीं देखता। २ धूल, मिट्टी क्योंकि मनुष्य हो कर पशुओं से भी हीन दशा को असंतोष से पहुंच गया। ३ 'सरवाय'—सिरःपीड़ा।

औरऊ अनेक रोग नख सिख पूरि रहे,
कबहूंक स्वास चलै कबहूंक षांसी है।
ऐसौ या शरीर ताहि आपनौं के[1] मानत है,
सुंदर कहत यामैं कौन सुखवासी है ॥ १ ॥
जा शरीर माहिं तूं अनेक सुख मानि रह्यौ,
ताहि तूं विचारि यामैं कौन बात भली है।
मेद मज्जा मांस रग रगनि माहीं रकत,
पेटहू पिटारीसी मैं ठौर ठौर मली है ॥
हाड़नि सौं मुख भर्‌यौ हाड़ ही के नैन नांक,
हाथ पांव सोऊ सब हाड़ ही की नली है।
सुंदर कहत याहि देषि जनि भूलै कोइ,
भीतर भंगारै[2] भरी ऊपर तैं कली[3] है ॥ २ ॥

---

(९) नारीनिंदा को अंग।

[निज स्थूल देह के अभिमान में तो मनुष्य मरे सो भरे यह अन्य शरीर अर्थात् नारी के रूप रंग से भी विवश हो जाता है क्योंकि यह इस बात को भूला हुआ है कि नारी का शरीर भी तो वही मलिन पदार्थों का संघट है, उपरांत वह मोहपाश में बद्ध और काम बाण से विद्ध हो कर इस लोक और परलोक दोनों को बिगाड़ती है। परमार्थ तत्व के अर्थियों को नारीरूपी विघ्न से सदा बचना ही हितकारी है, यह इस लोक में नरक वर्ग-साधक और अपवर्ग बाधक शत्रु है। इस अंग के छंद बड़े ही रोचक और प्रसिद्ध हैं।]

---

१ कैसे, क्या, क्यों कर। २ टूटी चीजें, कूड़ा कर्कट। ३ कलई, रांगे वा सफेदी की पुताई।

मनहर छंद ।

कामिनि को तन * मानो कहिये सघन वन
तहां कोऊ जाइ सु तो भूलिकैं परतु है ।
कुंजर है गति कटि केहरी को भय जामैं
वेनी काली नागनीऊ फन कौं धरतु है ।
कुच हैं पहार जहां काम चौर रहै तहां
साधिकैं कटाक्ष बान प्रान कौं हरतु है ।
सुंदर कहत एक और डर अति तामैं
राक्षस वदन पांउ पांउ ही करतु है ॥ १ ॥

विष ही की भूमि मांहि विष के अंकूर भये
नारी विष वेलि बढ़ी नख सिख देखिये ।
विष ही के जर मूर विष ही के डार पात
विष ही के फूल फर लागे जू विशेषिये ॥
विष के तंतू पसारि उरझाये आंटी मारि[1]
सब नर वृक्ष पर लपटी ही लेषिये ।
सुंदर कहत कोऊ संत तरु बंचि गये
तिनकै तो कहूं लता लागी नहिं पेषिये ॥ २ ॥

---

* पाठांतर—देह ।

१ कटाक्ष हावभाव आदि तंतू फैंका कर, वल्लरी के समान, माया जाल में फँसा वा लपेट कर। आंटी=पेंच, लपेट। मारि=डाल कर

रसग्रंथों की निंदा । कुंडलिया छंद ।

रसिकप्रिया[1] रसमंजरी[2] और सिंगार[3] हि जानि ।
चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आँनि ॥
विषै बनाई आनि लगत विषयिनि कौं प्यारी ।
जागै मदन प्रचंड सराहैं नखसिख नारी ॥
ज्यौं रोगी मिष्टान्न पाइ रोगहि विस्तारै ।
सुंदर यंह गति होइ जु तौ रसिक प्रिया धारै ॥ ५ ॥

---

(१०) दुष्ट को अंग ।

मनहर छंद ।

आपने न दोष देषै पर के औगुन पेषै
दुष्ट को सुभाव उठि निंदाई करतु है ।
जैसे काहू महल सँवार राष्यौ नीकें करि
कीरी तहां जाइ छिद्र ढूंढत फिरतु है ।
भोर ही तें सांझ लग सांझ ही तें भोर लग
सुंदर कहतु दिन ऐसें ही भरतु[6] है ।

---

१ केशवदासकृत (नायका भेद का) रसिक प्रिया ग्रंथ। २ संस्कृत में नायका भेद का ग्रंथ। इसी का अनुवाद 'सुंदर श्रृंगार' ग्रंथ है। ३ सुंदर कवि आगरेवाले ने 'रसमंजरी' संस्कृत का छंदोबद्ध अनुवाद सं० १६८८ में किया था। ४ लाकर वा मर्यादा। ५ 'नखशिख' काव्य-लक्ष्य किस पर था, यह विदित नहीं है, किसी का नाम नहीं दिया है। ६ पूरा करता है–बिताता है।

पाव के तरोस की न सूझै आगि मूरष कौं
और सौं कहतु सिर ऊपर वरतु है ॥ १ ॥

इंदव छंद।

घात अनेक रहे उर अंतर दुष्ट कहै मुष सौं अति मिठी।
लोटत पोटत ब्योंम हि ज्यौं नित ताकत है पुनि ताहि की पीठी॥
ऊपर तें छिरकै जल आनि सु हेठें लगावत जारि अंगीठी।
या महिं कूर कछू मति जानहु सुंदर आपुनि आंषिनि दीठी ॥ २ ॥
आपुने काज संवारन के हित और कौ काज विगारत जाई।
आपुनौ कारज होउ न होउ बुरौ करि और को डारत भाई॥
आपुहु षोवत औरहु षोवत षोइ दुवौं घर देत वहाई।
सुंदर देषत ही वनि आवत दुष्ट करै नहिं कौन बुराई ॥ ३ ॥
सर्प डसै सुन ही कछु तालक वीछु लगै सु भलौ करि मानौं।
सिंह हु षाइ तौ नाहिं कछू डर जौ गज मारत तौ नहिं हानौं॥
आगि जरौ जल बूडि मरौ गिरि जाय गिरौ कछु भै मति आनौं।
सुंदर और भले सबही दुख दुर्जन संग भलौ जनि जानौं ॥ ५ ॥

---

(११) मन को अंग।

[मन का स्वभाव, मन का वेग, मन का बल, मन की चंचलता तथा मन के अवगुण, और फिर मन के गुण इस प्रकार बुराई भलाई सब अंशों का वर्णन २६ छंदों में हुआ है। यह मन वह पदार्थ है जिसके वर्णन में बड़े बड़े शास्त्र लिखे गए हैं, जिसके निरोध और वश

---

१ घीता। २ नीचे। ३ तअल्लुक का अपभ्रंश—संसर्ग। चिंता।

करने के उपायों के विषय में राजयोग हठयोगादि अनेक सिद्धांत विद्यमान हैं, जिसकी बुराई है तो इतनी है कि जानने से इसीको अति निकृष्ट प्रमाणित किया है और जिसकी भलाई है तो इतनी है कि इस ही को ब्रह्म रूप बता दिया है। मन संबंधी विज्ञान और दर्शन शास्त्र इस संसार में अति विस्तृत है। यह आंतरिक सूक्ष्म शक्ति का समुदाय है अथवा एक ही शक्ति अनेक गुण या वृत्ति वा शक्तिविशेष रखती है। यह अंतरवर्ती और बहिवर्ती एक ही है वा भिन्न है। बाहरी पदार्थों से ज्ञान उत्पन्न वा प्राप्त होता है वा सर्व बहिर्व्यापी सृष्टि केवल अंतर्व्यापी पदार्थ का ही कार्य्य वा अभास मात्र है। मन, बुद्धि, चित्त अहंकार इस प्रकार चार भिन्न भिन्न पदार्थ हैं अथवा ये सब एक ही हैं केवल इनके व्यापार ही एक शक्ति को चार रूप में बर्तते हैं इत्यादि अनेक विचारबाहुल्य शास्त्रों और विद्वानों में विविध रूप से चल रहे हैं। सुंदरदास जी के इन छंदों में इसी बड़ी शक्ति-मन-की कुछ बातें आई हैं। सुंदरदास जी का वचन कल्पवृक्ष के समान है, अधिकारी की वृत्ति और रुचि और योग्यता के अनुसार अर्थ दे देता है। साधारण कोटि के स्त्री बालक अपढ़ लोगों को भी एक प्रकार का आनंद मिलेगा तो पठित और रसादि-व्यवसायी को एक बिलक्षण ही रस प्राप्त होगा, एवम् उच्चतम ज्ञानकोटि के विचारशाली और ज्ञाननिष्ठ अंतर्दृष्टा को एक अनिर्वचनीय आनंद प्राप्त होगा। यही महात्माओं के वचन का लक्षण होता है।]

मनहर छंद।

हटकि हटकि मन राषत जु छिन छिन
सटकि सटकि चहुं ओर अब जात है।

लटकि लटकि ललचाइ लोल बार बार
गटकि गटकि करि विष फल पात है ॥
झटकि झटकि तार तोरत करम हीन
भटकि भटकि कहुं नैकु न अघात है ।
पटकि पटकि सिर सुंदर जु मानी हारि
फटकि फटकि जाइ सुधौ कौन बात है ॥ १ ॥
पलुही मैं मरि जाय पलुही मैं जीवतु है
पलुही मैं पर हाथ देषत विकानौ है ।
पलुही मैं फिरै नवखंड ब्रह्मंड सब
देष्यौ अनदेष्यौ सु तौ यातैं नाहिं छानौं है ।
जातौ नाहिं जानियत आवतौ न दीसै कछु
ऐसौ सौ बलाइ अब तासौं पर्यौ पानौं है ॥
सुंदर कहत याकी गति हूं न लषि परै
मन की प्रतीत कोऊ करै सु दिवानौ है ॥ २ ॥
घेरिये तो घेर्यौ हू न आवत है मेरौ पूत,
जोई परमोधिये सु कान न धरतु है ।
नीति न अनीति देषै सुभ न असुभ पेषै,
पलुही मैं होती अनहोती हु करतु है ॥
गुरु की न साधु की न लोक वेदहू की शंक,
काहू की न मानै न तौ काहू तैं डरतु है ।

---

१ किसी भांति सीधा और सरल नहीं है । २ योग की दृष्टि से मनही मन को प्रत्यक्ष होते हैं ॥

सुंदर कहत ताहि धीजिये सुकौन भांति,
मन कौ सुभाव कछु कह्यौ न परतु है ॥ ३ ॥
जिनि ठगे शंकर विधाता इंद्र देवमुनि,
आपनौऊ अधिपति ठग्यौ जिन चंद[1] है ।
और योगी जंगम संन्यासी शेष कौन गनै,
सबही कौं ठगत ठगावै न सुछंद है ॥
तापस ऋषीश्वर सकल पचि पचि गये,
काहू कैं न आवै हाथ ऐसौ यापै वंद[2] है ।
सुंदर कहत वसि कौन विधि कीजै ताहि,
मन सौ न कोऊ या जगत मांहि रिंद[3] है ॥ ७ ॥
रंक कौं नचावै अभिलाषा धन पाइवे की,
निसि दिन सोच करि ऐसैही पचत है ।
राजा ही नचावै सब भूमिही कौ राज लैन,
औरऊ नचावै जोई देह सौं रचत है ।
देवता असुर सिद्ध पन्नग[4] सकल लोक,
कीट पशु पंषी कहु कैसै कै वचत है ।
सुंदर कहत काहू संत की कही न जाइ,
मन कैं नचायें सब जगत नचत है ॥ ८ ॥

इंदव छंद ।

दौरत है दशहू दिश कौ सठ, वायु लगी तब तैं भयौ बैंडौ[5] ।

---

१ मन के देवता चंद्रमा हैं । मन ने ही चंद्रमा को गौतम नारी के संपर्क से पतित और कलंकित कराया । २ दाँव। ३ पागल। 'रिंद' 'वंद' आदि से ठीक सानुप्रास नहीं है। ४ सर्प। ५ बंड—प्रबल वा उद्धत ।

लाज न कानि कछू नहिं रापत, शील सुभाव की फोरत मैंडो॥
सुंदर सीष कहा कहि देइ भिदै नहिं बान छिदै नहिं गैंडो।
लालच लागि गयौ मन वीषंरि बारह बाट अठारह पैंडों ॥१०॥
है सब कौ सिरमौर ततच्छन जौ अभी-अंतर ज्ञान विचारै।
जौ कछु और विषै सुख वंछत तौ यह देह अमौलिक हारै॥
छाँडि कुबुद्धि भजै भगवंतहि आपु तिरै पुनि औरहि तारै।
सुंदर तोहि कह्यो कितनी वर तू मन क्यौं नहिं आपु सँभारै॥१५॥

मनहर छंद।

हाथी कौ सौ कान किधौं पीपर कौ पान किधौं,
ध्वजा कौ उडान कहौं थिर न रहतु है।
पानी कौ सौ घेर किधौं पौन उरझेर किधौं,
चक्र कौ सौ फेर कोऊ कैसैं कै गहतु है॥
अरहट माल किधौं चरषा कौ ख्याल किधौं,
फेरी षाव बाल कछु सुधि न लहतु है।
धूम कौ सौ धाव ताकौं रापिवे कौ चाव ऐसौ,
मन कौ सुभाव सु तौ सुंदर कहतु है॥ २० ॥
सुख मानै दुख मानै संपति विपति मानै,
हर्ष मानै शोक मानै मानै रंक धन है।
घटि मानै बढि मानै शुभहू अशुभ मानै,
लाभ मानै हानि मानै याही तैं कृपन है॥

---

१ मेर–टोली खेत की। २ गैंडा नाम का बड़ा चौपाया जिसकी खाल अभेद्य होती है। ३ बिखरना–छितरा जाना। ४ मुहाविरा है–तितर बितर। छिन्न भिन्न।

पाप मानै पुन्य मानै उत्तम मध्यम मानै,
नीच मानै ऊँच मानै मानै मेरो तन है।
स्वरग नरक मानै बंध मानै मोक्ष मानै,
सुंदर सकल मानै तातैं नाम मन[1] है॥ २१॥
जोई जोई देषै कछु सोई सोई मन आहि,
जोई जोई सुनै सोई मन ही कौ भ्रम है।
जोई जोई सूंघै जोई पाइ जौ सपर्श होइ,
जोई जोई करै सोऊ मन ही को क्रम है॥
जोई जोई ग्रहै जोई त्यागै जोई अनुरागै,
जहां जहां जाइ सोई मनही कौ श्रम है।
जोई जोई कहै सोई सुंदर सकल मन,
जोई जोई कलपै सु मन ही को भ्रम है[2]॥ २२॥
एक ही विटप विश्व ज्यौं कौ त्यौं ही देषियतु,
अति ही सघन ताकै पत्र फल फूल हैं।
आगिले झरत पात नये नये होत जात,
ऐसे याही तरु कौ अनादि काल मूल है॥
दश चारि लोक लौं प्रसर जहां तहां रह्यौ,
अध पुनि ऊरध सूक्षम अरु थूल है।
कोऊ तौ कहत सत्य कोऊ तौ कहै असत्य,
सुंदर सकल मन ही कौ भ्रम भूल है[3]॥ २३॥

---

१ 'मन्यतेऽनेन' इति। २ यह भी एक वेदांत का सिद्धांत है। यहां मन से महत्तत्व अभिप्रेत होगा। ३ यह छंद चित्रकाव्य की रीति से वृक्षबंध का रूप पाता है।

तौ सौ न कपूत कोऊ कतहूं न देषियत,
तौ सौ न सपूत कोऊ देषियत और है।
तूं ही आपु भूलि महां नीचहू तें नीच होइ,
तूं ही आपु जाने तें सकल सिरमौर है।
तूं ही आपु भ्रमै तब भ्रमत जगत देषै,
तेरै थिर भये सब ठौर ही कौ ठौर है।
तूं ही जीवरूप तूही ब्रह्म है अकाशवत,
सुंदर कहत मन तेरी सब दौर है॥ २४ ॥

मनही के भ्रम तें जगत यह देषियत,
मनही कौ भ्रम गये जगत बिलात है।
मनही के भ्रम जेवरी मैं उपजत सांप,
मन के बिचारें सांप जेवरी समात है॥
मनही के भ्रम ते मरीचिका कौं जल कहै,
मनही के भ्रम सीप रूपौ सौ दिषात है।
सुंदर सकल यह दीसै मनही कौ भ्रम,
मनही कौ भ्रम गये ब्रह्म होइ जात है[१] ॥ २५ ॥

---

(१२) चाणक को अंग।

['चाणक' कोड़ा, कमची वा ताज़ियाने को कहते हैं, और यह तो उस पशु वा मनुष्य पर फटकारा जाता है जो अन्य उपायों से

---

१ भ्रम ही सब ज्ञान का आवरण और अवरोधक होता है। भ्रम, अविद्या वा उपाधि के हट जाने से शुद्ध आत्मा रह जाती है।

कभी ढब पर न आवे। उपदेश के तीखे "ताजणें" उन लोगों के लिये हैं जो तत्वज्ञान और ईश्वराराधन के मार्ग को तो छोड़ देते हैं, और अन्य आडंबर, दंभ, दिखावट, ढोंग के लिये जप, तप, दान, व्रत, तीर्थ, यज्ञ और पाखंड करते हैं। ज्ञान के अतिरिक्त अन्य सब उपाय, कर्म रूप होने से बंधन के कारण ही होते हैं। उनसे मुक्ति वा कर्मों से छूटना कैसे हो सकता है, कीच से कीच कैसे धुल सकता है। एक ज्ञान के बिना अन्य सब काम ढकोसले हैं। ऐसे वृथा और अनुपयोगी कामों की सुंदरदास जी ने विस्तृत मीमांसा की है।]

जोई जोई छूटिवे कौ करत उपाय अज्ञ,
सोई सोई दृढ़ करि बंधन परत है।
जोग जज्ञ तप जप तीरथ व्रतादि और,
झंपापात लेत जाइ हिंवारै गरत है[1]॥
कानऊ फराइ पुनि केशऊ लुचाइ अंग,
विभूति लगाइ सिर जटाव धरत है।
बिन ज्ञान पाये नाहिं छुटत हृदै की ग्रंथि[2],
सुंदर कहत यौंहीं भ्रमि कै मरत है॥ १॥
जप तप करत धरत व्रत जत सत,
मन वच क्रम भ्रम कपट सहत तन।
वलकल बसन असन फल पत्र जल,
कसत रसन रस तजत बसत बन।

---

१ कामना सिद्धि के अर्थ पहाड़ पर से या कुएँ में गिरते हैं, एवम् मोक्ष और सिद्धि के लिए भी। २ संशय और भ्रम की गांठ।

जरत मरत नर गरत परत सर,
कहत लहत हय गय दल बल धन।
पचत पचत भव भय न टरत सठ,
घट घट प्रगट रहत न लखत जन * ॥ ३ ॥

[सिद्धांत यह है कि चाहे जैसे भी उत्तम कर्म करे तब भी वे कर्म रहेंगे और उनका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। मुक्ति का हेतु केवल ज्ञान ही है और यह ज्ञान निजरूप की प्राप्ति है जो अंतर्दृष्टि के अभ्यास से प्राप्त होता है। मन को दर्पणवत् समझो तो इसका मुँह उलटा करने से स्वरूप ज्ञान नहीं होगा। यहां कहते हैं]

सुंदर कहत मूंधी ओर दिश देखै मुख,
हाथ माहीं आरसी न फेरै मूढ कर ते ॥ ४ ॥

[ज्ञानोदय को सूर्य के प्रकाश समान कहते हैं जिसके सामने अन्य उपाय जुगनू के समान हैं जिससे अंधकार का नाश नहीं होता।]

सुंदर कहत एक रवि के प्रकाश बिन,
जैंगनै की जोति कहा रजनी बिलात है ॥ ५ ॥

[जब तक अंतरंग प्रीति प्रभु के स्वरूप में उत्पन्न न हो और सत्य-ज्ञान का परिचय भी न हो तब तक जितने ऊपरी ढकोसले जप तप आदि के चाहे कितने भी करो वे सब निष्फल हैं। क्योंकि वास्तविक पदार्थ

---

* निर्मात्रिक छंद है सब अक्षर अकारांत हैं। यह चित्रकाव्य में अलंकार का प्रकार होता है। यह 'डमरू' नाम का घनाक्षरी का भेद है जिसमें सर्वलघु होते हैं और ३२ वर्ण होते हैं। जत=दर्शा धर्म। करन=कर्म। बकलल=छाल, भोजपत्रादि। कसत=घटाता है।

बहिर्दृष्टि को मिलता नहीं है जैसे बाजार में अनेक उत्तम पदार्थ भरे रहें तो क्या अंधा उनको लूट सकता है।]

कोऊ फिरै नांगे पाइ कोऊ गूदरी बनाइ,
देह की दशा दिखाइ आइ लोग धूर्‌यौ है।
कोऊ दूधाधारी होइ कोऊ फलाहारी तोय,
कोऊ अधोमुख झूलि झूलि धूम घूर्‌यौ है॥
कोऊ नाहिं षाहिं लौन कोऊ मुख गहै मौन,
सुंदर कहत योंही वृथा भुस कूट्यौ है।
प्रभु सौं न प्रीति मांहि ज्ञान सौ परिचै नाहिं,
देखौ भाई आँधरनि ज्यौं बजार लूट्यौ है॥ ७॥

[साधू वेष धारण कर जप तप की आड़ में वंचक लोग भोले स्त्री पुरुषों को ठगते हैं। आप डूबते हैं दूसरों को डुबाते हैं और जिनका यह अंध विश्वास है कि केवल शारीरिक काष्ठाओं से यथा नीचे सिर और ऊपर पांव रखना, धूँआ पीना, मेंह, शीत और घाम को तन पर सहना—सिद्धि प्राप्त होगी वे बड़ी भूल में हैं। सुंदरदास जी कहते हैं—]

घर बूड़त है अरु झांझण गावै॥ ९॥

[क्योंकि वासना मिटे बिना विषय सुख की आशा रहते क्या सिद्धि मिल सकती है। और कहते हैं।]

---

१ धूतना-धूर्तपन करना-छलना। धूर्‌यो का रूपांतर है। २ घूट लिया है। पिया है। ३ झांझ वा झांझिणी एक वाद्यविशेष होता है उसको बजाकर साधु लोग भजन गाते हैं। मजीरा के तद्वत होता है।

गेह तज्यौ अरु नेह तज्यौ पुनि षेह लगाइ कै देह सँवारी।
मेघ सहे सिर सीत सह्यो तनु धूप समै जु पंचाग निवारी॥
भूष सही रहि रूष तरे परि सुंदरदास सहे दुख भारी॥
डासन छांडि कै कासन ऊपर आसन मार्‌यौ पै आस न मारी॥१०॥
आगे कछू नहिं हाथ पर्‌यौ पुनि पीछै बिगारि गये निज भौना।
ज्यौं कोउ कामिनि कंतहि मारि चली संग और हि देष सलौना॥
सोऊ गयौ तजि कै ततकाल कहे न बनै जु रही मुख मौना।
तैसेहि सुंदर ज्ञान बिना सब छांडि भये नर भांड के दौना॥१६॥
काहे कौं तू नर भेष बनावत काहे कौं तू दशहू दिश डूलै।
काहे कौं तू तनु कष्ट करै अति काहे कौं तू मुख ते कहि फूलै॥
काहे कौं और उपाइ करै अब आन क्रिया करिकैं मति भूलै।
सुंदर एक भजै भगवंतहि तौ सुखसागर में नित झूलै॥२३॥

---

(१३) विपरीत ज्ञानी को अंग।

[जो मनुष्य अंतःकरण की शुद्धि तो साधनों द्वारा करते नहीं और केवल ज्ञानियों की सी ही बातें करते हैं वा संसार से त्यागी बन जाते हैं, कर्म छोड़ देते हैं, सो न तो इधर के ही रहते न उधर के। ऐसों की विपरीत दशा को दरसाते हैं।]

मनहर छंद।

एक ब्रह्म मुख सौं बनाइ करि कहत हैं,
अंतःकरण तौ विकारनि सौं भर्‌यो है।

---

१ बिछौना। २ काम-क्रोध-घास।

जैसे ठग गोवर सौं कूपो भरि राखत है,
सेर पांच घृत लैकैं ऊपर ज्यौं कर्यो है।
जैसे कोऊ भांडे मांहि प्याज कौं छिपाइ राषै,
चीथरा कपूर कौ लै मुख वांधि धर्यो है।
सुंदर कहत ऐसे ज्ञानी हैं जगत माहिं,
तिनकौ तौ देषि करि मेरौ मन डर्यो है ॥ २ ॥
मुख सौं कहत ज्ञान भ्रमैं मन इंद्री प्रान,
मारग के जल मैं न प्रतिबिंब लहिये।
गांठि मैं न *पैसा कोऊ भयौ रहै साहूकार,
बातनि ही मुहर रुपैया गनि गहिये॥
स्वपनै मैं पंचामृत जीमि कै तृपति भयौ,
जागें तें मरत भूष पाइवे को चहिये।
सुंदर सुभट जैसे काइर मारत गाल,
राजा भोज सम कहा गांगौ तेली कहिये ॥ ३ ॥
संसार के सुखनि सौं आसक्त अनेक विधि,
इंद्रीहू लोलप मन कवहूं न गह्यौ है।
कहत है ऐसैं मैं तो एक ब्रह्म जानत हौं,
ताही तें छोड़िकैं सुभ कर्मनि कौं रह्यौ है॥
ब्रह्म की न प्रापति पुनि कर्म सब छूटि गये,
दुहूंन तें भ्रष्ट होइ अधबीच वह्यौ है।

---

* पाठांतर—'पैका'।

१ धार उज्जैन का महा विद्वान विद्याप्रेमी प्रसिद्ध राजा भोज हुआ है। उसकी नगरी में गांगा तेली भी प्रसिद्ध हुआ है जो राजा की स्पर्द्धा करता था। २ नहीं।

सुंदर कहत ताहि त्यागिये स्वप्न जैसे,
याही भांति ग्रंथ में वशिष्टजीहू कह्यौ है ॥ ४ ॥

---

(१४) वचन विवेक को अंग।

[वचन के भेद, वचन की चतुराई, वचन का प्रभाव इत्यादि का रोचक छंदों में वर्णन किया है। इस अंग के छंद बड़े उपयोगी हैं ।]

मनहरन छंद ।

जाकै घर ताजी तुरकनि कौ तबेलो बंध्यौ,
ताकै आगे फेरि फेरि टटुवा *नचाइये ।
जाकै पासौं[2] मलमल सिरी[3] साफ ढेर परे,
ताकै आगे आनि करि चौतई[4] रषाइये ॥
जाकौं पंचामृत पात पात सब दिन बीते,
सुंदर कहत ताहि रावरी चपाइये ।
चतुर प्रवीन आगे मूरष उचार करै,
सूरज के आगे जैसे जैंगणां[5] दिपाइये ॥ १ ॥
एक वाणी रूपवंत भूषन वसन अंग,
अधिक विराजमान कहियत ऐसी है ॥

---

१ चांडाल । * पाठांतर—'नचाइये' ।

२ बढ़िया वस्त्र लखनऊ का और दिल्ली का प्रसिद्ध हैं । ३ रेशमी बारीक वस्त्र । साफ भी बढ़िया वस्त्र का एक प्रकार है । ४ मोटा वस्त्र-चौतई-गजी से भी मोटा । ५ जुगनूं, पटबीजणा ।

एक बाणी फाटे टूटे अंबर उढाये आनि,
ताहू मांहि विपरीत सुनियत तैसी है।
एक वाणी मृतकहि वहुत सिंगार किये,
लोकनि कौं नीकी लगै संतनि कौं भैसी है[1]।
सुंदर कहत बाणी त्रिविधि जगत माहिं,
जानै कोऊ चतुर प्रवीन जाकै जैसी है ॥ २ ॥

बोलिये तौ तब जब बोलिवे की सुधि होइ,
ना तौ मुख मौन करि चुप होइ रहिये।
जोरियेऊ तब जब जोरिवौऊ जानि परे,
तुक छंद अरथ अनूप जामैं लहिये॥
गाइयेऊ तब जब गाइवे कौ कंठ होइ,
श्रवण कै सुनत ही मन जाइ गहिये।
तुकभंग छंद भंग अरथ मिलै न कछु,
सुंदर कहत ऐसी वानी नाहिं कहिये ॥ ४ ॥

एकनि के वचन सुनत अति सुख होइ,
फूल से झरत है अधिक मन भावने।
एकनि के वचन असम[2] मानौ बरषत,
श्रवण के सुनत लगत अलषावने।
एकनि के वचन कंटक कटु विष रूप,
करत मरम छेद दुख उपजावने।

---

१ भय के समान—यथा शृंगार रस-उपन्यास आदि गंदे लेख।
२ पत्थर।

सुंदर कहत घट घट में वचन भेद,
उत्तम मध्यम अरु अधम सुनावनें ॥ ५ ॥

काक अरु रासभ[1] उलूक जब बोलत हैं,
तिनके तौ वचन सुहात कहि कौन कौं।
कोकिला रु सारौ[2] पुनि सूवा जब बोलत हैं,
सब कोऊ कान दै सुनत रव[3] रौनकौं ॥
ताहीतें सुवचन विवेक करि बोलियत,
यौंही आंक बांक[4] बकि तौरिये न पौनें[5] कौं।
सुंदर समुझि कैं वचन कौं उचार करि,
नाहींतर चुप ह्वै पकरि बैठि मौन कौं ॥ ६ ॥

और तौ वचन ऐसे बोलत हैं पशु जैसे,
तिनके तो बोलिवे में ढंग हू न एक है।
कोई रात दिवस बकत ही रहत ऐसें,
जैसी विधि कूप में बकत मानौं भेक[6] है ॥
विविध प्रकार करि बोलत जगत सब,
घट घट मुख मुख वचन अनेक है।
सुंदर कहत तातें वचन विचारि लेहु,
वचन तौ उहै जामैं पाइये विवेक है ॥ ८ ॥

प्रथमहि गुरु देव मुख तें उचारि कह्यौ,
वे ही तौ वचन आइ लगे निज हीये है।
तिन कौ विवेक करि अंतहकरन माहिं,
अति ही अमोल नग भिन्न भिन्न कीये हैं ॥

---

१ गधा। २ मैना। ३ सुंदर शब्द। ४ अकबक-वृथा बकवाद। ५ दाँत तोड़ना। हवा फाड़ना। मुहावरा है। ६ मेढ़क।

आपुकौ दरिद्र गयौ पर उपकार हेत,
नग ही निगलि के उगलि नग दीये हैं।
सुंदर कहत यह वानी यौं प्रगट भई,
और कोऊ सुन करि रंक जीव जीये हैं ॥१०॥

---

(१५) निर्गुन उपासना को अंग।

इंदव छंद।

मंजन सो जु मनोमल मंजन सज्जन सो जु कहै गति गुज्झै।
गंजन सो जु इंद्री गहि गंजन रंजन सो जु वुझावु अवुज्झै॥
भंजन सो जु रह्यौ रस माहिं विदुज्जन सो कतहूं न अरुज्झै।
व्यंजन सो जु वढ़ै रुचि सुंदर अंजन सो जु निरंजन सुज्झै॥३॥

जो उपज्यौ कछु आइ जहां लग सो सव नाश निरंतर होई।
रूप धर्यौ सु रहै नाहिं निश्चल तीनिहूं लोक गनै कहा कोई॥
राजस तामस सात्विक जे गुन देषत काळ ग्रसै पुनि वोई।
आपुहि एक रहै जु निरंजन सुंदर के मन मानत सोई॥६॥

सेस महेस गनेस जहां लग विष्णु विरंचिहु कै सिर स्वामी।
व्यापक ब्रह्म अखंड अनावृत वाहर भीतर अंतरयामी॥

---

१ उपासना प्रायः सगुन की हो सकती है। परंतु निर्गुन की उपासना ब्रह्मसम्प्रदाय का परम सिद्धांत है। ब्रह्म की प्राप्ति का साधन ही 'निर्गुणोपासना' है। २ गुह्य–गुप्त। ३ अवोधनीय–सहज ही समझा न आ सके। ४ भाजन–पात्र। ५ उलझे। ६ अनावृत्त = असीम।

वोर न छोर अनंत कहैं गुनि याहि वैं सुंदर है घनें नामी ।
ऐसौ प्रभू जिनके सिर ऊपर क्यौं परिहै तिनकी कहि षामी ॥८॥

---

(१६) पतिव्रत को अंग ।

इंदव छंद ।

जो हरि कौं तजि आन उपासत सो मति मंद फजीतहि होई ।
ज्यों अपनें भरतारहि छाड़ि भई बिभचारिनि कामिनि कोई ॥
सुंदर ताहि न आदर मान फिरै विमुखी अपनी पति षोई ।
बूडि मरै किनि कूप मँझार कहा जग जीवत है सठ सोई ॥२॥
एक सही सबके उर अंतर ता प्रभु कौं कहि काहि न गावै ।
संकट माँहि सहाइ करै पुनि सो अपनो पति क्यौं बिसरावै ॥
चारि पदारथ और जहां लग आठहु सिद्धि नवैं निधि पावै ।
सुंदर छार परौ तिनि कै मुख जौ हरि कौं तजि आन कौं ध्यावै ॥३॥
पूरन काम सदा सुख धाम निरंजन राम सिरज्जन हारौ ।
सेवक होइ रह्यौ सबकौ नित कुंजर कीटहि देत अहारौ ॥
भंजन दुःख दरिद्र निवारन चिंत करै पुनि संझ सँवारौ ।
ऐसे प्रभू तजि आन उपासत सुंदर है तिनिकौ मुख कारौ ॥४॥
होइ अनन्य भजै भगवंतहि और कछू उर मैं नहिं राषै ।
देविय देव जहां लग हैं डरिकैं तिनसौं कहुं दीन न भाषै ॥
योगहु यज्ञ व्रतादि क्रिया तिनिकौं नहिं तौ सुपनै अभिलाषै ।
सुंदर अमृत पान कियौ तब तौ कहि कौन हलाहल चाषै ॥५॥

---

१ दिशामय । सर्वत्र गमन करनेवाला । मिलनेवाला । २ पतिव्रत से द्वैत का भाव अवश्य आवेगा क्योंकि यहां भक्तिमय ज्ञान से अभिप्राय है । ३ चाहै ।

मनहर छंद ।

पतिही सौं प्रेम होइ पति ही सौं नेम होइ,
पति ही सौं क्षेम होइ पतिही सौं रत[1] है ।
पतिही है यज्ञ योग पतिही है रस भोग,
पतिही है जप तप पतिही को यत[2] है ॥
पतिही है ज्ञान ध्यान पतिही है पुन्य दान,
पतिही तीरथ न्हांन पतिही कौ मत है ।
पति विन पत[3] नाहिं पति विन गति नाहिं,
सुंदर सकल विधि एक पतिव्रत है ॥ ७ ॥
जल कौ सनेही मीन विछुरत तजै प्रान,
मणि विन अहि जैसैं जीवत न लहिये ।
स्वांति बुंद के सनेही प्रगट जगत मांहि,
एक सीप दूसरौ सु चातकऊ कहिये ॥
रवि कौ सनेही पुनि कवल सरोवर मैं,
शशि कौ सनेहीऊ चकोर जैसैं रहिये ।
तैसैं ही सुंदर एक प्रभु सौं सनेह जोरि,
और कछु देषि काहू वोर नाहिं बहिये ॥ ८ ॥

(१७) विरहनि उराहने को अंग ।

[विरहिनी अर्थात् पतिवियोगिनी की ओर से उलाहना अर्थात् उपालंभ देना । यह भाव प्रीति की उत्कटता, दर्शनों की लालसा

---

१ रति=अनुराग । २ जत । अथवा यतीत्व । ३ 'पत'=प्रतिष्ठा ।

और विरह की उग्रता का द्योतक होता है। इसके प्रवाह को वे ही भली भांति समझते हैं जिनपर ऐसी बीत चुकी हो। इन ५ छंदों में जो कुछ सुंदरदासजी ने कहा है उसका साधारण अर्थ जो दिखाई देता है उससे आगे रहस्य का अर्थ कुछ और है अर्थात् ब्रह्मविद्या वा प्रगाढ़ भक्ति में घटता है।]

मनहर छंद।

हमकौं तौ रैनि दिन शंक मन मांहि रहै,
उनकी तौ बातनि मैं ठीक हूं न पाइये।
कबहूं सँदेसौ सुनि अधिक उछाह होइ,
कबहूंक रोइ रोइ आँसूनि बहाइये॥
औरनि के रस बस होइ रहे प्यारे लाल,
आवन की कहि कहि हमकौं सुनाइये।
सुंदर कहत ताहि काटिये जु कौन भांति,
जुतौ रूप आपनेइ हाथ सौं लगाइये॥ ३॥
हियें और जियें और लीये और दीये और,
कीयें और कौनऊ अनूप पाटी पढ़े हैं।
मुख और बैन और सैन और नैन और,
तन और मन और जंत्र मांहि कढ़े हैं॥
हाथ और पाँव और सीस हू श्रवन और,
नख सिख रोम रोम कछुई सौं मढ़े हैं।
ऐसी तौ कठोरता सुनी न देखी जगत में,
सुंदर कहत काहू बज्र ही के गढ़े हैं॥ ४॥

(१८) शब्दसार को अंग ।

[शब्दों का, पदार्थों का, कर्मों का और गुणों का उत्तम प्रयोग करना ही मनुष्य के चातुर्य का लक्षण होता है। इस शब्दसार के १० छंदों में सुंदरदास जी ने इस बात को कतिपय प्रधान शब्द ले कर दरसाया है यथा, कान क्या है ? जो हरिगुण वा वेद वचन सुने। नेत्र क्या है ? जो निज आत्मस्वरूप को देखे। बाण क्या है ? जो मन को वेधे। वीर कौन है ? जो मन को जीते इत्यादि।]

इंदव छंद ।

पान उहै जु पियूष पिवै नित दान उहै जु दरिद्र हि भानै।
कान उहै सुनिये जस केशव मान उहै करियें सनमानै ॥
तान उहै सुरतान[1] रिझावत जान उहै जगदीस हि जानै।
बान उहै मन वेधत सुंदर ज्ञान उहै उपजै न अज्ञानै ॥२॥
सूर उहै मन कौं वसि राषत कूर उहै रनै[2] मांहि लजैहै।
त्याग उहै अनुराग नहीं कहुँ भाग[3] उहै मन मोह तजै है ॥
यज्ञ उहै निज तत्वहि जानत यज्ञ उहै जगदीस जँजै[4] है।
रक्त[5] उहै हरि सों रत सुंदर गत्त उहै भगवंत भजै है ॥३॥
चाप उहै कसिये रिपु ऊपर दाप उहै दलकारि[6] हि मारै।
छाप उहै हरि आप दई सिर थाप उहै थपि औरन धारै ॥

---

१ यहां सुलतान=बादशाह से भी प्रयोजन हो सकता है। वह सर्वेश्वर परमात्मा। २ विषयादि शत्रुओं से युद्ध। ३ मागना। ४ यजन करै। ५ अनुरक्त। ६ ललकार कर। दाप=दर्प। रोब दाब।

जाप उहै जपिये अजपा नित थाप उहै निज पाप विचारै ।
ताप उहै सब कौ प्रभु सुंदर पाप हरै अरु ताप निवारै ॥४॥
श्रोत्र उहै श्रुतिसार सुनै नित नैन उहै निज रूप निहारै ।
नाक उहै हरिनाक हि राषत जीभ उहै जगदीस उचारै ॥
हाथ उहै करिये हरि कौ कृत पाव उहै प्रभु के पथ धारै ।
सीस उहै करि श्याम समर्पन सुंदर यौं सब कारज सारै ॥८॥

---

(१९) सूरातन को अंग ।

[सुरासुर संग्राम वेद और शास्त्रों में विख्यात है । शरीर रूपी संसार वा क्षेत्र में काम क्रोध लोभ मोहादिक असुर वा शत्रुओं से ज्ञान, विवेक, सुबुद्धि, दया, शील, संतोषादि सुर, सुभट लड़ते रहते हैं । ये सब सुभट समष्टि रूप से व्यक्तिगत वीरता के द्योतक होते हैं । किसी एक पुरुष विशेष को ऐसे गुणों का धारण करनेवाला वीर मान कर उक्त शत्रुओं से लड़ने में धीर गंभीर और निर्भय शूर सामंत सा पाया तो उसको "सूरातन" अर्थात् शूरमा का सा शरीरवाला कहा गया । प्राय: साधुओं की वाणी में "सूरातन" का वर्णन आया है, इसी प्रकार सुंदरदास जी ने भी इस अंग के १२ छंदों में शांत रस की भित्ति पर वीर रस का मानों चित्र खींच दिया है । इन थोड़े से छंदों के देखने से ही यह प्रतीत होता है कि वीर आदि रसों के वर्णन में भी स्वामी जी की बड़ी शक्ति थी । सच तो यह है कि इस

---

१ हरपंक्ति का संबंध । थांप=ठौर, तट । तापन । अथवा अपना जपना=निस्तारा । २ भगवान् ही को अपना नाक अथवा प्रतिष्ठा की परमावधि समझे । नाक=स्वर्ग, यह अर्थ भी । ३ भाषा में 'श्याम' स्वामी के अर्थ में भी आता है ।

संसार में उच्च कोटि का सच्चा सूरमा वही गिना जा सकता है जो काम क्रोधादिक शत्रुओं को अपने यम, नियम, शील, संतोषादि शस्त्रों से दमन करता है क्योंकि ये घर के अंदर सदा रहनेवाले वैरी हैं इसलिये अधिक प्रबल और भयंकर हैं ।]

मनहर छंद ।

सुणत नगारै चोट विगसै कवल मुख,
अधिक उछाह फूल्यो माइहू न तन मैं ।
फिरै जब सांगि तब कोऊ नहिं धीर धरै,
काइर कँपाइमान होत देषि मन मैं ॥
टूटि कै पतंग जैसै परत पावक मांहि,
ऐसै टूटि परै बहु सांवत के गन मैं ।
मारि घमसांण करि सुंदर जुहारै स्याम,
सोई सूरवीर रुपि रहै जाइ रन मैं ॥ १ ॥

हाथ मैं गह्यौ है षड्ग मरिवे कौं एकं पग,
तन मन आपनौं समरपन कीनौं है ।
आगैं करि मीच कौं पर्यौं है डाकि रन बीच,
टूक टूक होइ कैं भगाइ दल दीनौं है ॥
खाइ लौंन स्याम कौ हरामषोर कैसै होइ,
नामजांद जगत मैं जीत्यौ पन तीनौं है ।

---

१ लोहदंड । भाला । बरछी । पतली गदा । २ सामंत । योद्धा । ३ सलाम करै । ४ यकसां । दृढ़ । ५ नाम पाया हुआ । नाम पैदा होगया जिसका । अथवा नामजद ।

सुंदर कहत ऐसो कोऊ एक सूरवीर,
सीस कौं उतारि कैं सुजस जाइ लीनौ है ॥ २ ॥

पाव रोपि रहै रन मांहि रजपूत कोऊ,
हय गय गाजत जुरत जहां दल है ।
बाजत जुझाऊ सहनाइ सिंधू राग पुनि,
सुनतही काइर की छूटि जात कल है ॥
झलकत बरछी तरछि तरवारि बहै,
मार मार करत परत खलभल है ।
ऐसे जुद्ध मैं अडिग्ग सुंदर सुभट सोई,
घर मांहि सूरमा कहावत सकल है ॥ ३ ॥

असन बसन बहु भूषन सकल अंग,
संपति बिबिध भांति भर्यौ सब घर है ।
श्रवण नगारौ सुनि छिनक मैं छाडि जात,
ऐसैं नहिं जानै कछु आगै मोहि मर है ॥
मन मैं उछाह रन मांहि टूक टूक होइ,
निरभै निसंक वाकै रंच हू न डर है ।
सुंदर कहत कोऊ देह कौ ममत्व नांहि,
सूरमा कै देखियत सीस बिन धर है ॥ ४ ॥

ज्ञान कौ कवच अंग काहू सौं न होइ भंग,
टोप सीस झलकत परम बिवेक है ।
तीन्हैं ताजी असवार लियें समसेर संग,
आगै ही कौं पांव धरै भागनै की टेक है ॥

१ मौत । २ तत्व । ३ प्रन । मानद ।

छूटत बंदूक बाण बीचै जहां घमसांण,
देषि कैं पिशुन[1] दल मारत अनेक है।
सुंदर सकल लोक माहिं ताकौ जैजैकार,
ऐसौ सूर बीर कोऊ कोटिन मैं एक है ॥ ७ ॥
सूर वीर रिपु कौं निमूनौ देषि चोट करै,
मारै तब ताकि करि तरवारि तीर सौं।
साधु आठौं जाम बैठौ मन ही सौं युद्ध करै,
जाकै मुंह माथौ नाहिं देषिये शरीर सौं ॥
सूर वीर भूमि परै दौर करै दूरि लौं,
साधु शून्य कौं पकरि रापै धरि धीर सौं।
सुंदर कहत तहां काहू के न पाँव टिकैं,
साधु कौ संग्राम है अधिक सूर वीर सौं ॥ ८ ॥
काम सौं प्रबल महा जीते जिनि तीनौं लोक,
सु तौ एक साधु कै विचार आगैं हार्‌यौ है।
क्रोध सौं कराल जाकैं देषत न धीर धरै,
सोउ साधु क्षमा के हथियार सौं विदारयौ है ॥
लोभ सौं सुभट साधु तोषं[2] सौं गिराइ दियौ,
मोह सौं नृपति साधु ज्ञान सौं प्रहारयौ है।
सुंदर कहत ऐसौ साधु कोऊ सूर वीर,
ताकि ताकि सब ही पिशुन दल मार्‌यौ है ॥१०॥
मारे काम क्रोध जिनि लोभ मोह पीसि डारै,
इंद्रीऊ कतल करि कियौ रजपूतौ है।

---

१ शत्रु। २ संतोष।

मारयो मयमत्त[1] मन मारयौ अहंकार मीर,
मारे मद मच्छर[2] हू ऐसौ रन रूढौ[3] है॥
मारी आसा तृष्णा सोऊ पापिनी सापिनी दोऊ,
सबकौं प्रहारि निज पदइ पहूँतौ[4] है।
सुंदर कहत ऐसौ साधु कोऊ सूर वीर,
वैरी सब मारि कै निचिंत होइ सूँतौ[5] है॥११॥

---

(२०) साधु को अंग।

[साधु संगति की महिमा, साधु का गुणानुवाद, साधु की गति और शक्ति, साधु की स्वतंत्रता, साधु के लक्षण तथा साधु की अलभ्यता ३० छंदों में वर्णित है।]

इंदव छंद।

प्रीति प्रचंड लगै परब्रह्महि और सबै कछु लागत फीकौ।
शुद्ध ह्वै मति होइ सुनिर्मल द्वैत प्रभाव मिटै सब जी कौ॥
गोष्टिरु ज्ञान अनंत चलै तहं सुंदर जैसै प्रवाह नदी कौ।
ताहितें जानि करै निसिवासर साधु कौ संग सदा अति नीकौ॥१॥
ज्यौं लट भृंग करै अपने सम तासनि भिन्न कहै नहि कोई।
ज्यौं द्रुम और अनेकहि भांतिनि चंदन की ढिग चंदन होई॥
ज्यौं जल क्षुद्र मिलै जब गंगहि होत पवित्र बहै जल सोई।
सुंदर जाति सुभाव मिटै सब साधु के संग तें साधुहि होई॥२॥

---

१ मदमत्त अथवा अहंता (अभिमान) में मस्त। २ मत्सर। ३ आरूढ़ या दृढ़। ४ पहुंचा। ५ दूसरा अर्थ निजानंदमग्न या समाधिस्थ है। ६ तासें=इससे।

जौ परब्रह्म मिल्यौ कोउ चाहत तौ नित संत समागम कीजै ।
अंतर मेटि निरंतर ह्वै करि लै उनकौ अपनौ मन दीजै ॥
वै मुख द्वार उचार करैं कछु सो अनयास सुधारस पीजै ।
सुंदर सूर प्रकाशत है उर और अज्ञान सबै तम छीजै ॥५॥
सो अनयास तिरै भवसागर जो सतसंगति मैं चलि आवै ।
ज्यौं कणिहार[1] न भेद करै कछु आइ चढै तिहिं नाव चढावै ॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यहु शूद्र मलेछ चंडालहि पार लँघावै ।
सुंदर वार कछू नहिं लागत या नर देह अभै पद पावै ॥८॥
कोउक निंदत कोउक वंदत कोउक आइकै देत है भक्षन ।
कोउक आइ लगावत चंदन कोउक डारत धूरि ततच्छन ॥
कोउ कहै यह मूरख दीसत कोउ कहै यह आहि विचक्षन ।
सुंदर काउ सो राग न द्वेष सु ये सब जानहु साधु के लच्छन ॥११॥
तात मिलै पुनि मात मिलै सुत भ्रात मिलै युवती सुखदाई ।
राज मिलै गज बाजि मिलै सब साज मिलै मनवंछित पाई ॥
लोक मिलै सुरलोक मिलै विधिलोक मिलै वइकुंठहु जाई ।
सुंदर और मिलै सबही सुख दुर्लभ संत समागम भाई ॥१२॥

मनहर छंद ।

देवहू भये ते कहा इंद्रहू भये ते कहा,
विधिहू के लोक ते वहुरि आइयतु है ।
मानुष भये ते कहा भूपति भये ते कहा,
द्विजहू भये तें कहा पार[2] जाइयतु है ॥

---

१ कर्णधार=केवट । २ पार पड़ना=काम चलना ।

पशुहू भये ते कहा पक्षिहू भये ते कहा,
पन्नग भये ते कहौ क्यौं अघाइयतु है।
छूटिवे को सुंदर उपाइ एक साधु संग,
जिनकी कृपा ते अति सुख पाइयतु है॥ १३॥

धूल जैसो धन जाके सूल सो संसार सुख,
भूल जैसो भाग देषे अंत की सी यारी है।
आप जैसी प्रभुताई साप[1] जैसो सनमान,
बडाईहू बीछनी सी नागनी सी नारी है॥
अग्नि जैसो इंद्रलोक विघ्न जैसो विधिलोक,
कीरति कलंक जैसी सिद्धि सींट डारी है।
वासना न कोऊ वाकी ऐसी मति सदा जाकी,
सुंदर कहत ताहि वंदना हमारी है॥१५*॥

कामही न क्रोध जाके लोभही न मोह ताके,
मदही न मच्छर न कोऊ न विकारौ है।
दुःखही न सुख मानै पापही न पुन्य जानै,
हरष न शोक आनै देहही तें न्यारौ है॥
निंदा न प्रशंसा करै रागही न दोष धरै,
लैनही न दैन जाकै कछु न पसारौ है।
सुंदर कहत ताकी अगम अगाध गति,
ऐसो कोऊ साधु सु तौ रामजी को प्यारौ है॥ १६॥

---

१ सर्प अथवा शाप।

* यह १५ वां छंद वह है जिसको सुंदरदास जी ने कैन कवि बनारसी दास जी को लिखा था और १६ वें छंद के विषय में भी यही बात कही जाती है।

जैसे आरसी कौ मैल काटत सिकल करि,
मुख मैं न फेर कोऊ वहै वाकौ पोत है।
जैसै वैद नैन मैं शलाका मेलि शुद्ध करै,
पटल गयें तें तहां ज्यौं की त्यौं ही जोत है।
जैसै वायु बादर बखेरि कै उड़ाइ देत,
रवि तौ अकाश माहिं सदा ही उदोत है॥
सुंदर कहत भ्रम क्षन मैं विलाइ जात,
साधु ही कै संग तें स्वरूप ज्ञान होत है॥१८॥

मृतक दादुर जीव सकल जिवाये जिनि,
बरषत बानी मुख मेघ की सी धार कौं।
देत उपदेश कोऊ स्वारथ न लवलेश,
निस दिन करत है ब्रह्म ही विचार कौं॥
औरऊ संदेहनि मिटावत निमेष मांहि,
सूरज मिटावत है जैसै अंधकार कौं।
सुंदर कहत हंसवासी सुखसागर के,
"संत जन आये हैं सु पर-उपकार कौं" ॥२९॥

प्रथम सुजस लेत सीलहू संतोष लेत,
क्षमा दया धर्म लेत पाप तें डरत हैं।
इंद्रिन कौं घेरि लेत मनहूं कौं फेरि लेत,
योग की युगति लेत ध्यान लै धरत हैं॥
गुरु कौ वचन लेत हरिजी कौ नाम लेत,
आतमा कौ सोधि लेत भौजल तरत हैं।

---

१ धब्बा। २ मैल का परदा। ३ सकर्मक = बरषावत।

सुंदर कहत जग संत कछु लेत नाहिं,
"संत जन निसि दिन लैबोई करत हैं" ॥२२॥

सांचौ उपदेश देत भली भली सीष देत,
समता सुबुद्धि देत कुमति हरत हैं।
मारग दिषाइ देत भाव हू भगति देत,
प्रेम की प्रतीति देत अभरा भरत हैं॥
ज्ञान देत ध्यान देत आतमा विचार देत,
ब्रह्म कौं बताइ देत ब्रह्म मैं चरत हैं।
सुंदर कहत जग संत कछु देत नाहिं,
"संत जन निसि दिन देबोई करत हैं" ॥२३॥

कूप मैं कौ मैंडुका तौ कूप कौं सराहत है,
राजहंस सौं कहै कितोक तेरौ सर है।
मसका कहत मेरी सरभरि कौन उड़ै,
मेरे आगे गरुड़ की कितीयक जर है॥
गुबरैंडा गोली कौं लुढाइ करि मानैं मोद,
मधुप कौं निंदत सुगंध जाको घर है।
आपुनी न जानैं गति संतनि कौ नाम धरै,
सुंदर कहत देषौ ऐसौ मूढ नर है ॥२४॥

ताही कैं भगति भाव उपजिहै अनायास,
जाकी मति संतन सौं सदा अनुरागी है।

---

१ संसारी लोग। २ कितना। ३ गुबरैला=एक जन्तु जो गोबर की गोली बनाके पांव से लाता है। ४ भौंरा। ५ निंदा करे।

अति सुख पावै ताकै दुःख सब दूरि होइ,
औरऊ काहू की जिनि निंदा मुख त्यागी है ॥
संसार की पासि काटि पाइहै परम पद,
सतसंगही तैं जाकै ऐसी मति जागी है।
सुंदर कहत ताकौ तुरत कल्यान होइ,
"संतन कौ गुन गहै सोई बड़भागी है" ॥२९॥

---

(२१) भक्ति-ज्ञान-मिश्रित को अंग।

इंदव छंद।

बैठत रामहिं ऊठत रामहिं बोलत रामहिं राम रह्यौ है।
जीमत रामहिं पीवत रामहिं धीमत[1] रामहिं राम गह्यौ है॥
जागत रामहिं सोवत रामहिं जोवत रामहिं राम लह्यौ है।
देतहु रामहिं लेतहु रामहिं सुंदर रामहिं राम कह्यौ है ॥१॥
श्रोत्रहु रामहिं नेत्रहु रामहिं वक्त्रहु रामहिं रामहिं गाजै।
सीसहु रामहिं हाथहु रामहिं पावहु रामहिं रामहिं साजै॥
पेटहु रामहिं पीठहु रामहिं रामहु रामहिं रामहिं बाजै।
अंतर राम निरंतर रामहिं सुंदर रामहिं राम विराजै ॥२॥
भूमिहु रामहिं आपुहु रामहिं तेजहु रामहिं वायुहु रामैं।
व्योमहु रामहिं चंदहु रामहिं सूरहु रामहिं शीत न घामैं॥
आदिहु रामहिं अंतहु रामहिं मध्यहु रामहिं पुंसन बामैं।
आजहु रामहिं कालिहहु रामहिं सुंदर रामहिं म्हां महि थांमैं[2] ॥३॥

---

१ ध्यावत=ध्यान करता है ('धीमहि' का रूपांतर है) अथवा 'चलते'। २ म्हां मांहि=हमारे भीतर। थांमैं=तुम्हारे भीतर।

(२२) विपर्यय शब्द को अंग।

[महात्मा सुंदरदास जी ने ३२ सवैया छंदों में विपर्यय अर्थ की बातें लिखी हैं। विपर्यय नाम उलटे का है अथवा असंभव का। जो बातें नित्य प्रति के व्यवहार में देखने सुनने में आती हैं उनसे नियम में विरुद्ध वा प्रतिकूल जो कुछ कहा जाय वही विपर्यय है। यथा मछली का बगुले को खाना, सुग्गे (सुवा) का बिल्ली को खाना, पानी में तुंबिका का डूबना, इत्यादि। परंतु अध्यात्म पक्ष में वा अंतर्दृष्टिवाले महात्माओं के निकट इसका कुछ और ही अर्थ होता है। वह अर्थ उनकी समझ में यथार्थ है। इस "सार" ग्रंथ में केवल ४ छंद उदाहरणवत् देते हैं क्योंकि अधिक से जटिलता का भय है। कारण ऐसे छंदों की अनेक टीकाएँ हैं और हो सकती हैं। हमने तीन पुरानी टीकाओं के आधार पर (जो छंद यहाँ लिखे हैं उनकी) टीका दी है।]

सवइया छंद।

अंधा तीनि लोक कौं देषै बाहिरा सुनै बहुत विधि नाद।
नकटा बास कँवल की लेवै गूंगा करै बहुत संबाद॥
टूंटा पकरि चढावै पर्वत पंगुल करै नृत्य अहलाद।
जो कोउ याकौ अर्थ विचारै सुंदर सोई पावै स्वाद॥ १॥

---

१ "अंधा तीनि लोक"......इत्यादि—(अंधा) बाह्यजगत से मुंह मोड़ अंतर्मुखी जो हो गया वह ज्ञानी (तीनि लोक) स्थूल, सूक्ष्म और कारण अथवा भूर्भुवःस्वः या प्रसिद्ध तीन लोकों को, (देषै) बाह्य दृष्टि से अपंग होने पर, अंतर्दृष्टि के बल से, हस्तामलकवत्, प्रत्यक्ष करे। (बाहिरा) जगत के वाद विवाद से रहित हो कर श्रोत्रेन्द्रिय को वश करनेवाला योगी वा ज्ञानी (बहुत विधि नाद) इस प्रकार योग

कुंजर कौं कीरी गिलि बैठी सिंघइ षाइ अघानौ स्याल ।
मछरी अग्नि मांहि सुख पायौ जल मैं हुती बहुत बेहाल ॥
पंगु चढ्यौ पर्वत कै ऊपर मृतकहि देषि डरानौ काल ।
जाकौ अनुभव होइ सु जानै सुंदर ऐसा उलटा ष्याल ॥ ३ ॥

विद्या में प्रसिद्ध अनाहत (अनहद) नाद—आवाजें वा बाजे—(सुने) सुनने की सामर्थ्य प्राप्त करै । (नकटा) ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होने से लोकलाज कुलकान आदि तुच्छ व्यावहारिक भ्रमों को त्यागनेवाला, नासा इंद्रिय को वशवर्त्ती करनेवाला, ज्ञानी निःशंक निर्भय हो (कमल की वास लेवै) ब्रह्म कमल—सहस्र दलाकार, ब्रह्मचक्र वा विशुद्ध चक्र—की सुगंधि अर्थात् ब्रह्मानंद का रसास्वाद ले। यहाँ सात्विक वृत्ति भौंरा और ब्रह्मकमल सुवास का आधार माना गया है । (गूंगा) जगत् संबंधी वाणी—वैखरी और मध्यमा तथा श्रवणादि अभ्यास से आगे बढ़ा हुआ ज्ञानी वा मौनी (बहुत संवाद करै) अंतर्वृत्तियों को उत्कर्ष और उन्नति करता है, ब्रह्मनिरूपण मनन निदिध्यास से बढ़ता है । (टूटा) क्रिया रहित (पर्वत पकरि उठावै) पापादि कर्मजन्य संस्कारों के महान बोझ को पुरुषार्थ से निष्फल कर के मिटा दे। (पंगुल) त्रिगुणता रहित महात्मा (नृत्य आल्हाद करै) अति चतुरता से भगवत् का ध्यान करै और परमानंद पावै । (जो कोउ...) इस विपर्यय के सवैया के वास्तविक अध्यात्म गूढ़ अर्थ को जो मुमुक्षु पुरुष समझ ले उसको परम ज्ञान का स्वाद वा चसका मिल जाय ।

१ "कुंजर..." इत्यादि । (कीरी) अति सूक्ष्म व्यवसायात्मिका बुद्धि (कुंजर को) मदोन्मत्त विवेकशून्यता रूपी अवस्था से ही काम रूपी हाथी महास्थूलकाय वा बली जिससे ब्रह्मादि भी काँपें उसको (गिलि बैठी) छोटा मुंह होने पर भी बड़े को निगल गई अर्थात् संपूर्ण को यों का यों अचक खा गई कि उसका नाम निशान तक पाछे न

बूंद हि मांहि समुद्र समानौ राई मांहि समानो मेर।
पानी माहिं तुंबिका डूबी पाहन तिरत न लागी बेर ॥

रहा। विवेक प्रबल होने पर काम का नाश होता ही है। (बैठी) जब शत्रु का दमन हो गया वा उसको भक्षण ही कर लिया तो तृप्त और शांत हो कर स्वयं भी निष्क्रिय हो गई। (स्याल) यह जीव अपने स्वरूप को भूल कर उपाधियों के आवरण से आच्छादित रह कर कायरता और दीनता को प्राप्त हो कर मानों स्याल (शृगाल) बना सा था। सो ही गुरु की कृपा और शास्त्र के श्रवण मननादि से साधन औ पूर्व स्वरूप की स्मृति जाग्रत होने से ज्ञान को प्राप्त कर स्वस्वरूप को पुनः धारण कर सिंह हो गया और (सिंघहि पाय अघानो) संशय विपर्यय जो इस जीव को परंपरा के कर्मबंध के आवरण से सिंह के समान डरावना और पराक्रमी घातक प्रतीत होता था उसको आप सिंह है यह यथार्थ ज्ञान पाने से, खा गया अर्थात् मार कर मिटा दिया और उसके खाने से धाप गया, तृप्त हो गया। संशय की निवृत्ति से, निर्वात-स्थान में रख दीप की शिखा की नाई, आत्मा अचल और स्वस्वरूप में आनंद तृप्त हो गया। (मछली) मनसा वा मनोवृत्ति (जल में) जल बिंदु से उत्पन्न और उसी के आधार से स्थित रहनेवाली काया में (बहुत बेहाल हुती) अत्यंत बेहाल, बुरे हाल में, दुखी रहती थी। सो अब (अग्नि माँहि) ज्ञान रूपी आग में, जिससे यावत्कर्म, ईंधन, भस्म हो जाते हैं। 'ज्ञानाग्नि दग्ध कर्म्माणं' इति गीता। (सुख पायो) वास्तविक सुख जो ब्रह्मानंद है उसको प्राप्त किया। (पंगु पर्वत पर चढ्यो) कामना रहित मन वा ज्ञानी पुरुष, यावत् स्पंद वा हलन चलन क्रिया, इच्छा विचार या कामना से होती है और कामना ही मिट जाय तो क्रिया कैसे हो, निर्विकल्पता की अवस्था को प्राप्त हो कर अब मे ऐसा सक्षम हो गया कि अति ऊंचे और कठिन अगता गमना

तीनि लोक में भया तमासा सूरज कियौ सकल अंधेर।
मूरख होइ सु अर्थहि पावै सुंदर कहै शब्द में फेर॥ ४॥

रूपी पर्वत पर चढ़ा अर्थात् उसको वश में किया वा विजय वा निवृत्त कर दिया। (मृतकहि देष डराने काल) योगसिद्ध जीवन्मुक्त ज्ञानी को देख कर सब को दंड देनेवाला कराल काल भी भय मानता है। अर्थात् ज्ञानी की गति काल को भी छेक जाती है, वह काल के वश में नहीं रहता। (जाको अनुभव...) जिस ज्ञानी पुरुष का ऐसा अनुभव होता है वही वास्तविक रहस्य को जान सकता है। क्योंकि स्थूल बुद्धि से तो यह सब उलटा सा प्रतीत होता है, जब तत्व की प्राप्ति होती है तो जो उलटा है वह भी सुलटा दीख जाता है।

१ "बूंदहि मांहि" इत्यादि। (बूंद मांहि) अत्यंत अणु वा सूक्ष्म जीव में वा विंदु बुदबुदा समान शरीर रूपी पदार्थों में (समुद्र समानौं) अनंत और अति बृहत् ब्रह्म में समा गया व्याप गया। क्योंकि ब्रह्म अणु से भी अणु सूक्ष्म और व्यापक है, ब्रह्म ज्ञान के साधन और गुरु कृपा से जीव को यह अनुभव हुआ। (राई मांहि) राई कहिये सूक्ष्म सुंदर भगवद्भक्ति में (मेर समानौं) अति विशाल विस्तृत होने की शक्ति रखनेवाला यह संकल्प विकल्पात्मक मन, लीन हो गया अर्थात् वृत्ति रहित हो कर लुप्त हो गया। (पानी मांहि) अति तरल सर्व रस शिरोमणि तृप्तिकारण निर्मल प्रेम के अंदर (तुंबिका डूबी) शरीर जो, सांसारिक कर्मरूपी वायु के भरे रहने से ऊपर ही तिर रहा था सो रोम रोम में प्रेम भर जाने से वह हवा तो बाहर निकल गई और प्रेम रूपी जल सर्वत्र प्रवेश करने से उस ही में निमग्न हो गया अथवा जो कड़वी तूंबडी समान है सो प्रेमामृत के भरने से अमृत समान मीठा और शुद्ध हो गया। (पाहन तिरत न लागी बेर) भक्तिहीन जनों का हृदय पत्थर सा कड़ा वा भारी होता है सो

मछरी बगुला कौं गहि षायौ मूसै षायौ कारो सांप।
सूवै पकरि बिलइया षाई ताके सुयें गयौ संताप॥
बेटी अपनी मा गहि षाई बेटै अपनौ षायौ बाप।
सुंदर कहै सुनो रे संतहु तिनकौं कोउ न लागो पाप॥५॥

भक्ति पाने से परिवर्त्तित हो गया अर्थात् कोमल और फूल सा हलका हो गया अथवा राम नाम के प्रवाह से पत्थर का पानी पर तिरना रामायणादि ग्रंथों में प्रसिद्ध ही है। प्रयोजन यह है कि भक्ति और ज्ञान के संपर्क से जीव का स्थूल आवरण वा उपाधि निवृत्त हो कर उसमें आत्मता की सूक्ष्मपरता आ जाती है, सो विषय वेदांत वा योग में प्रसिद्ध है। (तीन लोक...अंधेर) तीनों लोकों में अर्थात् सर्वत्र, यह एक आश्चर्य की बात हुई कि सूर्य के प्रकाश से अंधेरा हो गया अर्थात् ज्ञान रूपी सूर्य से अथवा परमात्मा के साक्षात्कार या अपरोक्ष ज्ञान से विद्यमान सृष्टि वा प्रकृति का अभाव हो गया और "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" यह सिद्धांत अनुभव में सिद्ध हो गया। (सूरत होय सो अर्थ हि जाने) जगत् के व्यवहार से जो विमुख हो गया अर्थात् संसार में जो व्यवहाररहित (गुणातीत) हो चुका वही ज्ञानी अपने अनुभव में इसका गूढ़ अर्थ पा सकता है। (सुंदर कहै शब्द में फेर) फेर कहिये चक्कर वा विपरीतता। "बोली ही में फेर, लाख टका को सेर"। जो वचन साधारण पुरुष को कुछ और अर्थ का द्योतक होवे वही ज्ञानी को किसी सूक्ष्म रहस्य वा आत्मा संबंधी महान् भावपूर्ण अर्थ का साधक बनता है।

१ "मछरी बगुला को"...इत्यादि। (मछरी) सात्विक वृत्तिवाली मनसा जो ज्ञान या प्रेम रूपी जल में निवास करती है, (बगुला को) ऊपर से उजला परंतु भीतर से मैला ऐसा दंभ या कपट रूप, दिखावटी ज्ञान वा भक्ति (गहि खायो) को पकड़ कर खा गई, अर्थात् मिटा

(२३) आपुने भाव को अंग ।

मनहर छंद ।

जैसैं स्वान काच के सदन मध्य देषि और,
भूंकि भूंकि मरत करत अभिमान जू ।

दिया, निवारण कर दिया । पहले बाहरी कर्त्तव्य अंतरंग वृत्तियों और शांति को उत्पन्न नहीं होने देते थे, परंतु अब गुरु कृपा के कारण वह विघ्न करनेवाला ही मिट गया । (मूसै कारो नागहिं खायो) ज्ञान की शक्ति पाए हुए मन वा विवेकरूपी चूहे ने संशय, संदेह रूपी कालुष्यवाले काले सांप को खाया अर्थात् वह उस ही में लय हो गया । (सूवै बिलाई पकरि पाई...) अति चपल सुंदर प्राणात्मा (जो शरीर के पिंजरे में रहता है) सूवे ने ईर्षा द्वेष वा द्वंदता रूपी (मंजरी आखोंवाली) बिलाई को खा लिया अर्थात् संत जन इस ईर्षा से विमुक्त होते हैं और इसके मिटने ही से अंतर प्राणात्मा को शांति मिलती है । (बेटी अपनी मा गहि पाई) त्रिगुणात्म माया से बुद्धि और ममता अहंता से वासना, बनती उपजती है । इससे बेटी कही गई । वासना रहित बुद्धि ने माया वा ममता को ग्रस लिया, मिटा दिया । (बेटे अपनो बाप पायो) संशय वा जिज्ञासा से ज्ञान की उत्पत्ति होती है अथवा इस अनेक तत्वमय पुद्गल (शरीर) में ज्ञान प्रकट होता है । इससे ज्ञान पुत्र और संशय वा शरीर पिता हुआ। ज्ञान के जन्मने से ही संशय रूपी पिता विलायमान हो जाता है अथवा ज्ञान के उत्पन्न होने से यह शरीर फिर नहीं होता । जीवन मरण की पुनरावृत्ति ही नहीं होती । (सुंदर कहै...न लागौ पाप) मा बाप का मार खाना महा वज्र पाप है । सो इन पुत्र पुत्रियों को कुछ भी पाप नहीं लगा वरन पुण्य हुआ क्योंकि महानंद की प्राप्ति और जीवन मरण की अप्राप्ति हो गई । इससे बढ़ कर और क्या होगा ।

जैसे गज फटिक शिलों सौं अरि तोरे दंत,
जैसैं सिंघ कूप मांहि उझकि भूलान जू ॥
जैसैं कोऊ फेरी पात फिरत देषै जगत,
तैसैं हीं सुंदर सब तेरौंई अज्ञान जू ।
आपुही को भ्रम सु तौ दूसरौ दिषाई देत,
आपुकौं विचारैं कोऊ दूसरौ न आन जू ॥ २ ॥

याही कै जागत काम याही कै जागत क्रोध,
याही कै जागत लोभ याही मोह माता है ।
याकौं याही बैरी होत याकौं याही मित्र होत,
याकौं याही सुख देत याही दुख दाता है ॥
याही ब्रह्मा याही रुद्र याही विष्णु देषियत,
याही देव दैत्य यक्ष सकल संघाता है ।
याही कौ प्रभाव सु तौ याही कौं दिषाई देत,
सुंदर कहत याही आतमा विख्याता है ॥ ४ ॥

इंदव छंद ।

अपुने भाव तें सूर सौ दीपत आपुने भाव तें चंद्र सौ भासै ।
आपुने भाव तें तारे अनंत जु आपुने भाव तें विज्जुलता सै ॥
अपुने भाव तें नूर है तेज है आपुने भाव तें ज्योति प्रकासै ।
तैसौहि ताहि दिषावत सुंदर जैसौहि होत है जाहिको आसै ॥८॥

---

१ बिल्लौर या चमकदार सफेद पत्थर । २ आप तो फिरे और जगत् फिरता दीखै—जैसे डोलरडांडा, रेल, जहाज में । ३ चमत्कृत, प्रभूत, महिमान । ४ सूर्य । ५ आदत या आशय ।

आपुने भाव तें भूलि पर्‌यो भ्रम देह स्वरूप भयौ अभिमानी।
आपुने भाव तें चंचलता अति आपुने भाव तें बुद्धि थिरानी॥
आपुने भाव तें आप बिसारत आपुने भाव तें आतम ज्ञानी।
सुंदर जैसौहि भाव है आपुन तैसौ हि होय गयौ यह प्रानी॥१२॥

---

(२४) स्वरूप विस्मरण को अंग।

इंदव छंद।

जा घट की उनहार है जैसि हि ता घट चेतनि[1] तैसौहि दीसै।
हाथी की देह में हाथी सौ मानत चींटी की देह मैं चीटी की रीसै[2]
सिंघ की देह में सिंघ सो मानत कीश[3] की देह मैं मानत कीशै।
जैसि उपाधि भई जहां सुंदर तैसौहि होइ रह्यौ नख शीशै॥१॥
ज्यौं कोउ मद्य पियें अति छाकत नाहिं कछू सुधि है भ्रम ऐसौ।
ज्यौं कोउ षाइ रहै ठग मूरिहिं जानै नहीं कछु कारन तैसौ॥
ज्यौं कोउ बालक शंकै[4] उपावत कंपि उठै अरु मानत भैसौ।
तैसैंहिं सुंदर आपुकौं भूलि सु देषहु चेतनि मानत कैसौ॥५॥
एकइ व्यापक वस्तु निरंतर विश्व नहीं यह ब्रह्म विलासै।
ज्यौं नट मंत्रनि सौं दिठ बांधत है कछु औरइ औरइ भासै॥
ज्यौं रजनी महिं बूझि परै नहिं जौं लगि सूरज नाहिं प्रकासै।
त्यौं यह आपुहि आपु न जानत सुंदर ह्वैरह्यौ सुंदरदासै॥८॥

---

१ चैतन्यशक्ति जिसकी सत्ता बिना कोई भी पदार्थ न हो सकता है न रह सकता है। २ कीरी + सै = कीरी जैसा अथवा रीसै = होड, अनुहार, समान हो। ३ बंदर। ४ शंका, वहम, हाक।

मनहर छंद।

जैसैं शुक नलिका न छाडि देत चुंगल तैं,
जानैं काहू औरै मोहि बांधि लटकायौ है।
जैसैं कपि गुंजनि[1] कौ ढेर करि मानै आगि,
आगै धरि तापै कछु शीत न गमायौ है॥
जैसैं कोऊ दिशा भूलि जात हुतौ पूरब कौं,
उलटि अपूठो फेरि पछिम कौं आयौं है।
तैसैंहि सुंदर सब आपुही कौं भ्रम भयौ,
आपुही कौं भूलि करि आपुही बँधायौ है॥१०॥

[इसी प्रकार अनेक उत्तम उत्तम दृष्टांत देकर इस बात को समझाया है कि यह जगत की विचित्र लीला और व्यवहार अपने ही अहंकार का विचार, भ्रम, वा विकार है। जब ज्ञानप्राप्ति से यह निश्चय हो जाय कि यह अपना ही भ्रम है तत्क्षण भ्रम नाश हो जाता है —]

"तैसैं ही सुंदर यह भ्रम करि भूल्यौ आपु,
भ्रम कैं गयें तैं यह आतमा सदाई है" ॥१४॥

[भ्रम जब तक आत्म स्वरूप की अपरोक्षता नहीं होती, देह स्वरूप का अभिमानी बनकर अपने को भूल जाता है मानो कोई अपने आपको भूल कर उस को ढूंढता है। हाथ कंकण को आरसी न देखकर कांच में देखता है।]

---

१ चिरमटी लाल रंग की। इसके ढेर का लाल रंग देख कर बंदर इसको आग समझ तापता है, ऐसा किस्सा प्रसिद्ध है।

इंदव छंद।

आपुहि चेतनि ब्रह्म अखंडित सो भ्रम तें कछु अन्य पेरेषै।
ढूंढ़त ताहि फिरै जित ही तित साधत योग बनावत भेषै॥
औरउ कष्ट करै अति सै करि प्रत्यक आतम तत्व न पेषै।
सुंदर भूलि गयौ निज रूपहि है कर कंकण दर्पण देषै॥१९॥
ज्यौं रवि कौं रवि ढूँढ़त है कहुँ तृप्ति मिलै तनु शीत गवाऊँ।
ज्यौं शशि कौं शशि चाहत है पुनि शीतल ह्वै करि तृप्ति बुझाऊँ॥
ज्यौं कोउ भ्रांति भये नर टेरत है घर मैं अपने घर जाऊँ।
त्यौं यह सुंदर भूलि स्वरूप हि ब्रह्म कहै कब ब्रह्महि पाऊँ॥२१॥
मैं सुखिया सुख सेज सुखासन है गये भूमि महा रजधानी।
हौं दुखिया दिन रैनि भरौं दुख मोहि विपत्ति परी नहिं छानी॥
हौं अति उत्तम जाति बड़ौ कुल हौं अति नीच क्रिया कुल हानी।
सुंदर चेतन तान सँभारत देह स्वरूप भयौ अभिमानी॥२४॥

---

(२५) सांख्य ज्ञान को अंग।

[सांख्य को वर्णन ज्ञान समुद्र में भी सुंदरदासजी ने भले प्रकार किया है। यहां भी जो वर्णन है वह प्रक्रिया से तो है नहीं केवल काव्य रूप में इतस्ततः प्रसंगवश सांख्य विषय की जो रचना हुई उसी का संग्रह प्रतीत होता है अथवा सांख्य पर संगृहीत विचारों को इंदव आदि छंदों में सरल और साधारण रीति से समझाने के अर्थ अथवा

---

१ दिखाई दे, प्रतीत हो। २ प्रत्यगात्मा—शुद्ध निर्मल चेतन स्वरूप आत्मा—निर्गुण ब्रह्म, माया से असम्बद्ध। ३ भ्रम, बावलापन। होता हुआ, जब तक है तब तक।

दादू वाणी पर टीका रूप इन छंदों का निर्माण हुआ है। यह अंग भी सवैया ग्रंथ में उत्तम अंगों में से है। इसके कई छंदों में बड़ा ही चमत्कार है और सांख्य की बातों का अच्छा समीकरण किया है। प्रथम तीन चार छंदों में २४ तत्वों को गिनाया है। इंद्रियों के देवता और इंद्रियों के कर्म बताए हैं फिर आत्मा की इनसे भिन्नता दिखलाई है। फिर प्रश्नोत्तर रूप से सृष्टि का दिग्दर्शन किया है और उसीमें आत्म और अनात्म का भेद और स्वस्वरूप का निरूपण भी कर दिया है।]

मनहर छंद।

क्षिति जल पावक पवन नभ मिलि करि,
सबद रु सपरश रूप रस गंध जू।
श्रोत त्वक चक्षु घ्राण रसना रस को ज्ञान॥
वाक्य पाणि पाद पायु उपस्थ बंध जू॥
मन बुद्धि चित्त अहंकार ये चौबीस तत्व,
पंचविंश जीव तत्व करत है धंध जू।
षडविंश को है ब्रह्म सुंदर सुनिहै कर्म,
व्यापक अखंड एक रस निरबंध जू॥ १॥

---

१ सांख्य में प्रतिपादित २४ तत्व ये हैं। पंच महाभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश। ५ ज्ञानेंद्रिय—जिह्वा, कान, नाक, आंख और त्वचा। ५ विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध। ५ कर्मेंद्रिय—वाणी, हाथ, पांव, पायु और उपस्थ। ४ अंतःकरण—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। ये सब प्रकृति के अंतर्गत हैं। पचीसवां जीव और जीव जो प्रकृति से असंबद्ध हो तो वही छब्बीसवां पदार्थ ब्रह्म है।

श्रोत्र दिक त्वक वायु लोचन प्रकासै रवि,
नासिका अश्विनी जिह्वा वरुण वषानिये।
वाक अग्नि हस्त इंद्र चरण उपेंद्र बल,
मेढ्र प्रजापति गुदा मित्रहु कौं ठानिये।
मन चंद्र बुद्धि विधि चित्त वासुदेव आहि,
अहंकार रुद्र को प्रभाव करि मानिये।
जाकी सत्ता पाइ सब देवता प्रकाशत हैं,
सुंदर सु आतमा हिं न्यारौ करि जानियें ॥ २ ॥

इंदव छंद।

श्रोत्र सुनै दृग देषत हैं रसना रस घ्राण सुगंध पियारौ।
कोमलता त्वक जानत है पुनि बोलत है मुख शब्द उचारौ ॥
पानि ग्रहै पद गौन करै मल मूत्र तजै उभऊ अध द्वारौ।
जाकै प्रकाश प्रकाशत हैं सब सुंदर सोइ रहै घट न्यारौ ॥ ३ ॥

मनहर छंद। प्रश्न।

कैसैं के जगत यह रच्यौ है जगतगुरु,
मोसौं कहो प्रथम हिं कौन तत्त्व कीनौ है।

---

१ इस छंद में इंद्रियों और अंतःकरण चतुष्टय के १४ देवताओं को दिया है। कान का दिक। त्वचा का वायु। आंख का सूर्य। नाक का अश्विनीकुमार। जीभ का वरुण। वाणी का अग्नि। हाथ का इंद्र। पांव का उपेंद्र। मेढ्र का प्रजापति। गुदा का मित्रदेव। मन का चंद्रमा। बुद्धि का ब्रह्मा। चित्त का विष्णु। अहंकार का शिव। इन सब देवताओं की शक्ति जिससे है वही सर्वेश परमात्मा है। २ इसमें सब इंद्रियों के गुण कर्म कहे हैं और वे सब परमात्मा की सत्ता से कर्म करती है।

प्रकृति कि पुरुष कि महतत्व अहंकार,
किधौं उपजावें सत रज तम तीनो है॥
किधौं व्योम वायु तेज आपु कै अवनि कीन,
किधौं पंच विषय पसारि करि लीनौं है।
किधौं दश इंद्री किधौं अंतःकरण कीन।
सुंदर कहत किधौं सकल विहीनौं है॥ ६॥

उत्तर।

ब्रह्म तें पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई,
प्रकृति तें महतत्व पुनि अहंकार है।
अहंकार हूं तें तीन गुन सत्व रज तम,
तम हूं तें महाभूत विषय पसार है॥
रज हूं तें इंद्री दश पृथक पृथक भई,
सत्व हूं तें मन आदि देवता विचार है।
ऐसे अनुक्रम करि शिष्य सों कहत गुरु,
सुंदर सकल यह मिथ्या भ्रम जार है॥ ७॥

प्रश्न।

मेरो रूप भूमि है कि मेरो रूप आप है कि
मेरो रूप तेज है कि मेरो रूप पौन है।
मेरो रूप व्योम है कि मेरो रूप इंद्री है कि
अंतहकरण है कि पैठौ है कि गौन है॥

---

१ सकल पिंड में परमात्मा पृथक है अथवा उसके बिना ही बन गया है। २ जाल। ३ गमन—गतिवाला।

मेरौ रूप त्रिगुण कि अहंकार महत्तत्व,
प्रकृति पुरुष किधौं बोलै है कि मौन है।
मेरौ रूप स्थूल है कि शून्य आहि मेरौ रूप,
सुंदर पूछत गुरु मेरौ रूप कौन है॥ ८॥

उत्तर।

तूं तो कछु भूमि नाहिं आप तेज वायु नाहिं,
व्योम पंच विषै नाहिं सो तो भ्रम कूप है।
तूं तौ कछु इंद्री अरु अंतहकरण नाहिं,
तीनों गुणऊ तू नाहिं सोऊ छाँह धूप है॥
तूं तौ अहंकार नाहिं पुनि महत्तत्व नाहिं,
प्रकृति पुरुष नाहिं तू तौ सु अनूप है।
सुंदर विचारि ऐसे शिष्य सों कहत गुरु,
नाहिं नाहिं करतें रहसु तेरौ रूप है॥ ९॥
देहई नरक रूप दुःख कौ न वार पार,
देहई जू स्वर्ग रूप झूठौ सुख मान्यौ है।
देहई कौ बंध मोक्ष देहई अपरोक्ष मोक्ष,
देहई के क्रिया कर्म सुभासुभ ठान्यौ है॥
देहई में और देह खुसी ह्वै विलास करै,
ताही को समुझि बिन आतमा बखान्यौ है।

---

१ नेति नेति का प्रयोजन है। यह भी नहीं। इस प्रकार नहीं। वह वेदों का निश्चय है। २ अपरोक्ष=प्रत्यक्ष, साक्षात्। परोक्ष=छिपा हुआ। देह में परमात्मा है और नहीं प्रत्यक्ष होता और जिनको हुआ है उनको इस देह में ही अर्थात् अंतःकरण की खिड़की में हो कर मिल गया। ३ सूक्ष्म शरीर और उसमें कारण शरीर।

दोऊ देह में अलिप्त दोऊ कौं प्रकाश कहै,
सुंदर चेतन रूप न्यारौ करि जान्यौ है ॥ १४ ॥

प्रश्नोत्तर ।

देह यह कौन को है देह पंच भूतनि कौ,
पंच भूत कौन तें हैं तामसाहंकार तें ।
अहंकार कौन तें है जासौं महत्तत्व कहैं,
महत्तत्व कौन हैं प्रकृति मँझार तें ।
प्रकृति हू कौन तें है पुरुष है जाकौ नाम,
पुरुष सो कौन तें हैं ब्रह्म निरधार तें ।
ब्रह्म अब जान्यौ हम जान्यौ है तो निश्चै करि,
निश्चै हम कियौ है तौ चुप मुखद्वारै तें ॥ १५ ॥

भूमि परें अप अपहू के परें पावक है,
पावक के परे पुनि वायु हू बहतु है ।
वायु परें व्योम व्योम हू के परें इंद्री दश,
इंद्रीन के परे अंतःकरण रहतु है ॥
अंतहकरण परे तीनों गुण अहंकार,
अहंकार परें महत्तत्व कौ लहतु है ।
महत्तत्व परें मूल-माया माया परें ब्रह्म,
ताही तें परातपर सुंदर कहतु है ॥ १६ ॥

देह जड़ देवल मैं आतमा चैतन्य देव,
याही कौं समुझि करि यासौं मन लाइये ।

---

१ मध्य, बीच, भीतर । २ ईश्वर, मायाविशिष्ट । ३ परमात्मा, मायारहित । ४ स्थूल वाणी से कहने का तात्पर्य नहीं । ५ पर शब्द—स्थूलता, सूक्ष्मता और सूक्ष्मतरता तथा परता का द्योतक है ।

देवल कौं विनसत वार नाहिं लागै कछु,
देव तौ सदा अभंग देवल मैं पाइये ॥
देव की शकति करि देवल की पूजा होइ,
भोजन विविध भांति भोग हू लगाइये।
देवल तें न्यारौ देव देवल मैं देषियत,
सुंदर विराजमान और कहां जाइये[1] ॥ २० ॥

प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और
चित्त सौं न चंदन सनेह सौं न सेहरा।
हृदै सौं न आसन सहज सौं न सिंघासन,
भावसी न सौंज और शून्य सौं न गेहरा ॥
शील सौं सनान नाहिं ध्यान सौं न धूप और
ज्ञान सौं न दीपक अज्ञान तम केहरा[2]।
मन सी न माला कोऊ सोऽहं सो न जाप और,
आतमा सौं देव नाहिं देह सौं न देहरा[3] ॥ २२ ॥

क्षीर नीर मिलि दोऊ एकठेई होइ रहे,
नीर छाड़ि हंस जैसे क्षीर कौं गहतु है।
कंचन मैं और धात[4] मिलि करि वांन पर्‌यौ,
शुद्ध करि कंचन सुनार ज्यौं लहतु है।

---

१ अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है जब कि घट ही में विद्यमान है। २ हरनेवाला। ३ यह छंद सुंदरदास जी ने बनारसीदास जी जैन कवि को लिख भेजा था। ४ मिला हुआ धातु। वान = खोटा सोना। यथा 'सोने की वह नार कहावै। बिना कसौटी वान किसावै' (सौदा कवि)।

पावक हू दारु मध्य दारु ही सो ह्वै रह्यौ,
मथि करि काढ़ै वाही दारु कौ दहतु है ।
वैसेही सुंदर मिल्यौ आतमा अनातमा जू,
भिन्न भिन्न करिये सु तौ सांख्य कहतु है ॥ २३ ॥

अन्नमय कोश सु तौ पिंड है प्रगट यह,
प्रानमय कोश पांच वायुहू वषानिये ।
मनोमय कोश पंचकर्म इंद्रिय प्रसिद्ध,
पंच ज्ञान इंद्रिय विज्ञान कोश जानिये ॥
जाग्रत रु स्वप्न विषै कहिये चत्वार कोश,
सुषुप्ति मांहि कोश आनंद मय मानिये ।
पंचकोश आतम को जीव नाम कहियतु है,
सुंदर शंकर भाष्य सांख्य यह आनिये ॥ २४ ॥

जाग्रत अवस्था जैसैं सदन मांहि बैठियत,
तहां कछु होइ ताहि भली भांति देषिये ।
स्वपन अवस्था जैसैं वोवेरे में पैठे जाइ,
रहैं रहैं उहांऊ की वस्तु सब देषिये ॥
सुषुपति भौंहरे मैं पैठे वे न सूझि परै,
महा अंध घोर तहां कछुव न पेषिये ।

---

१ काठ । २ व्यास जी के बनाए वेदांत सूत्र पर जिनको शारीरिक भी कहते हैं शंकराचार्य जी ने टीका रची है उनको भाष्य या वेदांत भाष्य भी कहते हैं । ३ मिट्टी का कोठा या ऊंचा कुंड या कोठी समान आदि रखने की । ४ तहखाना, अंधेरा घर ।

व्योम अनंसूत घर वोवरे भौंहरे माहि,
सुंदर साक्षी स्वरूप तुरिया विशेषिये ॥ २५ ॥

इंदव छंद ।

जाग्रत रूप लिये सब तत्वनि इंद्रिय द्वार करै व्यवहारौ ।
स्वप्न शरीर भ्रमै नव[2] तत्व कौ मानत हैं सुख दुःख अपारौ ॥
लीन सबै गुन होत सुषोपति जानै नांहिं कछु घोर अँधारौ ।
तीनों को साक्षी रहे तुरियातत[3] सुंदर सोइ स्वरूप हमारौ ॥२७॥
भूमि तें सूक्षम आपको जानहु आपते सूक्षम तेज को अंगा ।
तेज तें सूक्षम वायु वहै नित वायु तें सूक्षम व्योम उतंगा ॥
व्योम तें सूक्षम हैं गुन तीन तिहूंतें अहं महत्तत्व प्रसंगा ।
ताहुतें सूक्षम मूल प्रकृति जु मूल तें सुंदर ब्रह्म अभंगा ॥२८॥
ब्रह्म निरंतर व्यापक अग्नि अरूप अखंडित है सब मांहीं ।
ईश्वर पावक रासि प्रचंड जु संग उपाधि लिये वरताहीं ॥
जीव अनंत मसाल चिराग सुदीप पतंग अनेक दिषाहीं ।
सुंदर द्वैत उपाधि मिटै जब ईश्वर जीव जुदे कछु नाहीं ॥२९॥
ज्यौं नर पावक लोह तपावत पावक लोह मिलै सु दिषाहीं ।
चोट अनेक परैं घन की सिर लोह बधै कछु पावक नांही ॥
पावक लीन भयौ अपनै घर शीतल लोह भयौ तब तांही ।
त्यौं यह आतम देह निरंतर सुंदर भिन्न रहै मिलि मांही ॥३०
आतम चेतनि शुद्ध निरंतर भिन्न रहै कहुं लिप्त न होई ।
है जड़ चेतन अंतहकर्ण जु शुद्ध अशुद्ध लिये गुन दोई ॥

---

१ अनुस्यूत = भले प्रकार मिला हुआ, सर्वव्यापक । २ सूक्ष्म शरीर में ५ ज्ञानेंद्रिय + अंतःकरण चतुष्टय । ३ तुरीयावस्था में फैलनेवाला वा तत्व वा अतीत ।

देह अशुद्ध मलीन महा जड़ हालि न चालि सकै पुनि सोई।
सुंदर तीनि विभाग किये बिन भूलि परै भ्रम तें सब कोई ॥३१॥

सवइया छंद।

देह सराव तेल पुनि मारुत[२] बाती अंतःकरण विचार।
प्रगट जोति यह चेतनि दीसै जातैं भया सकल उजियार॥
व्यापक अग्नि मथन करि जोये दीपक बहुत भांति विस्तार।
सुंदर अद्भुत रचना तेरी तूं ही एक अनेक प्रकार ॥३२॥
तिल मैं तेल दूध मैं घृत है दारु मांहि पावक पहिचानि।
पुहपु मांहि ज्यौं प्रगट वासना इक्षु मांहि रस कहत बखानि॥
पोसत मांहि अफीम निरंतर बनस्पती मैं महत बखानि।
सुंदर भिन्न मिल्यौ पुनि दीसत देह मांहि यौं आतम जानि॥

---

(२६) विचार को अंग।

[मनुष्य को परमात्मा ने विचार शक्ति दी इसीसे मनुष्य इस लोक में सर्वश्रेष्ठ होता है। इस शक्ति की उन्नति ही से मनुष्य का गौरव बढ़ता है। तथा परलोक में सद्गति भी इस विचार शक्ति ही से प्राप्त होती है। विवेक का व्यापार ही आत्म और अनात्म की

---

१ जड़ पदार्थ वह है जिसमें चेतन का स्पंद नहीं अर्थात् स्वयं चलनादि क्रियाओं में नहीं रहता। परंतु इस जड़ में चेतनसत्ता का अभाव नहीं समझना चाहिए किंतु सृष्टि का एक क्रम मात्र ही जानो। चेतनसत्ता जो जैसी जड़ में है वैसी ही जीवधारियों में है केवल स्पंद और विकास का रूपांतर मात्र है। २ मारुत = पवन अर्थात् हवा या प्राण।

कक्षाओं से निकाल कर आगे ले जाता है और सूक्ष्म परमात्म तत्व की धारणा के योग्य बनाता है। विवेक ही से उपाधि और भ्रम का नाश होकर सत्य वस्तु का ग्रहण होता है। बुद्धि तक जो आवरण है वह स्वव्यापार से खड़िया की नांई घिसकर नष्ट होने से स्वस्वरूप प्रगट होता है। इस अंग में कई दार्शनिक सूक्ष्म बातें श्रीस्वामी जी ने कही हैं।]

मनहर छंद।

देषै तौ विचार करि सुनै तौ विचार करि,
बोलै तौ विचार करि करै तौ विचार है।
षाइ तौ विचार करि पीवै तौ विचार करि,
सोवै तौ विचार करि तौ ही तौ उवार है॥
बैठे तौ विचार करि ऊठै तौ विचार करि,
चलै तौ विचार करि सोई सत सार है।
देई तौ विचार करि लेइ तौ विचार करि,
सुंदर विचार करि याही निरधार है॥ १॥

इंदव छंद।

एक हि कूप के नीर तें सींचत
इक्षु अफीम हि अंब अनारा।
होत उहै जल स्वाद अनेकनि
मिष्ट कटूक षटा अरु षारा॥
त्यौंहि उपाधि संजोग ते आतम
दीसत आहि मिल्यौ सौ विकारा।

काढ़ि लिये जु विचार विवेकत
सुंदर शुद्ध स्वरूप है न्यारा[1] ॥ ७ ॥
रूप परा कौ न जानि परै कछु
ऊठत है जिहि मूल तें छानी।
नाभि विषै मिलि सप्त स्वरनि
पुरुष संजोग पश्यंति वषानी ॥
नाद संयोग हृदै पुनि कंठ जु
मध्यमा याही विचार तें जानी।
अक्षर भेद लियें मुख द्वार सु
बोलत सुंदर बैषरि बानी[2] ॥ ८ ॥
कर्म शुभाशुभ की रजनी पुनि
अर्द्ध तमोमय अर्द्ध उजारी।
भक्ति सु तौ यह है अरुणोदय
अंत निसा दिन संधि विचारी ॥
ज्ञान सु भान सदोदित भासत
वेद पुरान कहैं जु पुकारी।
सुंदर तीन प्रभाव वषानत यौं
निह्चै समुझै विधि सारी[3] ॥ ९ ॥

---

१ सूर्य। उपाधि रहित होने से शुद्ध आत्मा ऐसा है जैसे सूर्य के आने से बादल आदि विकार दूर होते है। २ इसमें परा, पश्यंती, मध्यमा और बैखरी चारों प्रकार की वाणियों का वर्णन है जो स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीया अवस्थाओं में वर्तती है। ३ कर्म, भक्ति और ज्ञान का रूप रात्रि, प्रभात और दिन के रूपक से बताया है। सब में ज्ञान की प्रधानता है।

मनहर छंद ।

आतमा के विषै[1] देह आइ करि नाश होहि,
आतमा अखंड सदा एकई रहतु है ।
जैसै सांप कंचुकी कौं लिये रहै कोऊ दिन,
जीरन उतारि करि नूतन गहतु है ॥
जैसैं द्रुमहू के पत्र फूल फल आइ होत,
तिनके गयें ते द्रुम औरउ लहतु है ।
जैसैं व्योम मांहि अभ्र होइ कैं विलाइ जात,
ऐसौ सौ विचार कछु सुंदर कहतु है ॥१३॥
षरी की डरी सौं अंक लिषि कैं विचारियत,
लिषत लिषत वहै डरी घसि जात है ।
ऐसौ समुझ्यौ है जब समुझि परी है तब,
जोई कछु सही भयौ सोई ठहरात है ॥
दार ही सौं दार मथि पावक प्रगट भयौ,
वह दार जारि पुनि पावक समात है ।
तैसैं हि सुंदर बुद्धि ब्रह्म कौ विचार करि,
करत करत वह बुद्धि हूं विलात है ॥१४॥
आपु कौं समुझि देषि आपु ही सकल मांहि,
आपु ही मैं सकल जगत देषियतु है[2] ।

---

१ विषै शब्द के कहने से आत्मा का समुद्रवत् महान होना है ।
२ यह विचार सत्य है । वास्तविक ज्ञान तो जब अनुभव हो तब होता है । परंतु साधारण विचार से भी प्रतीति होती है । यथा सुख दुःख आदि का ज्ञान सब जीवों को समान सा है इससे जीव एक सा

जैसैं व्योम व्यापक अखंड परिपूरन है,
बादल अनेक नाना रूप लेपियतु है ॥
जैसैं भूमि घट जल तरंग पावक दीप,
वायु मैं बघूरा यौंही विश्व देपियतु है।
ऐसैं ही बिचारत बिचार हू बिलीन होइ,
सुंदर ही सुंदर रहत पेपियतु है ॥१५॥
देह कौ संयोग पाइ जीव ऐसौ नाम भयौ,
घट के संयोग घटाकाश ज्यौं कहायौ है।
ईश्वर हू सकल बिराट मैं बिराजमान,
मठ के संयोग मठाकाश नाम पायौ है ॥
महाकाश मांहि सब घट मठ देषियत,
बाहर भीतर एक गगन समायौ है।
तैसैं ही सुंदर ब्रह्म ईश्वर अनेक जीव,
त्रिविध उपाधि भेद ग्रंथनि मैं गायौ है[2] ॥१६॥
पृथ्वी भाजन अंग कनक कटक पुनि,
जल हू तरंग दोऊ देषि कै बषानियें।
कारण कारज ये तौ प्रगट ही मूल रूप,
याही तैं नजर मांहि देषि करि मानियें ॥

भासता है। इन्द्रिय-गोचर जगत का ज्ञान जीवों को स्वभावतः एक सा होता है इससे जगत का आत्मा में होना एक प्रकार अनुमानित होता है। १. जैसे लिखते लिखते स्याही का धब्बा पड़ जाता है। २. घटाकाश दृष्टांत है जीव संज्ञा का, मठाकाश ईश्वर संज्ञा का और महाकाश ब्रह्म संज्ञा का। केवल आरोपित उपाधि का भेद है जो घट मठ से आवे।

पावक पवन व्योम ये तौ नहिं देषियत,
दीपक बघूरा अभ्र प्रत्यक्ष प्रमानिये।
आतमा अरूप अति सूक्षम तें सूक्षम है,
सुंदर कारण तातें देह मैं न जानिये ॥१९॥

---

(२७) ब्रह्मनिःकलंक को अंग।

[परमात्मा नित्य शुद्ध और अलिप्त है यही निर्गुणता और कूटस्थता का संपादन है। ब्रह्म ही में सब सृष्टि समा रही है, परंतु वह सब से निर्लिप्त है। जीवों के कर्म तो जीवों को ही उपाधि और अज्ञान से बांधते हैं। आकाश की नाईं ब्रह्म सब में रह कर सब से पृथक् है। उसपर कलंक, दोष वा कोई गुणसंग का आरोपण नहीं हो सकता है। इन्हीं बातों को उदाहरणों से दरसाया गया है।]

मनहर छंद।

जैसैं जलजंतु जल ही में उतपन्न होहिं,
जलही में विचरत जल के आधार हैं।
जल ही में क्रीडत विविध विवहार होत,
काम क्रोध लोभ मोह जल में संहार हैं॥
जल कौं न लागै कछु जीवन के रोग दोष,
उनहीं के क्रिया कर्म उनहीं की लार[1] हैं॥
तैसे ही सुंदर यह ब्रह्म मैं जगत सब,
ब्रह्म कौं न लागै कछु जगत विकार है॥ २॥

---

१ लार=साथ।

स्वेदज जरायुज अंडज उद्भिज पुनि,
चारि खानि तिनके चौरासी लक्ष जंत हैं।
जलचर थलचर व्योमचर भिन्न भिन्न,
देह पंच भूतन की उपजी खपंत हैं॥
शीत घाम पवन गगन में चलत आइ,
गगन अलिप्त जामें मेघ हू अनंत हैं।
तैसेंही सुंदर यह सृष्टि एक ब्रह्म मांहि,
ब्रह्म निःकलंक सदा जानत महंत हैं॥ ४॥

---

(२८) आत्मा अनुभव को अंग।

[आत्मा का अनुभव या अपरोक्ष ज्ञान जिसको योग में निर्विकल्प समाधि का आनंद कहते हैं वह विषय है जिसके ज्ञान का पाने के लिये सब शास्त्रों का समारोह है। और यह सच बात है कि जिसका कहना सुनना और समझना अनभ्यस्त और साधारण पुरुषों का काम नहीं। यही सब तत्व ज्ञान का आधार और वेदांत और योग का अत्यंत प्रमाण है। व्यास जी ने उपनिषदों का मंथन [illegible] अंत में 'तद्गुणात्' से ही किया है। अर्थात् गुरु के ज्ञान बिना साक्षात्कार के नहीं जा सकता अथवा यह सब साक्षात् होना है इससे सिद्ध है। इस ही बात को सुंदरदास जी ने कई प्रकार से ऐसा उत्तम वर्णन किया है कि ऐसा शायद ही किसी हिंदी [illegible] ग्रंथ में मिल सके। आत्मानुभव गूंगे का सा गुड़ है। वह ऐसा पदार्थ है कि जिस प्रकार कहना चाहे उसी प्रकार कहने में नहीं

---

१ नाश होता है।

आता इसीसे इससे हार माननी पड़ती है और कहते मानों लज्जा भी आती है। यही जीते हुए का मोक्ष है, मरने पर मोक्ष कहनेवाले भ्रम में हैं। जगत का भ्रम कहा जाना भी आत्मानुभव से ही प्रतीत हो सकता है। यह सापेक्षतया आत्मा अनात्मा के ज्ञान से सिद्ध होता है। इसकी प्राप्ति श्रवन-मनन-निदिध्यासन से है। फिर साक्षात् ज्ञान होता है। इन साधनों का कई दृष्टांतों से वर्णन है]

इंदव छंद।

है दिल में दिलदार सही अँखियां उलटी करि ताहि चितइये।
आव मे षाक में बाद में आतस जान मैं सुंदर जानि जनइये॥
नूर में नूर है तेज में तेज है ज्योति में ज्योति मिलै मिलि जइये।
क्या कहिये कहतैं न बनै कछु जो कहिये कहतें ही लजइये॥१॥
जाऔं कहूं सब में वह एक तौ सौ कह कैसौ है आंषि दिखइये।
जौ कहूं रूप न रेष तिसै कछु तो सब झूठ कै मानै कहइये॥
जौं कहुं सुंदर नैननि मांझि तो नैन हू बैन गये पुनि हइये।
क्या कहिये कहतै न बनै कछु जो कहिये कहते ही लजइये॥ २॥
होत विनोद जु तौ अभि अंतर सो सुख आप में आपुहि पइये।
बाहिर कौं उमग्यौ पुनि आवत कंठ ते सुंदर फेरि पठइये॥
स्वाद निवेरे निवेर्‍यौ न जात मनौ गुर गूंगे ही ज्यों नित षइये।
क्या कहिये कहतै न बनै कछु जो कहिये कहतै ही लजइये॥३॥

---

१ मिलने से मिल जाता है अथवा उसके मिलने से उसमें लीन हो जाना होता है। २ झूठा कर के माना जायगा ऐसा कहना चाहिए। ३ नेत्रों के वाणी नहीं है—"गिरा अनैन नैन बिनु बानी"। "अदृश्य भावना नास्ति दृश्यमानो विनश्यति।" ४ जो कुछ वा जो तुम में।

एक कि दोइ न एक न दोइ उहीं कि इहीं न उहीं न इहीं है।
शून्य कि थूल न शून्य न थूल जहीं कि तहीं न जहीं न तहीं है।
मूल कि डाल न मूल न डाल वहीं कि महीं न वहीं न महीं है।
जीव कि ब्रह्म न जीव न ब्रह्म तो है कि नहीं कछु है न नहीं है ॥५॥
एक कहूं तौ अनेक सौ दीषत एक अनेक नहीं कछु ऐसो।
आदि कहूं तिहि अंतहु आवत आदि न अंत न मध्य सु कैसो॥
गोपि कहूं तौ अगोपि कहा यह गोपि अगोपि न ऊभौ न बैसो।
जोई कहूं सोइ है नहिं सुंदर है तो सही परि जैसे कौ तैसौ ॥६॥

मनहर छंद।

इंद्री नहिं जानि सकैं अक्षर ज्ञान इंद्रिन कौ,
प्रान हू न जानि सकै स्वास आवै जाइहै।
मनहू न जानि सकै संकल्प विकल्प करै,
बुद्धिहू न जानि सकै सुन्यौं सु बताइहै॥
चित्त अहंकार पुनि एऊ नाहिं जानि सकैं,
शब्द हू न जानि सकै अनुमान पाइहै।
सुंदर कहत ताहि कोऊ नाहिं जानि सकै,
दीवा करि देषिये सु ऐसो नहीं लाइहै ॥७॥

---

१ यहां या वहां—देश या स्थल से अभिप्राय है। २ तब या अब काल से प्रयोजन है। ३ बही=बाहर, महीं=मांहि, अंदर। ४ और कहने में तो बने नहीं और मत्त ही कहें तो जीव माया आदि का विचार रहेगा। ५ ऐसी जिस पुरुष के आस्था होती है उसको ऐसा ही सिद्ध हो जाता है यह सिद्धांत सत्य है। ६ लाइ=लाय, अग्नि प्रज्वलित।

इंदव छंद ।

सूर के तेज तें सूरज दीसत चंद के तेज तें चंद उजासै ।
तारे के तेज में तारेउ दीसत बिज्जुल तेज तें बिज्जु चकासै ॥
दीप के तेज तें दीपक दीसत हीरे के तेज तें हीरोउ भासै ।
तैसैहिं सुंदर आतम जानहु आपके तेज में आप प्रकासै ॥११॥
कोउ कहै यह सृष्टि सुभाव तें कोउ कहै यह कर्म तें सृष्टी ।
कोउ कहै यह काल उपावत कोउ कहै यह ईश्वर तिष्टी[1] ॥
कोउ कहै यह ऐसेहि होत है क्यौं करि मानिय बात अनिष्टी[2] ।
सुंदर एक किये अनुभौ बिनु जानि सकै नहिं बाहिज दृष्टी ॥१२॥
मूये तें मोक्ष कहै सब पंडित मूयें तें मोक्ष कहै पुनि जैना ।
मूये तें मोक्ष कहै ऋषि तापस मूये तें मोक्ष कहै शिव सैना[3] ॥
मूये तें मोक्ष मलेछ कहै तव धोषै हि धोषै वषानत बैना ।
सुंदर आतम कौ अनुभौ सोइ जीवत मोक्ष सदा सुख चैना ॥१४॥

मनहर छंद ।

पाव जिनि गह्यौ सुतौ कहत है ऊँपर सौ,
पूंछ जिनि गही तिन लाव सौ सुनायौ है ।
सूंड जिनि गही तिन दगला की बांह कह्यौ,
दांत जिनि गह्यौ तिनि मूसर दिषायौ है ॥

---

१ काल, कर्म स्वभाव, कारण यह चार सृष्टि के पृथक पृथक सिद्धांत प्रकरण है । २ बौद्धों और जैनियों ने ऐसा ही माना है । अनिष्टी= बुरी, असमीचीन । ३ सम्प्रदाय, शैव अथवा शिव मतवाले जो रहस्य वाम मार्ग में बताते हैं । ४ धान कूटने की लकड़ी की ऊपल (उलूषली) । ५ अंगरखा, प्रायः रुईदार ।

कान जिनि गह्यौ तिनि सूपसौ बनाइ कह्यौ,
पीठि जिनि गही तिनि पिटोरा बतायौ है।
जैसौ है सु तैसौ ताहि सुंदर सयांसौ[3] जानै,
आंधरनि हाथी देपि झगरा मचायौ है ॥१७॥
न्याय शास्त्र कहत है प्रगट ईश्वरवाद,
मीमांसक शास्त्र माहिं कर्मवाद कह्यौ है।
वैशेषिक शास्त्र पुनि कालवादी है प्रसिद्ध,
पातंजलि शास्त्र माहिं योग वाद लह्यौ है ॥
सांख्य शास्त्र माहिं पुनि प्रकृति पुरुषवाद,
वेदांत शास्त्र तिनहिं ब्रह्मवाद गह्यौ है।
सुंदर कहत षट् शास्त्र माहिं भयौ वाद,
जाकै अनुभव ज्ञान वाद मे न बह्यौ है ॥१८॥
प्रज्ञानमानंद ब्रह्म ऐसैं ऋग्वेद कहत,
अहं ब्रह्म अस्मि इति यजुर्वेद यौं कहै।
तत्त्वमसि इति सामवेद यौं बषानत है,
अयमात्माहि ब्रह्म वेद अथर्वन कहै ॥
एक एक बचन मैं तीन पद हैं प्रसिद्ध,
तिनकौ विचार करि अर्थ तत्व कौं गहै।
चारि वेद भिन्न भिन्न सबकौ सिद्धांत एक,
सुंदर समुझि करि चुपचाप ह्वै रहै ॥१९॥

---

१ छाजला। २ कपड़े या सानों के मंदिर खोंगे पर छोर कर इकट्ठा कर देते हैं। ३ सुझांगा, सूझता, जो अंधा न हो। ४ बहुं रूपों में। ५ टटोल कर। ६ चारों वेदों के उपनिषदों में ये महावाक्य आए हैं।

क्षिति भ्रम जल भ्रम पावक पवन भ्रम,
व्योम भ्रम तिनकौ शरीर भ्रम मानिये।
इंद्री दश तेऊ भ्रम अंतहकरण भ्रम,
तिनहू के दैवता सु भ्रम तें वषानिये॥
सत्व रज तम भ्रम पुनि अहंकार भ्रम,
महत्तत्व प्रकृति पुरुष भ्रम मानिये।
जोई कछु कहिये सु सुंदर सकल भ्रम,
अनुभौ किये तै एक आतमाही जानिये॥ २४॥
माया की अपेक्षा ब्रह्म रात्रि की अपेक्षा दिन,
जड की अपेक्षा करि चेतन्य वषानिये।
अज्ञान अपेक्षा ज्ञान बंध की अपेक्षा मोक्ष,
द्वैत की अपेक्षा सुतौ अद्वैत प्रवानिये॥
दुःख की अपेक्षा सुख पाप की अपेक्षा पुन्य,
झूठ की अपेक्षा ताहि सत्य करि मानिये।
सुंदर सकल यह वचन विलास भ्रम,
वचन अवचन रहित सोई जानिये॥ २६॥

प्रज्ञाघन आनंद स्वरूप ही ब्रह्म है। मैं नाम मेरा आत्मा ही ब्रह्म है। वह
तू है—वह तू (तेरी आत्मा) है। यह आत्मा (जो तेरी वा तेरे अंदर है)
सो ही ब्रह्म है। इन चारों के अर्थ को विचारने से प्रयोजन एक ही,
जीव व आत्मा का अभेद, निकलता है। १ माया अनिर्वचनीय भ्रम
रूप पदार्थ है। उसके अंश वा भाग भी भ्रम ही हैं। २ ज्ञान और
सृष्टि सापेक्षतया आभासित होते हैं। ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान होने से
माया नहीं रहती, इत्यादि।

आतमा कहत गुरु शुद्ध निरवंध नित्य,
सत्य करि मानै सुतौ सबद प्रमाण है।
जैसै व्योम व्यापक अखंड परिपूरन है,
व्योम उपमा तें उपमान सो प्रमाण है।
जाकी सत्ता पाइ सब इंद्रिय चेतनि होइ,
याही अनुमान अनुमान हू प्रमाण है।
अनुभव जानैं तब सकल संदेह मिटै,
सुंदर कहत यह प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥ २७ ॥

एक तो श्रवन ज्ञान पावक ज्यौं दीपियत,
माया जल बरषत वेगि बुझि जात है।
एक है मनन ज्ञान विज्जुर ज्यौं घन मध्य,
माया जल बरषत तामैं न बुझात है॥
एक निदिध्यास ज्ञान बड़वा अनल सम,
प्रगट समुद्र माहिं माया जल पात है।
आतमा अनुभव ज्ञान प्रलय अग्नि जैसें,
सुंदर कहत द्वैत प्रपंच विनात है ॥ ९ ॥

भोजन की बात सुनि मन मैं मुदित होत,
मुख मैं न परै जौलौं तौलौं न अघात है।
सकल सामग्री आनि पाक कौ करन लाग्यौ,
मनन करत कब जीमूं यह आत है॥

---

१ श्रवण, मनन, निदिध्यासन तथा आत्मानुभव—ये चार [illegible] क्रम साधन हैं जो वेदांत में अधिकारी होने के लिये मुख्य [illegible] है। इनको दृष्टांत से भिन्न भिन्न कर वर्णन किया गया है।

पाक जब भयौ तब भोजन करन बैठौ,
मुख में मेलत जाइ उहै निदिध्यास है।
भोजन पूरन करि तृपत भयो है जब,
सुंदर साक्षातकार अनुभौ प्रकास है ॥ ३२ ॥
काहू कौ पूछत रंक धन कैसें पाइयत,
कान दैकैं सुनत श्रवन सोई जानिये।
उन कह्यौ धन हम देखौ है फलानी ठौर,
मनन करत भयौ कब घरि आनिये ॥
फेरि जब कह्यो धन गड्यौ तेरे घर माहिं,
षोदन लग्यौ है तब निदिध्यास ठानिये।
धन निकस्यौ है जब दरिद्र गयौ है तब,
सुंदर साक्षातकार नृपति वषानिये ॥ ३४ ॥

---

(२९) ज्ञानी को अंग।

[ज्ञानी की क्या पहिचान है, वह कैसा होता है, क्या उसकी क्रिया है, कैसी रहन सहन, कैसे विचार, कैसी उसकी धुन होती है, ज्ञानी संसार को कैसे मानता है और उसे कैसे निबाहता है, इसमें रहकर भी कैसे न्यारा होजाता है, ज्ञानी व अज्ञानी का भेद क्या है, इत्यादि ज्ञानी के संबंध की बातें बड़ी उत्तमता से वर्णित हैं। ज्ञान का भक्ति कर्म उपासना से भेद दिखाकर ज्ञान की उत्कृष्टता भी दरसा दी है।]

इंदव छंद।

जाकै हृदै माहिं ज्ञान प्रकाशत ताकौ सुभाव रहै नहिं छानौ।
नैन मैं बैन मैं सैन मैं जानिये ऊठत बैठत है अळसानौ ॥

ज्यौं कछु भक्ष किये उदगारत कैसहुँ राखि सकै न अघानौ ।
सुंदरदास प्रसिद्ध दिखावत खान कौ पेट पयार तें जानौ ॥१॥
बोलत चालत बैठत ऊठत पीवत खातहु सूंघत स्वासै ।
ऊपर तौ व्यवहार करै सब भीतर स्वप्न समान सौ भासै ॥
लै करि तीर पवाल कौं बांधत मारत है पुनि फेरि अकासै ।
सुंदर देह क्रिया सब देखत कोउ न पावत ज्ञानी को आसै ॥२॥
देखत है पै कछू नहिं देखत बोलत है नहिं बोल बखानै ।
सूंघत है नहिं सूंघत घ्राण सुनै सब है न सुनै यह मानै ॥
भक्ष करै अरु नाहिं भखै कछु भेटत है नहिं भेटत पानै ।
लेत है देत है देत न लेत है सुंदर ज्ञानी की ज्ञानी ही जानै ॥५॥
देखत ब्रह्म सुनै पुनि ब्रह्महि बोलत है सोउ ब्रह्महि बानी ।
भूमिहु नीरहु तेजहु वायुहु व्योमहु ब्रह्म जहां लगि प्रानी ॥
आदिहु अंतहु मध्यहु ब्रह्महि है सब ब्रह्म इहै मति ठानी ।
सुंदर ज्ञेय रु ज्ञानहु ब्रह्म सु आपहु ब्रह्महि जानत ज्ञानी ॥९॥
आदिहु तौ नहिं अंतर है नहिं मध्य शरीर भयौ भ्रमकूपं ।
भासत है कछु और कौ औरइ ज्यौं रजु मैं अहि सीप सुरूपं ॥
देखि मरीचि उठ्यौ विधि विभ्रम जानत नाहिं जहै रवि धूपं ।
सुंदर ज्ञान प्रकाश भयौ जब एक अखंडित ब्रह्म अनूपं ॥१०॥

मनहर छंद ।

सबसौं उदास होइ काढि मन भिन्न धरै,
ताकौं नाम कहियत परम वैराग है ।

१ पराल घास । २ आशय, प्रयोजन । ३ ज्ञानी तक पहुँचना । [illegible] अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म बुद्धि हो जाता है । ४ मृगतृष्णा का जल [illegible] मरुस्थल या अन्य स्थलों में मृग देखकर जल हो मान लेता है ।

अंतहकरण हू बासना निवरत होहिं,
ताकौ मुनि कहत है उहै वड्यौ त्याग है ॥
चित्त एक ईश्वर सौं नेकहू न न्यारौ होइ,
उहै भक्ति कहियत उहै प्रेममार्ग है ।
आप ब्रह्म जगत कौ एक करि जानै जब,
सुंदर कहत वह ज्ञान भ्रम भागै[1] है ॥ १४ ॥

कोऊ नृप फूलन की सेज पर सूतौ आइ,
जब लग जाग्यौ तौलौं अतिसुख मान्यौ है ।
नींद जब आई तब वाही कौ सुपन भयौ,
जाइ पर्‌यौ नरक के कुंड मैं यौं जान्यौ है ॥
अति दुख पावै परि निकस्यौ न क्यौंही जाइ,
जागि जब पर्‌यौ तब सुपन वषान्यौ है ।
इह झूठ वह झूठ जाग्रत स्वप्न दोऊ[2],
सुंदर कहत ज्ञानी सब भ्रम मान्यौ है ॥ १५ ॥

कर्म न विकर्म करै भाव न अभाव धरै,
शुभहू अशुभ परै यातैं निधरक है ।
वस तीनैं[3] शून्य जाकै पापही न पुन्य ताक,
अधिक न न्यून वाकै स्वर्ग न नरक है ॥
सुख दुख सम दोऊ नीच ही न ऊँच कोऊ,
ऐसी विधि रहे सोऊ मिल्यौ न फरक है ।

---

१ भ्रम भाग जाता है । २ जैसे स्वप्न के पदार्थ जाग्रत में असत्य प्रतीत होते हैं वैसे ज्ञानी के अनुभव में जाग्रत के पदार्थ असत्य भासते हैं । ३ त्रिगुण ।

एक ही न दोइ जानै बंध मोक्ष भ्रम मानै,
सुंदर कहत ज्ञानी ज्ञान मैं गरक है ॥ २० ॥
कामी है न जती है न सूम है न सखी है न,
राजा है न रंक है न तन है न मन है ।
सोवै है न जागै है न पीछै है न आगै है न,
ग्रहै है न त्यागै है न घर है न बन है ॥
थिर है न डोलै है न मौन है न बोलै है न,
बंधै है न खोलै है न स्वामी है न जन है ।
वैसो कोऊ होइ जब वाकी गति जानै तब,
सुंदर कहत ज्ञानी सुद्ध ज्ञानघन है ॥ २१ ॥
ज्ञानी लोक संग्रह कौं करत ब्यवहार विधि,
अंतहकरण मैं सुपन की सी दौर है ।
देत उपदेश नाना भांति के बचन कहि,
सब कोऊ जानत सकल सिरमौर है ॥
हलन चलन पुनि देह मौं करावत है,
ज्ञान मैं गरक नित लियें निज ठौर है ॥
सुंदर कहत जैसें दंत गजराज मुख,
पाइबे के औरई दिपाइबे को और है ॥ २२ ॥

---

१ ज्ञान का महत्व इतना है कि मोक्ष भी भ्रम ही है । २ मग्न, डूबा हुआ । ३ दातार । ४ काम्य आदि करने के यह प्रयोजन है कि निषिद्ध का तो साधन भूमिका में त्याग कर दिया और इष्ट का साधन कर कर्म फल का त्याग कर दिया । ५ निज का परमात्मा को धारण किए हुए ।

एक ज्ञानी कर्मनि में ततपर दूषियत,
भक्ति कौ प्रभाव नाहिं ज्ञान मैं गरक है।
एक ज्ञानी भक्ति कौ अत्यंत प्रभाव लिये,
ज्ञान माहिं निश्चै करि कर्म मौं तरक है।
एक ज्ञानी ज्ञान ही में ज्ञान कौ उचार करै,
भक्ति अरु कर्म इनि दुहूँ त फरक है।
कर्म भक्ति ज्ञान तीनों वेद में बषानि कहै,
सुंदर बतायौ गुरु ताही में लरक[2] है ॥ २७ ॥

दोइ जने मिलि चौपरि षेलत सारि धरैं पुनि ढारत पासा।
जीतत है सु खुसी मन में अति हारत है सु भरै जु उसासा ॥
एक जनौ दुहुं ओरहि खेलत हारि न जीति करै जु तमासा।
तैसैं अज्ञानी के द्वैत भयौ भ्रम सुंदर ज्ञानी के एक प्रकासा ॥३०॥

सवइया छंद।

जीव नरेश अविद्या निद्रा सुख सज्या सोयौ करि हेत।
कर्म्म खवास पुटपरी[3] लाई तातैं बहु विधि भयौ अचेत ॥
भक्ति प्रधान जगायौ कर गहि आलस भर्‍यौ जँभाई लेत।
सुंदर अब निद्रा बस नाहीं ज्ञान जागरन सदा सचेत ॥३१॥

---

(३०) निरसंशै को अंग।

(सत्य वस्तु का निश्चित ज्ञान हो जाने पर देह का ममत्व और जीवन मरण का मोह, शोक, कुछ नहीं रहता है। देहाभिमान ही जब

---

१ त्याग वा अभाव करनेवाला। २ सुंदर को गुरु ने जो विलक्षण ज्ञानशैली वा सैन बताई उस ही में तत्पर है। लरक=सहज सुख साधन। ३ मूठी देना, पांव दबाना।

न रहा तो मृत्यु किसी भी देश किसी काल में हो, थोड़ा जीओ चाहे अधिक जीओ इत्यादि बातों का कुछ अपने अंदर धोखा नहीं रहता]

मनहर छंद ।

भावै[1] देह छूटि जाहु काशी माहिं गंगा तट,
भावै देह छूटि जाहु क्षेत्र मगहर[2] मैं ।
भावै देह छूटि जाहु विप्र के सदन[3] मध्य,
भावै देह छूटि जाहु स्वपच[4] के घर मैं ॥
भावै देह छूटौ देश आरज अनारज[5] मैं,
भावै देह छूटि जाहु बन मैं नगर मैं ।
सुंदर ज्ञानी कै कछु संशै नहिं रह्यौ कोइ,
स्वर्ग नरक भय भाजि गयौ भरम[6] मैं ॥ १ ॥
भावै देह छूटौ जाहु आज ही पलक माहिं,
भावै देह रहौ चिरकाल जुग अंत जू ।
भावै देह छूटि जाहु ग्रीषम पावस रितु,
सरद शिशिर शीत छूटत बसंत जू ॥
भावै दक्षनायन हू भावै उत्तरायन[7] हू,

---

१ चाहे, अथवा । २ मगधदेश जिसमें मरने से गति नहीं होती । ३ घर, भवन । ४ चांडाल, भंगी । ५ आर्य—भारतवर्ष पुण्यभूमि । अनारज—जैसे म्लेच्छदेश, यवनदेश अरब वगैरादि । ६ भ्रम से भी भाग गये । ७ उत्तरायण सूर्य में मरने से सद्गति होती है जैसे भीष्म जी की । गीता में भी ऐसा आया है तथा कई पुराणादि में भी । इसमें ऋतु काल वा मुहूर्त की बातों की कुछ शंका नहीं रहती ।

भावैं देह सर्प सिंघ विज्जुली हनंत जू।
सुंदर कहत एक आतमा अखंड जानि,
याही भांति निरसंशै भये सब संत जू ॥ २ ॥

---

(३१) प्रेमपरा ज्ञान ज्ञानी को अंग।

[परात्पर ब्रह्म में निष्ट और परा भक्ति के रसास्वादन से मत्त हुए ज्ञानी के मुख के ब्रह्मानंद का उद्गार और "वह" जैसे निकलती है वही इस अंग में है।]

इंदव छंद।

ज्ञान दियौ गुरु देव कृपा करि दूरि कियौ भ्रम षोलि किवारौ।
और क्रिया कहि कौन करै अब चित्त लग्यौ परब्रह्म पियारौ ॥
पाव विना चलि कैं तहि ठाहर पंगु भयौ मन मित्त हमारौ।
सुंदर कोउ न जानि सकै यह गोकुल गांव कौ पैंड़ौ हि न्यारौ ॥१॥
एक अखंडित ज्यौं नभ व्यापक बाहिर भीतर है इकसारौ।
दृष्टि न मुष्टि न रूप न रेष न सेत न पीत न रक्त न कारौ ॥
चक्रित होइ रहे अनुभौ बिन जौं लग नाहिंन ज्ञान उजारौ।
सुंदर कोउ न जानि सकै यह गोकल गांव कौ पैंड़ौ हि न्यारौ ॥२॥
लक्ष अलक्ष अदक्ष न दक्ष न पक्ष अपक्ष न तूल न भारौ।

---

१ अकाल मृत्यु—आधिभौतिक आदि दैविक कुयोगो से। २ यह कहावत प्रसिद्ध है। ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग न्यारा है अर्थात् साधारण धर्म मर्यादा से भिन्न है, वह रहस्य ही निराला है जिसको पराभक्ति और परम ज्ञान के पहुँचे हुए महात्मा ही जानते हैं। ३ स्थूल सूक्ष्म। ४ पूर्ण वा सर्वशक्तिमान।

झूठ न सांच अवाच न वाच न कंचन कांच न दीन उदारौ ॥
जान अजान न मान अमान न शान गुमान न जीत न हारौ ।
सुंदर कोउ न जानि सकै यह गोकल गांव कौ पैंडोहि न्यारौ ॥५॥

---

(२२) अद्वैत ज्ञान को अंग ।

इंदव छंद ।

उत्तम मध्यम और शुभाशुभ भेद अभेद जहां लग जोहै ।
दीसत भिन्न तवो अरु दर्पन वस्तु विचारत एक हि लोहै[1] ॥
जो सुनिये अरु दिष्टि परै पुनि वा बिन और कहो अब को है ।
सुंदर सुंदर व्यापि रह्यौ सब सुंदर ही महिं सुंदर सोहै ॥ ३ ॥
ज्यौं वन एक अनेक भये द्रुम नाम अनंतनि जातिहु न्यारी ।
वापि तडागरु कूप नदी सब है जल एक सुदेषौ निहारी ॥
पावक एक प्रकाश वहू विधि दीप चिराग मसालहु वारी ।
सुंदर ब्रह्म विलास अखंडित खंडित भेद की वुद्धि सुटारी ॥ ४ ॥

मनहर छंद ।

तोही मैं जगत यह तूंही है जगत माहिं,
तो मैं अरु जगत मैं भिन्नता कहां रही ।
भूमि ही तें भाजन अनेक भांति नाम रूप,
भाजन विचारि देषैं उहै एक है मही ॥
जल मैं तरंग भई फेन बुद्‌बुदा अनेक,
सोऊ तौ विचारें एक वहै जल है सही ।

---

१ लोहा ।

महा पुरुष जेते हैं सब कौ सिद्धाँत एक,
सुंदर खल्विदं ब्रह्म[1] अंत वेद है कही ॥१४॥

ब्रह्म मैं जगत यह ऐसी विधि देषियत,
जैसी विधि देषियत फूलरी महीर[2] मैं।
जैसी विधि गिलैम[3] दुलीचे[4] मैं अनेक भांति,
जैसी विधि देषियत चूंनरीऊ चीर मैं॥
जैसी विधि कांगरे ऊ कोट पर देषियत,
जैसी विधि देषियत बुदबुदा नीर मैं।
सुंदर कहत लीक हाथ पर देषियत,
जैसी विधि देषियत शीतला शरीर मैं॥१८॥

ब्रह्म अरु माया जैसै शिव अरु शक्ति पुनि,
पुरुष प्रकृति दोऊ करि कैं सुनाये हैं।
पति अरु पतनी ईश्वर अरु ईश्वरी ऊ,
नारायण लक्ष्मी द्वै वचन कहाये हैं॥
जैसैं कोऊ अर्द्धनारी नाटेस्वर[5] रूप धरै,
एक बीज ही तें दोइ दालि नाम पाये हैं।

---

१ "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"—यह सब (जगत) निश्चय ही ब्रह्म है। २ महीर=महीरुह, वृक्ष। फूलरी=फूल अथवा महीर=महियर वा मही, मट्ठा, छाछ। फूलरी=छाछ के फूल, घृत मिला मट्ठा जो ऊपर आता है। ३ एक प्रकार का बढ़िया मखमल जैसा कपड़ा जो बादशाह अमीरों के काम में आता था। ४ गलीचा। ५ महादेव जी का एक ऐसा स्वरूप जिसमें वामांग तो उसी में पार्वती और दक्षिणांग उसी में शिवरूप।

तैसे ही सुंदर वस्तु ज्यौं है त्यौं ही एक रस,
उभय प्रकार होइ आप ही दिपाये हैं ॥१९॥

इंदव छंद ।

आदि हुतौ सोइ अंत रहै पुनि मध्य कहा कछु और कहावै ।
कारण कारय नाम धरे जुग कारय कारण माहिं समावै ॥
कारय देषि भयौ विचि विभ्रम कारण देषि विभ्रम्म विलावै ।
सुंदर या निहचै अभिअंतर द्वैत गये फिरि द्वैत न आवै ॥२२॥

मनहर छंद ।

द्वैत करि देषै जब द्वैत ही दिषाई देत,
एक करि देखै तब उहै एक अंग है ।
सूरज कौ देषै जब सूरज प्रकाश रह्यौ,
किरण कौ देषै तौ किरण नाना रंग है ॥
भ्रम जब भयौ तब माया ऐसो नाम धर्‍यौ,
भ्रम के गये ते एक ब्रह्म सरवंग है ।
सुंदर कहत याकी दृष्टि ही कौ फेर भयौ,
ब्रह्म अरु माया के तौ माथै नाहिं शृंग है[1] ॥ २३ ॥

---

(३३) जगत्मिथ्या को अंग ।

मनहर छंद ।

ऐसोई अज्ञान कोऊ आइ कै प्रगट भयौ,
दिव्य दृष्टि दूर गई देष चर्मदृष्टि[2] कौं ।

---

१ अर्थात् कोई विशेष चिन्ह ऐसा नहीं है कि सहज ही में पहिचान में आ जाय, जैसे पशु सींग से । 'शृंग' शब्द यहां 'श्रग' ऐसा उच्चारण होगा, अनुप्रास के लिये । २ चर्मदृष्टि, स्थूल इंद्रियां ।

जैसे एक आरसी सदाई हाथ मांहि रहै,
सामैं[1] हौ न देषै फेरि फेरि देषै पृष्ठि कौं ॥
जैसे एक व्योम पुनि बादर सौं छाइ रह्यौ,
व्योम नहिं देखत देखत बहु वृष्टि कौं ।
तैसै एक ब्रह्मई विराजमान सुंदर है,
ब्रह्म कौ न देषै कोऊ देषै सब सृष्टि कौं ॥ २ ॥
मृतिका समाइ रही भाजन के रूप मांहि,
मृतिका कौ नाम मिटि भाजनई गह्यौ है ।
कनक समाइ त्यौं ही होइ रह्यौ आभूषन,
कनक न कहै कोऊ आभूषन कह्यौ है ॥
बीजऊ समाइ करि वृक्ष होइ रह्यौ पुनि,
वृक्ष ही कौं देषियत बीज नहिं लह्यौ है ।
सुंदर कहत यह यों ही करि जानै सब,
ब्रह्मई जगत होइ ब्रह्म दुरि[2] रह्यौ है ॥ ४ ॥
कहत है देह माहि जीव आइ मिलि रह्यौ,
कहां देह कहां जीव[3] वृथा चौंकि पर्‌यौ है ।
बूड़वे के डर तें तिरन कौ उपाइ करै,
ऐसे नाहिं जानै यह मृगजल भर्‌यौ है ॥
जेवरे कौ सांपु जैसैं सीप विषै रूपौ जानि,
और कौ औरइ देषि यौंही भ्रम कर्‌यौ है ।

---

१ सामने, दर्पण का वह अंग जिसमें मुँह दिखाई देवे । २ छिपा, अप्रगट । ३ यह द्वैतवादी न्यायवालों पर कटाक्ष है जो जीव को नाना और निरवयव परमाणुवत् मानते हैं ।

सुंदर कहत यह एकई अखंड ब्रह्म,
ताही कौ पलिटि कैं जगत नाम धर्यौ है ॥ ५ ॥

---

(३४) आश्चर्य को अंग।

[परमात्म तत्व की दुर्लभता अनिर्वचनीयता आदि का कथन ।]

मनहर छंद ।

वेद कौ विचार सोई सुनि कैं संतनि मुख,
आपु हू विचार करि सोई धारियतु है ।
योग की युगति जानि जग तें उदास होइ,
शून्य मैं समाधि लाइ मन मारियतु है ॥
ऐसैं ऐसैं करत करत केते दिन बीते,
सुंदर कहत अजहूँ विचारियतु है ।
कारौ ही न पीरौ न तौ तातौ ही न सीरौ कछु,
हाथ न परत तातैं हाथ हारियतु है ॥ १ ॥
भूमि ही न आप न तो तेज ही न वाप न तो,
वायु हू न व्योम न तो पंच को पसारौ है ।
हाथ ही न पाव न तो नैन बैन भाव न तो,
रंक ही न राव न तो वृद्ध ही न बारौ है ॥

---

१ इस सवैये और ऊपर कई स्थलों में जहां सृष्टि को ब्रह्म से बना या ब्रह्म ही बताया है वहां ब्रह्म जगत् का उपादान और निमित्त कारण दोनों साथ ही समझना । यह विषय उपनिषदादि में भी प्रतिपादित है । शंकर स्वामी का विवर्तवाद इससे कुछ भिन्न है परंतु व्यास सूत्रों की समझ इसी प्रकार भासती है । २ बालक ।

पिंड ही न प्रान न तौ जान न अजान न तौ,
बंध निरवान न तौ हरकौ न भारौ है।
द्वैत न अद्वैत न तौ भीत न अभीत तातैं,
सुंदर कह्यौ न जाइ मिल्यौ ही न न्यारौ है॥ ५॥

इंदव छंद।

तत्व अतत्व कह्यौ नहिं जात जु शून्य अशून्य डरै न परै है।
ज्योति अज्योति न जानि सकै कोउ आदि न अंत जिवै न मरै है।
रूप अरूप कछू नहिं दीसत भेद अभेद करै न हरै है।
शुद्ध अशुद्ध कहै पुनि कौन जु सुंदर बोल न मौन धरै है॥ ७॥
पिंड मैं है परि पिंड छिपै नहिं पिंड परै[1] पुनि त्यौंहि रहावै।
श्रोत्र मैं है परि श्रोत्र सुनै नहिं दृष्टि मैं है परि दृष्टि न आवै॥
बुद्धि मैं है परि बुद्धि न जानत चित्त मैं है परि चित्त न पावै।
शब्द मैं है परि शब्द थक्यौ कहि शब्द हू सुंदर दूरि बतावै॥९॥
एक हि ब्रह्म रह्यौ भरपूर तौ दूसर कौन बताव निहारौ।
जौ कोउ जीव करै जु प्रमान तौ जीव कहा कछु ब्रह्म तैं न्यारौ॥
जौ कहै जीव भयौ जगदीस तैं तौ रवि माहिं कहां कौ अँधारौ[2]।
सुंदर मौन गही यह जानि कै कौनहुं भांति न होत निधारौ[3]॥११॥
वेद थके कहि तंत्र थके कहि ग्रंथ थके निश वासर गातैं।
सेस थके शिव इंद्र थके पुनि षोज कियौ बहु भांति विधातैं॥

---

१ गिरै, नाशै। शरीर के नाश से आत्मा का कुछ भी विगाड नहीं। २ जब जीव ब्रह्म से वा ब्रह्म ही है तो जीव में अल्पज्ञता, प्रतिबद्धता अज्ञानता आदि न होनी चाहिए थी। ३ निर्धार का तुक वा गणमान के कारण रूपांतर है। ४ विधाता (ब्रह्मा) ने।

पीर थके अरु मीर थके पुनि धीर थके बहु बोलि गिरा तैं।
सुंदर मौन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख बातैं ॥१४॥
योगी थके कहि जैन थके ऋषि तापस थाकि रहे फल पातैं।
न्यासी थके बनवासी थके जु उदासी थके बहु फेर फिरातैं॥
शेष मसाइक[1] और उलाइक[2] थाकि रहे मन मैं मुसकातैं।
सुंदर मौन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख बातैं ॥१५॥

१ मशाइख—शेख (धर्माचार्य) मुसलमान धर्म का होता है, उसका बहुवचन। २ औलिया = महात्मा। शायद यह शब्द मलाइक (फरिश्ते या देवता) को बिगाड़ कर किया है अथवा उ = ऊंचा + लाइक (लायक) योग्य, इनसे बना है।

(४) साखी ।

[दादूजी की रचना वा वचन के 'साखी' और 'शब्द' दो भाग हैं। इसी प्रकार उनके ५२ शिष्यों ने भी प्रायः साखी और शब्द बनाए हैं, और साधारणतः महात्माओं में ऐसी ही चाल है। सुंदरदास जी की साखी १३११ संख्या में और ३१ अंगों में विभक्त है। इस साखीसंग्रह में बड़े बड़े उत्तम दोहे हैं। इनमें बहुत से तो नवीन विचार हैं जो इनके अन्य ग्रंथों से पृथक् ही प्रतीत होते हैं, परंतु शेष में तो इनके ग्रंथों में जैसे विचार हैं तद-नुसार ही हैं। बंबई के 'तत्त्वविवेचक' आदि प्रेसों ने १०९ साखी को "ज्ञानविलास" नाम से छापा है। मिलान से ये सब मूल ग्रंथ से किसी ने छांटी हों ऐसा प्रतीत होता है परंतु छांट कुछ उत्तम नहीं हुई है। इसीलिये हमको भिन्न छांट करनी पड़ती है। परंतु स्थानाभाव से साखियों की अधिक संख्या हम नहीं ला सके, कई उत्तम उत्तम साखियां रह गईं। परंतु हमने उन्हें सब अंगों से ले लिया है। 'तत्त्वविवेचक' प्रेस आदि वालों ने केवल २० ही अंगों से साखियां ली हैं। 'सवैया' (सुंदर विलास) के ३४ अंगों में से २६ अंगों के नाम तो 'साखी' के अंगों के नामों से मिलते हैं। कहीं कहीं विचारों की समानता भी है, शेष में भिन्नता है। परंतु अन्य इनके ग्रंथों में साखी के कई विचार आ गए हैं। यह पढ़नेवाले स्वयम् विचारें।]

---

(१) गुरु देव को अंग ।

दोहा छंद ।

दादू सद्गुरु वंदिये, सो मेरे सिरमोर ।
सुंदर बहिया जाय था, पकरि लगाया ठौर ॥ १ ॥

सुंदर सद्गुरु सारिषा, कोऊ नहीं उदार ।
ज्ञान पजीना षोलिया, सदा अटूट भँडार ॥२८॥

परमातम सों आतमा, जुदे रहे बहु काल ।
सुंदर मेला करि दिया, सद्गुरु मिले दलाल ॥४६॥

सुंदर समझे एक है, अनसमझे को द्वीत ।
उभै रहित सद्गुर कहै, सोहै वचनातीत ॥५६॥

सुंदर सद्गुरु हैं सही, सुंदर शिक्षा दीन्ह ।
सुंदर वचन सुनाइकै, सुंदर सुंदर कीन्ह ॥१०२॥(५)

---

(२) सुमरण को अंग ।

हृदये में हरि सुमिरिये, अंतरजामी राइ ।
सुंदर नीकै जतन सों, अपनों वित्त छिपाइ ॥ ४ ॥

लीन भया विचरत फिरै, छीन भया गुन देह ।
दीन भई सब कल्पना, सुंदर सुमिरन येह ॥२५॥

प्रीति सहित जे हरि भजै, तब हरि होहि प्रसन्न ।
सुंदर स्वाद न प्रीति बिन, भूप बिना ज्यों अन्न ॥१८॥

---

१ समान । २ द्वैत । ३ अपने इष्ट को गोप्य रखने से अंतरात्मा की सिद्धि शीघ्र होती है, जैसे कृपण अपने प्यारे धन को छिपा रखता है ।

एक भजन तन सों करे, एक भजन मन होय ।
सुंदर तन मन के परे, भजन अखंडित सोय ॥४२॥
जाही कौ सुमिरन करै, ह्वै ताही कौ रूप ।
सुमिरन कीये ब्रह्म के, सुंदर ह्वै चिद्रूप[1] ॥५६॥(१०)

---

(३) विरह को अंग ।

मारग जोवै विरहिनी, चितवै पिय की ओर ।
सुंदर जियरै जक नहीं, कल न परत निशि भोर॥ १ ॥
सुंदर विरहिनी अधजरी, दुःख कहै मुख रोइ ।
जरि वरि कै भस्मी भई, धुवां न निकसै कोइ ॥१८॥
लालन मेरा लाडिला, रूप वहुत तुझ मांहि ।
सुंदर राषै नैन मैं, पलक उघारै नांहि ॥४८॥(१३)

---

(४) वंदगी को अंग ।

जिस वंदे का पाक दिल, सो वंदा माकूल ।
सुंदर उसकी वंदगी, सांई करै कवूल ॥ ३ ॥
उलटि[2] करै जो वंदगी, हरदम अरु हर रोज ।
तौ दिल ही मैं पाइये, सुंदर उसका षोज ॥ ७ ॥
मुख सेती वंदा कहै, दिल मैं अति गुमराह ।
सुंदर सो पावै नहीं, सांई की दरगाह ॥ १० ॥(१६)

---

१ चित् जो ब्रह्म है, उसका रूप अर्थात् तदाकार । २ हृदय के अंदर ही वृत्ति लगावै जाहिरदारी न करै ।

(५) पतिव्रत को अंग ।

पतिव्रत ही में योग है, पतिव्रत ही में याग ।
सुंदर पतिव्रत राम सैं, वहै त्याग वैराग ॥ ९ ॥
जाचिक कौं जाचै कहा, सरै न कोई काम ।
सुंदर जाचै एक कौं, अलष निरंजन राम ॥२७॥
सुंदर पतिव्रत राम सौं, सदा रहै इकतार ।
सुख देवै तो अति सुखी, दुख तौ सुखी अपार ॥३६॥
रजा राम की सीस पर, आज्ञा मेटै नांहि ।
ज्यौं राषै त्यौंही रहै, सुंदर पतिव्रत मांहि ॥३७॥
ज्यौ प्रभु कौं प्यारौ लगै, सोही प्यारो मोइ ।
सुंदर ऐसैं समुझि करि, यौं पतिवरता होइ ॥४९॥(२१)

---

(६) उपदेश चितावनी को अंग ।

सुंदर मनुषा देह की, महिमा कहिये काहि ।
जाकौं वंछै देवता, तूं क्यों पोवै ताहि ॥ २ ॥
सुंदर पंक्षी विरछ पर, लियो वसेरा आनि ।
राति रहे दिन उठि गये, त्यौं कुटंब सब जानि ॥२५॥
सुंदर यह ओसर भलो, भज ले सिरजनहार ।
जैसैं ताते लोह कौं, लेत मिलाइ लुहार ॥३२॥
सुंदर योंही देषते, ओसर बीत्यौ जाइ ।
अंजुरी मांही नीर ज्यौं, किती बार ठहराइ ॥३४॥

---

१ अनंन्यता ।

(११) अधीर्य उराहने को अंग ।

देह रच्यौ प्रभु भजन कौं, सुंदर नष सिष साज ।
एक हमारी बात सुन, पेट दियौ किहि काज ॥ १ ॥
विद्याधर पंडित गुनी, दाता सूर सुभट्ट ।
सुंदर प्रभुजी पेट इनि, सकल किये षटपट्ट[1] ॥१६॥

(१२) विश्वास को अंग ।

चंच सँवारी जिनि प्रभू, चून देयगो आनि ।
सुंदर तूं विश्वास गहि, छांड़ आपनी बानि ॥ ८ ॥
सुंदर जाकौं जो रच्यौ, सोई पहुँचै आइ ।
कीरी कौ कन देत है, हाथी मन भरि षाइ ॥२३॥(४२

(१३) देह मलिनता गर्व प्रहार को अंग ।

सुंदर देह मलीन है, राख्यौ रूप सँवार ।
ऊपर तैं कलई करी, भीतरि भरी भँगार ॥
सुंदर मलिन शरीर यह, ताहू में बहु व्याधि ।
कबहूं सुख पावै नहीं, आठौ पहरि उपाधि ॥१९॥

(१४) दुष्ट को अंग ।

सुंदर दुष्ट सुभाव है, औगुन देषै आइ ।
जैसे कीरी महल में, छिद्र ताकती जाइ ॥ २ ॥

---

१ 'षटपट' का अर्थ बखेड़ा वा लड़ाई का है । परंतु यहां बिगाड़ के अर्थ में है ।

सुंदर कबहु न बीजिये, सरस दुष्ट की बात ।
मुख ऊपर मीठी कहै, मन मैं घौंढै घात ॥ ६ ॥
दुर्जन संग न कीजिये, सहिये दुःख अनेक ।
सुंदर सब संसार में, दुष्ट समान न एक ॥ १६ ॥
सुंदर दुख सब तौलिये, घालि तराजू मांहि ।
जो दुख दुरजन सँग तें, ता सम कोई नांहिं ॥२२॥
ज्यौं कोउ मारै बान भरि, सुंदर कछु दुख नांहिं ।
दुरजन मारै बचन सौं, सालतु है उर मांहि ॥२५॥(४९)

---

(१५) मन को अंग ।

मन कौं राषत हटकि करि, सटकि चहूं दिशि जाइ ।
सुंदर लटकि रु लालची, गटकि विषै फल पाइ ॥१॥
झटकि तार कौं तोरि दे, भटकत सांझ रु भोर ।
पटकि सीस सुंदर कहै, फटकि जाइ ज्यौं चोर ॥२॥
सुंदर यह मन चपल अति, ज्यौं पीपर कौ पान ।
बार बार चलिबो करै, हाथी को सौ कान ॥३१॥
मन वसि करने कहत हैं, मन कै वसि ह्वै जाहिं ।
सुंदर उलटा पेच है, समझ नहीं घट मांहि ॥३४॥
तन कौ साधन होत है, मन को साधन नांहि ।
सुंदर बाहर सब करै, मन साधन मन मांहि ॥४०॥
मन ही यह विस्तर रच्यौ, मन ही रूप कुरूप ।

---

१ रखै, धरै, टालै । २ निर्लज्ज, बेहया । ३ भाग जाय. ।
४ विस्तृत, फैला हुआ ।

सुंदर यह मन जीव है, मन ही ब्रह्म स्वरूप ॥४६॥
सुंदर मन मन सब कहैं, मन जान्यौ नहिं जाइ।
जौ या मन कौ जानिये, तौ मन मनहिं समाइ ॥४७॥
मन कौ साधन एक है, निशि दिन ब्रह्म बिचार।
सुंदर ब्रह्म बिचार तें, ब्रह्म होत नहिं बार ॥४८॥
सुंदर निकसै कौन विधि, होय रह्यो लैलीन[१]।
परमानंद समुद्र में, मग्न भया मन मीन ॥५५॥(५८)

---

(१६) चाणक को अंग।

छूट्यौ चाहत जगत सौं, महा अज्ञ मतिमंद।
जोई करै उपाय कछु, सुंदर सोई फंद ॥ १ ॥
कूकस[२] कूटै कन विना, हाथ चढै कछु नाहिं।
सुंदर ज्ञान हृदै नहीं, फिरि फिरि गोते षाहिं ॥ ८ ॥
वैठौ आसन मारि करि, पकरि रह्यौ मुख मौन।
सुंदर सैन वतावते, सिद्ध भयौ कहि कौन ॥ ९ ॥(६१)

---

(१७) वचन विवेक को अंग।

सुंदर तब ही वोलिये, समझि हिये मैं पैठि।
कहिये वात विवेक की, नहितर चुप ह्वै बैठि ॥ १ ॥
सुंदर मौन गहे रहै, जानि सकै नाहिं कोइ।
विन वोलै गुरवा कहै, बोलै हरवा होइ ॥ २ ॥

---

१ लयलीन, मग्न, गर्क। २ थोथा अन्न, अन्न हीन कूंखी वा वाल बाजरे आदि की।

सुंदर सुबचन तक्र तें, राषै दूध जमाइ।
कुबचन कांजी परत ही, तुरत फाटि करि जाइ ॥१२॥
जा वांणी में पाइये, भक्ति ज्ञान वैराग।
सुंदर ताकौ आदरै, और सकल को त्याग ॥२३॥(६५)

---

(१८) सूरातन को अंग।

घर मैं सब कोइ बंकुडो, मारै गाल्है अनेक।
सुंदर रण में ठाहरै, सूरवीर कौ एकै ॥५॥
सुंदर सील सनाँह करि, तोपँ दियौ सिर टोप।
ज्ञान षडग पुनि हाथ लै, कीयौ मन परि कोप ॥२२॥
मारै सब संग्राम करि, पिशुनं हुते घट माहिं।
सुंदर कोऊ सूरमा, साधु बराबर नाहिं ॥२४॥(६८)

---

(१९) साधु को अंग।

संत समागम कीजिये, तजिये और उपाइ।
सुंदर बहुते उद्धरे, सत संगति में आइ ॥ १ ॥
सुंदर या सत्संग में, भेदाभेद न कोइ।
जोई बैठै नाव मैं, सो पारंगत होइ ॥ २ ॥
जन सुंदर सत्संग मैं, नीचहु होत उतंग
परै क्षुद्रजल गंग मैं, उहै होत पुनि गंग ॥ ५ ॥

---

१ बांका, बलवंक, शूर वीर। २ गाल मारना, बकना, डींग मारना। ३ कोई एक, बहुत थोडे। ४ कवच, बकतर। ५ संतोप। ६ शत्रु, दुष्ट। ७ ऊँचा।

संत मुक्ति के पोरिया, तिन सौं करिये प्यार।
कूंजी उनके हाथ है, सुंदर षोलहि द्वार ॥१०॥
सुंदर आये संतजन, मुक्त करन कौं जीव।
सव अज्ञान मिटाइ करि, करत जीव तें शीव[1] ॥१७॥
सुंदर हरिजन एक हैं-भिन्न भाव कछु नाहिं।
संतनि मांहे हरि वसै, संत वसैं हरि माहिं ॥४८॥(७४)

---

(२०) विपर्य्यय को अंग।

कीडी कुंजर कौं गिल्यौ, स्याल सिंह कौं षाय।
सुंदर जल तें माछली, दौरि अग्नि मैं जाय[2] ॥ ४ ॥
कमल माहिं पाणी भयौ, पाणी मांहे भान।
भान माहिं शशि मिलि गयौ, सुंदर उलटौ ज्ञान[3] ॥९॥(७६)

---

(२१) समर्थाई आश्चर्य को अंग।

सुंदर समरथ राम कौं, करत न लागै वार।
पर्वत सौं राई करै, राई करै पहार ॥ ६ ॥

---

१ शिव, ब्रह्म। २ देखो सवैया अंग विपर्यय छंद ३ पर फुटनोट सं० (२)। ३ यह दोहा विपर्यय अंग के सातवें छंद के अनुसार है। इसका तात्पर्य यह है। कमल = हृदय। पाणी = पराभक्ति। भानु = ज्ञानरूपी सूर्य्य। शशि = चंद्रमा, शांति या ब्रह्मानंद की शीतलता। मिलि गयो = प्राप्त हुआ। उलटौ = विपर्यय, देखने में विरुद्ध सा प्रतीत हो। अपने अंतःकरण में परमात्मा की भक्ति होने से प्रेम के प्रभाव से ज्ञान उत्पन्न हो कर शांति सुख प्राप्त हुआ।

जड चेतन संयोग करि, अद्भुत कीयौ ठाट¹ ।
सुंदर समरथ रामजी, भिन्न भिन्न करि घाट² ॥१४॥
पलक मांहिं परगट करै, पल मैं धरै उठाइ ।
सुंदर तेरे ख्याल की, क्यौं करि जानी जाइ ॥२९॥
बाजीगर बाजी रची, ताको आदि न अंत ॥
भिन्न भिन्न सब देखिये, सुंदर रूप अनंत ॥५०॥
किन हुं अंत न पाइयौ, अब पावै कहि कौन ॥
सुंदर आगे होहिंगे, थाकि रहे करि गौन ॥५९॥
लौन पूतरी उदधि मैं, थाह लैन कौं जाइ ।
सुंदर थाह न पाइये, बिचि ही गई बिलाइ ॥६०॥(८२)

—o—

(२२) अपने भाव को अंग ।

सुंदर अपनो भाव है, जे कछु दीसै आन ।
बुद्धि योग विभ्रम भयो, दोऊ ज्ञान अज्ञान ॥ १ ॥
काहू सौं अति निकट है, काहू सौं अति दूर ।
सुंदर अपनो भाव है, जहां तहां भरपूर ॥२५॥(८४)

(२३) स्वरूप विस्मरण को अंग ।

सुंदर भूलौ आपकौं, पाई अपनी ठौर ।
देह मांहि मिलि देह सौं, भयौ और का और ॥ १ ॥
जा घट की उनहारि³ है, जैसो दीसत आहि ।
सुंदर भूलौ आपही, सो अब कहिये काहि ॥ २ ॥

१ सृष्टि की रचना । २ प्रकार, बनावट । ३ सादृश्य, नकल ।

सुंदर जड़ के संग तें, भूलि गयौ निज रूप ।
देषहु कैसौ भ्रम भयौ, बूडि रह्यौ भव कूप ॥११॥
ज्यौं मनि कोऊ कंठ थीं, भ्रम तें पावै नाहिं ।
पूछत डोलै और कौ, सुंदर आपुहि माहिं ॥२९॥
रवि रवि कौं ढूँढत फिरै, चंदहि ढूंढ़ै चंद ।
सुंदर हूवौ जीव सो, आप इहै गोविंद ॥५०॥ (८९)

———o———

(२४) सांख्य ज्ञान को अंग ।

पंच तत्व कौ देह जड़, सब गुन मिलि चौवीस ।
सुंदर चेतन आतमा, ताहि मिलैं पचीस ॥ ३ ॥
छव्वीसों सु ब्रह्म है, सुंदर साक्षी भूत ।
यों परमातम आतमा, यथा बाप तें पूत ॥ ४ ॥
क्षुधा तृषा गुन प्रान कौ, शोक मोह मन होय ।
सुंदर साक्षी आतमा, जानै विरला कोय ॥ ८ ॥
जाकी सत्ता पाय करि, सब गुन ह्वै चैतन्य ।
सुंदर सोई आतमा, तुम जानि जानहु अन्य ॥ ९ ॥
सूक्ष्म देह स्थूल कौ, मिल्यौ करम संयोग ।
सुंदर न्यारौ आतमा, सुख दुख इनको भोग ॥३९॥
जाग्रत स्वप्न सुषोपती, तीनि अवस्था गौन ।
सुंदर तुरिय[2] चढ्यौ जबै, षरी[3] चढै तब कौन ॥६१॥ (९५)

———o———

१ देखो सवैया सांख्य को अंग छंद १ और फुटनोट। २ तुरिय = चतुर्थ अवस्था साक्षात्कारता की। ३ खरी = गधी। यहां श्लेष से तुरिय का अर्थ घोड़ी लेना।

(२५) अवस्था को अंग ।

तीनि अवस्था मांहि है, सुंदर साक्षी भूत ।
सदा एकरस आतमा, व्यापक है अनस्यूत[1] ॥ ४ ॥
तीनि अवस्था तें जुदो, आतम व्योम समान ।
भींति चित्र पुनि घोंट तम, लिप्त नहीं यों जानं[2] ॥ ७ ॥
बाजीगर परदा किया, सुंदर बैठा मांहि ।
षेल दिषावै प्रगट करि, आप दिषावै नांहि ॥ ११ ॥
है अज्ञान अनादि को, जीव पर्यौ भ्रम कूप ।
श्रवण मनन निदिध्यास तें, सुंदर है चिद्रूप ॥ ४६ ॥ (९९)

---

(२६) विचार को अंग ।

सुंदर या साधन बिना, दूजौ नहीं उपाइ ।
निशि दिन ब्रह्म विचार तें, जीव ब्रह्म ह्वै जाइ ॥ २ ॥
जैसे जल मांहि कमल है, जल तें न्यारौ सोइ ।
सुंदर ब्रह्म विचार करि, सब तें न्यारौ होइ ॥ ९ ॥
कीयौ ब्रह्म विचार जिनि, तिनि सब साधन कीन ।
सुंदर राजा के रहै, प्रजा सकल आधीन ॥ १४ ॥
करत विचार विचारिया, एकै ब्रह्म विचार ।
सुंदर सकल विचार मैं, यह विचार निज सार ॥ ४९ ॥

---

१ खूब मिला हुआ । २ जाग्रत अवस्था भींत के ऊपर चित्र के समान है । स्वप्न अवस्था ढंके हुए या छिपे हुए चित्र के समान है । सुषुप्ति (गाढ निद्रा) अंधेरे के अंदर रहे चित्र के समान है । परंतु आत्मा तीनों अवस्थाओं से भिन्न है ।

ब्रह्म विचारत ब्रह्म है, और विचारत और ।
सुंदर जा मारग चलै, पहुँचै ताही ठौर ॥५०॥
याही एक विचार तें, आतम अनुभव होइ ।
सुंदर समुझै आपकौ, संशय रहै न कोइ ॥४७॥(१०५)

---

(२७) अक्षर विचार को अंग ।

उहै ऐन उहै गैन है, नुकता ही को फेर ।
सुंदर नुकता भ्रम लग्यौ, ज्ञान सुपेदा हेरे ॥१॥
ज्यौं अकार अक्षरनि मैं, त्यौं आतम सब माहिं ।
सुंदर एकै देषिये, भिन्न भाव कछु नाहिं ॥८॥(१०७)

---

(२८) आत्मानुभव को अंग ।

मुख तें कह्यौ न जात है, अनुभव को आनंद ।
सुंदर समुझै आप को, जहां न कोई द्वंद ॥ १ ॥
सदा रहै आनंद में, सुंदर ब्रह्म समाइ ।
गूंगा गुड कैसैं कहै, मन ही मन मुसकाइ ॥ ५ ॥

---

१ सूफियों में 'ऐन और गैन' का एक मसला है। 'ऐन' कहने से निर्गुण ब्रह्म। उस पर नुकता विंदु धरने से गैन बनता है। गैन साकार ब्रह्म। नुकता गुण वा प्रकृति। ज्ञान का सुपेदा—उजाला। सुपेदा ब्रस्त का सफेद काजल होता है हरताल का काम अक्षर शोधन में होता है। २ कोई व्यंजन अकार के विना उच्चारण नहीं हो सकता अर्थात् व्यंजन की उत्पत्ति अकार के आधार पर है। व्यंजन प्रकृति। अ को आदि ले स्वर चेतन शक्ति।

सुंदर जिनि अमृत पियौ, सोई जानै स्वाद ।
बिन पीयै करतौ फिरै, जहां तहां बकवाद ॥१०॥

षट दरशन सब अंध मिलि, हस्ती देष्या जाइ ।
अंग जिसा जिनि करि गहा, तैसा कहा बनाइ ॥३०॥

सुंदर साधन सब करै, कहैं मुक्ति हम जांहिं ।
आतम के अनुभव बिना, और मुक्ति कहुं नांहिं ॥
पंचै कोष तें भिन्न है, सुंदर तुरीय स्थान ।
तुरियातीत हि अनुभवै, तहां न ज्ञान अज्ञान ॥४७॥

है सो सुंदर है सदा, नहीं सो सुंदर नांहिं ।
नहीं सो परगट देषिये, है सो लहिये मांहिं ॥५०॥ (११४)

---

(२९) अद्वैत ज्ञान को अंग ।

सुंदर हूं नहिं और कछु, तूं कछु और न होइ ।
जगत कहा कछु और है, एक अखंडित सोइ ॥ १ ॥
सुंदर हूं नहिं तू नहीं, जगत नहीं ब्रह्मंड ।
हूं पुनि तूं पुनि जगत पुनि, व्यापक ब्रह्म अखंड ॥ २ ॥
सुंदर मैं सुंदर जगत, सुंदर है जग मांहिं ।
जल सु तरंग तरंग जल, जल तरंग द्वै नांहिं ॥२१॥
आतम अरु परमातमा, कहन सुनन कौं दोइ ।
सुंदर तब ही मुक्ति है, जब हि एकता होइ ॥२९॥

---

१ छः दर्शन शास्त्र प्रसिद्ध है। २ अन्नमय आदि पांच कोष ।
३ हो कर बिगड़े या मिटे सो।

जगत जगत सब को कहै, जगत कहो किहिं ठौर।
सुंदर यह तो ब्रह्म है, नाम धरयौ फिरि और ॥४१॥(११९)

---

(३०) ज्ञानी को अंग।

काज अकाज भलो बुरो, भेदाभेद न कोइ।
सुंदर ज्ञानी ज्ञान मय, देह क्रिया सब होइ ॥ ९ ॥
हर्ष शोक उपजै नहीं, राग द्वेष पुनि नाहिं।
सुंदर ज्ञानी देखिये, नरक ज्ञान कै माहिं ॥१२॥
जलचर थलचर व्योमचर, जीवन की गति तीन।
ऐसैं सुंदर ब्रह्मचर[१], जहां तहां लयलीन ॥२१॥
घटाकाश ज्यौं मिलि गह्यौ, महदाकाश निदान।
सुंदर ज्ञानी कै सदा, कहिये केवल ज्ञान ॥२८॥
भावै तन काशी तजौ, भावै वागड[२] माहिं।
सुंदर जीवनमुक्ति कै, संशय कोऊ नाहिं ॥२९॥
अज्ञानी कौं जगत यह, दुख दायक मै त्रास।
सुंदर ज्ञानी कै जगत, है सब ब्रह्म विलास ॥३२॥

---

१ मछली आदि जल में, चौपाये आदि थल पै, पक्षी आदि आकाश में रहते सहते हैं और इनके तत्तत् निवासों के विना इनका क्षण भर भी काम नहीं चलता। इसी प्रकार यह बुद्धि सम्पन्न जीव (मनुष्य) स्वभाव, कर्म और अभ्यास से ब्रह्म ही को अपना आदिम निवासस्थल ऐसा बना ले कि क्षण भर भी विलग न हो, यदि हो तो नष्ट हो जाय। तब स्वयम् तल्लीनता सम्भव है। २ राजस्थान में खंड विशेष जहां के लोग गर्हित और असभ्य समझे जाते हैं।

सुंदर आया आप कौं, आया अपुनी ठाम ।
गाया अपुने ज्ञान कौं, पाया अपना धाम ॥५२॥
रागी त्यागी शांति पुनि, चतुरथ घोर बषान ।
ज्ञानी च्यार प्रकार है, तिन्है लेहु पहिचान ॥६२॥
रागी राजा जनक है, त्यागी शुक सम थोर ।
शांत जानि जमदग्नि कौं, दुर्वासा अति घोर ॥६३॥(१२८)

---

(३१) अन्योन्य भेद को अंग ।

रथ चौवीसहु तत्व कौ, कर्म सुभासुभ बैल ।
सुंदर ज्ञानी सारथी, करै दशौं दिशि सैल ॥ ३ ॥
देह तमूरा डाट जड, जीभ तार तिहि लाग ।
सुंदर चेतन चतुर बिन, कौन बजावै राग ॥ ५ ॥
सत अरु चित आनंदमय, ब्रह्म विशेषण तीन ।
अस्ति भाति प्रिय आतमा, वई विशेषण कीन॥१५॥
जीव भयौ अनुलोम[1] तें, ब्रह्म होइ प्रतिलोम[2] ।
सुंदर दारु जराइ कै, अग्नि होय निर्धोम[3] ॥२५॥
कठिन बात है ज्ञान की, सुंदर सुनी न जाइ ।
और कहूं नहिं ठाहरै, ज्ञानी[4] हृदै समाइ ॥३९॥(१३३)

---

१ सुलटा । २ उलटा । ३ धुआंरहित, शुद्ध । ४ अनुभवपाता. पहुँचवान ज्ञानी ।

(५) पदसार ।

[सुंदर दास जी ने २७–२८ राग रागनियों में २२५ पद वा भजन बनाए हैं । प्रायः पद बड़े अर्थ और प्रयोजन से भरे हैं । साधुओं में 'साखी' और 'पद' (भजन) बनाने का मानों एक रवैया सा ही है । दादूजी और उनके सब ही शिष्यों ने ऐसा किया था । हम इनसे अति चमत्कारी और गंभीर ४० (चालीस) पद छांट कर यहां धरते हैं जो गाने और सुनने में मनोहर और प्रयोजन में मूल्यवान प्रतीत होंगे]

[पद के अंत में जो संख्या दी है वराग के अंतर्गत पद की गिनती है ।]

---

(१) राग जकड़ी गौड़ी ।

पद ११ ॥

भया मैं न्यारा रे । सतगुरु कै जु प्रसाद, भया मैं न्यारा रे ।
श्रवण सुन्यौं जव नाद, भया मैं न्यारा रे ।
छूट्यो वाद विवाद, भया मैं न्यारा रे ॥ टेक ॥
लोक वेद कौ संग तज्यौ रे, साधु समागम कीन ।
माया मोह जंजाल तें हम भाग किनारो दीन ॥१॥ भया० ॥
नाम निरंजन लेत हैं रे और कछू न सुहाइ ।
मनसा वाचा कर्मना सव छाडी आन उपाइ ॥२॥ भया० ॥
मन का भरम विलाइया रे भटकत फिरता दूरि ।
उलटि समाना आपु में सब प्रगट्या राम हजूरि ॥३॥भया०॥

पिंड ब्रह्मांड जहां तहां रे, वा बिन और न कोई।
सुंदर ताका दास है। जातै सब पैदाइश होई ॥४॥

भया० ॥११॥ (१)

पद ११।

काहे कौं तू मन आनत भै रे। जगत बिलास तेरो भ्रम है रे ॥टेक॥
जन्म मरन देहनि कौ कहिये। सोऊ भ्रम जब निश्चय गहिये ॥१॥
स्वर्ग नरक दोऊ तेरी शंका। तू ही राव भयो तूं रंका ॥२॥
सुख दुख दोऊ तेरे कीये। तैं ही बंधमुक्त करि लीये ॥३॥
द्वैत भाव तजि निर्भय होई। तब सुंदर सुंदर है सोई ॥४॥(२)

---

(२) राग माली गौड़ो।

पद २।

सतसंग नित प्रति कीजिये। मति होय निर्मल सार रे।
रति प्रानपति सौं ऊपजै। अति लहै सुक्ख अपार रे ॥टेक॥
मुख नाम हरि हरि उच्चरै। श्रुति सुनै गुन गोविंद रे।
रटि ररंकार[१] अखंड धुनि। तहां प्रगट पूरन चंद रे ॥१॥
सतगुरु बिना नहिं पाइये। इह अगम उलटा षेल रे।
कहि दास सुंदर देषतें। होइ जीव ब्रह्म हि मेल रे ॥२॥(३)

पद ५। †

जग तें जन न्यारा रे। करि ब्रह्म विचारा रे।
ज्यौं सूर उज्यारा रे ॥ टेक ॥

---

१ अजपा जाप का एक भेद।
† यह पद (५) रागिनी 'भीम पलासी' में भी गाया जाता है।

जल अंबुज जैसे रे । निधि सीप सु तैसे रे ।
मणि अहिमुख ऐसै रे ॥ १ ॥
ज्यौं दर्पन मांहीं रे । दीसै परछाहीं रे ।
कछु परसै नाहीं रे ॥ २ ॥
ज्यौं घृत हि समीपै रे । सब अंग प्रदीपै रे ।
रसना नहिं छीपै रे ॥ ३ ॥
ज्यौं है आकाशा रे । कछु लिपै न तासा[१] रे ।
यौं सुंदर दासा रे ॥ ४ ॥ (४)

---

(३) राग कल्याण ।

पद ५ ।

ततथेई ततथेई, ततथेई ताथी । नागऽधी नागऽधी ।
नागऽधी माधी ॥टेक॥
थुंग निथुंग, निथुंग निथुंगा । त्रिघट उघटि,
तत तुरिय उतंगा ॥ १ ॥
तननन तननन, तननन तन्ना । गुप्त गगनवत्,
आतम भिन्ना ॥ २ ॥
तत्त्वं तत्त्वं तत्, सोत्वं असि । सामवेद यौं,
वदत तत्त्वमसि ॥ ३ ॥
अद्भुत निरतत, नाशत मोहं । सुंदर गावत,
सोऽहं सोऽहं ॥४॥ (५)*

---

१ तासा=उससे या उसमें । * इस पद में प्रत्येक शब्द का अध्यात्म अर्थ, नृत्यार्थ से भिन्न भी है ।

(४) राग कानड़ो ।

पद ५ ।

सब कोऊ आप कहावत ज्ञानी । जाकौं हर्ष शोक नहिं व्यापै
ब्रह्म ज्ञान की ये नीसानी ॥टेक॥
ऊपर सब व्यवहार चलावै अंतहःकरण शून्य करि जानी ।
हानि लाभ कछु धरै न मन मैं इहिं विधि विचरै निर अभिमानी ॥१॥
अहंकार की ठौर उठावै आतम दृष्टि एक उर आनी ।
जीवनमुक्त जानि सोइ सुंदर और बात की बात बषानी ॥२॥ (६)

---

(५) राग बिहागड़ो ।

पद ३ ।

हमारे गुरु दीनी एक जरी । कहा कहौं कछु कहत न आवै
अमृत रसही भरी ॥ टेक ।
ताकौ मरम संतजन जानत वस्तु अमोल परी ।
याते मोहि पियारी लागत लै करि सीस धरी ॥ १ ॥
मन भुजंग अरु पंच नागनी सूंघत तुरत मरी ।
डायनि एक षात सब जग कौं सो भी देष डरी ॥ २ ॥
त्रिविध विकार ताप तन भागी दुर्मति सकल हरी ।
ताकौ गुन सुनि मीच पलाई और कवन बपुरी ॥ ३ ॥
निसिबासर नहिं ताहि बिसारत पल छिन आध घरी ।
सुंदरदास भयौ घट निरविष सबही व्याधि टरी ॥ ४ ॥ (७)

---

१ मौत । २ भागी । ३ बेचारी ।

(६) राग केदारो ।

पद २ ।

देषहु एक है गोविंद । द्वैत भावहि दूर करिये
होइ तव आनंद ॥ टेक ॥

आदि ब्रह्मा अंत कीटहु दूसरो नांहिं कोइ ।
जो तरंग विचारिये तो वहै एकै तोइ ॥ १ ॥
पंचतत्व अरु तीन गुन कौ कहत है संसार ।
तऊ दूजो नाहिं एकै बीज कौ विस्तार ॥ २ ॥
अतत निरस न कीजिये तौ द्वैत नांहिं ठहराइ ।
नहीं नहिं करते रहै तहां वचन हू नहिं जाइ ॥ ३ ॥
हरि जगत मैं जगत हरि मैं कहत हैं यौं बेद ।
नाम सुंदर धऱ्यौ जबहीं भयौ तबही भेद ॥ ४ ॥ (८)

---

(७) राग मारू ।

पद ५ ।

जुवारी जूवा छाड़ौ रे । हारि जाहुगे जन्म कौ मति चौपड़ि
मांडौ रे ॥ टेक ॥

चौपड़ अंतहकरण की तीनौं गुन पासा रे ।
सारि कुबुद्धी धरत हौ यौं होइ विनासा रे ॥ १ ॥
लष चौरासी घर फिरे अब नरतन पायौ रे ।
याकी काची सारि है जौ दाव न आयौ रे ॥ २ ॥
झूठी बाजी है मंडी तामैं मति भूलौ रे ।
जीव जुवारी बापडा काहेकौ फूलौ रे ॥ ३ ॥

सारि समाझि कैं दीजिये तौ कबहु न हारौ रे ।
सुंदर जीतौ जन्म कौं जौ राम सँभारौ रे ॥ ४ ॥(९)

---

(८) राग भैरूं ।

पद ६ ।

ऐसा ब्रह्म अखंडित भाई । बार बार जान्यौ नहिं जाई ॥टेक॥

अनल पंखि उड़ि छाड़ि अकासा ।
थकित भई कहुं छोर न तासा ॥ १ ॥
लोन पूतरी थागे दरिया ।
जात जात ता भीतरि गरिया ॥ २ ॥
अति अगाध गति कौन प्रमानै ।
हेरत हेरत सबै हिरानै ॥ ३ ॥
कहि कहि संत सबै कोउ हारा ।
अब सुंदर का कहै बिचारा ॥ ४ ॥ (१०)

पद ७ ।

सोवत सोवत सोवत आयो । सुपनै ही में सुपनौ पायौ ॥टेक॥
प्रथम हि सुपनौ आयौ येह । आपु भूलि करि मान्यौ देह ।
ताकै पीछै सुपनौ और । सुपनै ही में कीनी दौर ॥१॥
सुपना इंद्री सुपना भोग । सुपना अंतहकरन वियोग ।
सुपनै ही मैं बाँध्यौ मोह । सुपनै ही मैं भयौ बिछोह ॥२॥
सुपनै स्वर्ग नरक मैं वास । सुपने ही मैं जम की त्रास ।
सुपनै मैं चौराशी फिरै । सुपनैं ही मैं जन्मै मरै ॥३॥
सतगुरु शब्द जगावन हार । जब यह उपजे ब्रह्म बिचार ।
सुंदर जागि परे जे कोई । सब संसार सुप्न वद होइ ॥४॥(११)

(९) राग ललित ।

पद ३ ।

अब हूं हरि कौं जांचन आयौ। देषे देव सकल फिरि फिरि मैं
दारिद्र भंजन कोऊ न पायौ ॥ टेक ॥
नाम तुम्हारौ प्रगट गुसांई । पतित उधारन वेदनि गायौ ।
ऐसी साषि सुनी संतन मुख । देत दान जाचिक मन भायौ ॥१॥
तेरे कौन बात कौ टोटौ । हूं तौ दुख दरिद्र करि छायो ।
सोई देहु घटै नहिं कबहूं । बहुत दिवस लग जाइ न पायौ ॥२॥
अति अनाथ दुर्बल सबही बिधि ।
दीन जानि प्रभु निकट बुलायौ ॥
अंतह करण उमगि सुंदर कौं ।
अभैदान दै दुःख मिटायौ ॥ ३ ॥ (१२)

---

(१०) राग काल्हेडा ।

[यह राग और इसके पद गुजराती के हैं, इससे यहां नहीं लिखे गए ।]

---

(११) राग देवगंधार ।

पद २ ।

अब तो ऐसे करि हम जान्यौ । जौ नानात्व प्रपंच जहां लौं
मृग तृष्णा कौ पान्यौ ॥ टेक ॥
रजु कौं सर्प देषि रजनी मैं भ्रम तें अति भय आन्यौ ।

---

१ फैलाव । अथवा पाया । अथवा पानी, जल ।

रवि प्रकाश भयौ जब प्रातहि रजु कौ रजु पहिचान्यौ ॥१॥
ज्यौं बालक बेताल देषि कै यौंही वृथा डरान्यौ ।
ना कछु भयौ नहीं कछु ह्वैहै, यह निश्चय करि मान्यौ ॥२॥
ससाश्रृंग बंध्यासुत झूठे । मिथ्या वचन वषान्यौ ।
तैसै जगत काल त्रय नाहीं । समझि सकल भ्रम भान्यौ ॥३॥
ज्यौं कछु हुतौ रह्यौ पुनि सोई । दुतियां[1] भाव विलान्यौ॥
सुंदर आदि अंत मधि सुंदर । सुंदर ही ठहरान्यौ ॥४॥(१)

---

(१२) राग बिलावल ।

पद २ ।

सोइ सोइ सब रैनि बिहानी । रतन जन्म की षवरि न
जानी ॥ टेक ॥

पहिले पहर मरम नहिं पावा । मात पिता सौं मोह बँधावा ।
षेलत षात हँस्या कहुं रोया । बालापन ऐसैंही षोया ॥१॥
दूजे पहर भया मतवाला । परधन परत्रिय देषि षुसाला ।
काम अंध कामिनि सँग जाई । ऐसैं ही जोवन गयौ सिराई ॥२॥
तीजे पहरि गया तरनापा । पुत्र कलत्र का भया संतापा ।
मेरै पीछै कैसा होई । घरि घरि फिरिहैं लरिका जोई ॥३।
चौथे पहरि जरातन व्यापी । हरि न भज्यौ इहि मूरष पापी।
कहि समुझावै सुंदरदासा । राम बिमुख मरि गया निरासा॥४॥

पद ८ ।

है कोई योगी साधै पौना । मन थिर होई बिंद नहिं टौलै ।
जितेंद्री सुमिरै नहिं फौना ॥ टेक ॥

---

१ द्वैत ।

यम अरु नेम धरै दृढ़ आसन । प्राणायाम करै मन मौना ॥
प्रत्याहार धारणा ध्यानं । लै समाधि लावै ठिक ठौना ॥१॥
इडा पिंगला सम करि राषै । सुषमन करै गगन दिशि गौना ।
अह निश ब्रह्म अग्नि पर जारै[1] । सापनि[2] द्वार छाड़ि दै जौना ॥२॥
बहुदल षटदल दशदल षोजै । द्वादशदल तहां अनहद भौना ।
षोडशदल अमृत रस पीवै । ऊपरि द्वै दल करै चतौना ॥३॥
चढ़ि अकाश अमर पद पावै । ताकौं काल कहे नाहिं पौना[3] ।
सुंदरदास कहै सुनि अवधू । महा कठिन यह पंथ अलौना॥४॥(१५)

पद ॥ १५ ॥

जाके हृदै ज्ञान है ताहि कर्म न लागै ।
सब परि बैठे मक्षिका पावक तैं भागै ॥टेक॥
जहां पाहरू[4] जागहीं तहां चोर न जाहीं ।
आँषिन देषत सिंह कौं पशु दूरि पलाहीं ॥ १ ॥
जा घर मांहि मंजार है तहां मूषक नासै ।
शब्द सुनत ही मोर का अहि रहै न पासै ॥ २ ॥
ज्यौं रवि निकट न देषिये कबहूं अँधियारा ।
सुंदर सदा प्रकाश में सब ही तैं न्यारा ॥ ३ ॥ (१६)

---

(१३) राग टोडी ।

पद ॥ १ ॥

राम नाम राम नाम राम नाम लीजै ।
राम नाम रटि रटि राम रस पीजै ॥टेक॥

---

१ जलावे । प्रकाशित बनी रखे । २ कुंडिनी । ३ पावे ।
४ पहरेवाला ।

राम नाम राम नाम गुरु तें पाया।
राम नाम मेरै हिरदै आया ॥ १ ॥
राम नाम राम नाम भजि रे भाई ।
राम नाम पटतरि तुलै न काई ॥ २ ॥
राम नाम राम नाम है अति नीका।
राम नाम सब साधन का टीका ॥ ३ ॥
राम नाम राम नाम अति मोहि भावै ।
राम नाम सुंदर निशि दिन गावै ॥ ४ ॥ (१७)

पद ७ ।

मेरौ धन माधो माई री । कबहूं बिसरी न जाऊं।
पल पल छिन छिन घरि घरि तिहि बिन देषै न रहाऊं॥ टेक ॥
गहरी ठौर धरौं उर अंतर काहू कौं न दिषाऊं।
सुंदर को प्रभु सुंदर लागत लै करि गोपि छिपाऊं ॥१॥(१९)

---

(१४) राग आसावरी ।

पद ६ ।

कोई पीवै राम रस प्यासा रे । गगन मंडल में अमृत
सरवै उनमनि कै घर वासा रे॥ टेक ॥
सीस उतारि धरै धरती पर करै न तन की आसा रे
ऐसा महंगा अमी बिकावै छह रितु बारह मासा रे ॥ १ ॥
मोल करै सो छकै दूर तें तोलत छूटै वासा रे।
जो पीवै सो जुग जुग जीवै कबहूं न होइ बिनासा रे ॥ २ ॥

---

१ समान ।

या रस काजि भये नृप जोगी छाड़े भोग विलासा रे।
सेज सिंघासन बैठे रहते भस्म लगाइ उदासा रे॥ ३॥
गोरषनाथ भरथरी रसिया सोइ कबीर अभ्यासा रे।
गुरु दादू परसाद कछू इक पायो सुंदर दासा रे॥४॥ (१९)

पद १।

मुक्ति तो घोषै की नीसानी। सो कतहूँ नहिं ठौर ठिकाना
जहां मुक्ति ठहरानी॥ टेक॥
को कहै मुक्ति व्यौम के ऊपर को पाताल के मांही।
कौ कहै मुक्ति रहे पृथ्वी पर ढूंढै तो कहुं नाहीं॥ १॥
वचन विचार न कीया किनहूं सुनि सुनि सत्र उठि धाये।
गोदंडा ज्यौं मारग चालै आगे षोज विलाये॥ २॥
जीवत कष्ट करै वहुतेरे मुये मुक्ति कहै जाई।
घोषै ही घोषै सब भूलै आगै ऊवा वाई॥ ३॥
निज स्वरूप कौं जानि अखंडित ज्यौं का त्यौं ही रहिये।
सुंदर कछू गहै नहिं त्यागै वह है मुक्ति पथ कहिये॥४॥(२०)

पद ११।

मन मेरे सोई परम सुख पावै। जागि प्रपंच माहिं मति भूलै
यह औसर नहिं आवै॥ टेक॥
सोवै क्यों न सदा समाधि मैं उपजै अति आनंदा।
जौ तूं जागै जग उपाधि में क्षीन होइ ज्यौं चंदा॥ १॥

---

१ गुवरैला जंतु जो भौंरे के वरावर होता है और गोवर की गोलियां बनाकर उलटे सिर पीछे हटाता ले जाता है। २ बच्चों का खेल वा हाला। सोच विचार।

सोइ रहै तें ह्वै अखंड सुख तौ तूं जुग जुग जीवै।
जौ जागै तौ परै मृत्युमुख बादि बृथा विष पीवै ॥ २ ॥
सोवै जोगी जागै भोगी यह उलटी गति जानी।
सुंदर अर्थ बिचारै याकौ सोई पंडित ज्ञानी ॥ ३ ॥ (२१)

---

(१९) राग सिंधूड़ो।

पद ३।

द्वै दल आइ जुडे धरणी पर बिच सिंधूड़ो बाजै रे।
एक वोर कौं नृप विवेक चढि एक मोह नृप गाजै रे ॥ टेक।
प्रथम काम रन माहिं गल्यारौ को हम ऊपरि आवै रे।
महादेव सरषा मैं जीत्या नर की कौन चलावै रे ॥ १ ॥
आइ विचार बोलियो वाणी मुख पर नीकैं डाट्यौ रे।
ज्ञान पडग ले तुरत काम कौ हाथ पकडि सिर काट्यौ रे॥२ ॥
क्रोध आइ बोल्यौ रन माहीं हौं सबहिन कौ काटा रे।
देव दयंत मनुष पशु पंषी जरैं हमारी ज्वाला रे ॥ ३ ॥
षिमा आइकैं हँसनैं लागी सीस चरन कौ नायौ रे।
चूक हमारी वकसहु स्वामी इतनैं क्रोध नसायौ रे ॥ ४ ॥
तवहिं लोभ रन आइ पचारयौ मैं तौ सब ही जीते रे।
जौ सुमेर घर भीतरि आवै तौ पेट सबन के रीते रे ॥ ५ ॥
इत संतोष आइ भयौ ठाढौ बोलै बचन उदासा रे।
होनहार सो ह्वैहै भाई कीयौ लोभ कौ नासा रे ॥ ६ ॥
महा मोह कौं लगी चटपटी अति आतुर सो आयौ रे।
मेरे जोधा सब ही मारे ऐसौ कौन कहायौ रे ॥ ७ ॥

तापर राइ विवेक पधान्यौ कीनी बहुत लराई रे।
इततैं उततैं भई उडाउडि काहू सुद्धि न पाई रे ॥ ९॥
बहुत बार लग जूझे राजा राइ विवेक हँकान्यौ रे।
ज्ञान गदा की दई सीस मैं महा मोह कौं मान्यौ रे ॥ ८ ॥
फीटौ तिमिर भान तब ऊगौ अंतर भयौ प्रकासा रे।
युग युग राज दियौ अविनाशी गावै सुंदरदासा रे ॥१०॥

---

(१६) राग सोरठ।

पद ५।

मेरा मन राम नाम सौं लागा। तातैं भरम गयौ भै भागा। टेक॥
आसा मनसा सब थिर कीनी सत रज तम त्यागे तीनी।
पुनि हरष शोक गये दोऊ मद मछर रहे न कोऊ ॥ १ ॥
नष शिष लौं देह पषारी तब शुद्ध भई सब नारी।
भया ब्रह्म अग्नि सुप्रकाशा किया सकल कर्म का नाशा ॥ २ ॥
इडा पिंगला उलटी आई सुषमन ब्रह्मंड चढ़ाई।
जब मूल चांपि दिढ बैठा तब बिंद गगन मैं पैठा ॥ ३ ॥
जहां शब्द अनाहद बाजे तहां अंतरि जोति बिराजै।
कोई देषै देषनहारा सो सुंदर गुरू हमारा ॥ ४ ॥ (२३)

पद ७।

हमारे साहु रमइया मोटा। हम ताके आहि बनौटा[1] ॥ टेक।
यह हाट दई जिनि काया। अपना करि जानि बैठाया।
पूंजी को अंत न पारा। हम बहुत करी मँडसारा[2] ॥ १ ॥

---

१ व्यापारी जो दूसरे के सहारे बनज करै। २ उथल पुथल कर सामान भरा।

कई वस्तु अमोलिक सारी । सब छाड़ि विषै पछिपारी ।
भरि राख्यौ सब ही भौना । कोई पाली रह्यौ न कौना ॥ १ ॥
जो गाहक लैनै आवै । मन मान्यौं सौदा पावै ।
देपै बहु भांति किराना । उठि जाइ न और दुकाना ॥ ३ ॥
संग्रय की कोठी आये । तब कोठीवाल कहाये ।
बनिजै हरि नाम निवासा । यह बानिया सुंदरदासा ॥४॥(२४)

---

(१७) राग जैजैवंती ।

पद २ ।

आप कौं सँभारै जब तूंही सुख सागर है ।
आप कौं बिसारै तब तूंही दुख पाइहै ॥ टेक ॥
तूं ही जब आवै ठौर दूसरौ न भासै और ।
तेरी ही चपलता तैं दूसरौ दिपाइहै ॥ १ ॥
बांवै कानि सुनि भावै दाहिनै पुकारि कहूं ।
अबकै न चेत्यौ तो तूं पीछे पछिताइहै ॥ २ ॥
भावै आज भावै कल्पंत बीतैं होइ ज्ञान ।
तब ही तूं अविनाशी पद मैं समाइहै ॥ ३ ॥
सुंदर कहत संत मारग बतावै तोहि ।
तेरी पुसी परै वहां तूं ही चलि जाइहै ॥४॥(२५)

---

१ तृपा निःसार पदार्थ । कौ+बारि ।

(१८) राग रामकरी ।

पद ५ ।

नट बट रच्यौ नटवै एक ।
बहु प्रकार बनाइ बाजी किये रूप अनेक ॥ टेक ॥
चारि षानी जीव तिनकी और औरे जाति ।
एक एक समान नांहि करी ऐसी भांति ॥ १ ॥
देव भूत पिशाच राक्षस मनुष पशु अरु पंषि ।
अगिन जलचर कीट कृमि कुल गनै कौन अखंषि॥ २ ॥
भिन्न भिन्न सुभाव कीये भिन्न भिन्न अहार ।
भिन्न भिन्न हि युक्ति राषी भिन्न भिन्न विहार ॥ ३ ॥
भिन्न वानी सकल जाती एक एक न मेल ।
कहत सुंदर माहिं बैठा करै ऐसा षेल ॥ ४ ॥ (२६)

पद ८ ।

ऐसी भक्ति सुनहु सुखदाई । तीन अवस्था में दिन वीतै
सो सुख कह्यो न जाई ॥ टेक ॥
जाग्रत कथा कीरतन सुमिरन स्वप्नै ध्यान लै लावै ।
सुषुपति प्रेम मगन अंतर गति सकल प्रपंच भुलावै ॥ १ ॥
सोई भक्ति भक्त पुनि सोई सो भगवंत अनूपं ।
सो गुरु जिन उपदेश बतायो सुंदर तुरिय स्वरूपं ॥२॥(२७)

पद ९ ।

तूंहीं राम हूंहीं राम । वस्तु विचारे भ्रम द्वै नाम ॥ टेक ॥
तूंहीं हूंहीं जब लगि दोइ । तब लगि तूंहीं हूंहीं होइ ॥१॥
तूंहीं हूंहीं सोहं दास । तूंहीं हूंहीं बचन्न विलास ॥२॥

तूंहीं हूंहीं जब लग कहै । तब लग तूंहीं हूंहीं रहै ॥३॥
तूंहीं हूंहीं जब मिटि जाइ । सुंदर ज्यौं को त्यौं ठहराइ ॥४॥

---

(१९) राग वसंत ।

पद ५ ।

हम देषि वसंत कियो बिचार ।
यह माया षेलै अति अपार ॥ टेक ॥
यह छिन छिन माहिं अनेक रंग ।
पुनि कहुं बिछुरे कहुं करै संग ॥
यहु गुन धरि बैठी कपट माई ।
यहु आपुहि जन्मै आपु पाई ॥ १ ॥
यहु कहुं कामिनि कहुं भई कंत ।
यहु कहुं मारै कहुं दयावंत ॥
यहु कहुं जागै कहुं रही सोइ ।
यहु कहुं हँसै कहूँ उठै रोइ ॥ २ ॥
यहु कहुं पाती कहुं भई देव ।
पुनि कहूं युक्ति करि करै सेव ॥
यहु कहुं मालिनि कहुं भई फूल ।
यहु कहुं सूक्ष्म है कहूं स्थूल ॥ ३ ॥
यहु तीन लोक में रही पूरि ।
भागी कहां कोई जाइ दूरि ॥
जो प्रगटै सुंदर ज्ञान अंग ।
तो माया मृगजल रजु-भुजंग ॥ ४ ॥ (२९)

---

(२०) राग गौंड ।

पद ४ ।

लागी प्रीति पिया सों सांची। अब हूं प्रेम मगन होइ नाची ॥टेक॥
लोक वेद डर रह्यौ न कोई। कुल मरजाद कदे की षोई ॥१॥
लाज छोड़ि सिर फरका डारा। अब किन हँसो सकल संसारा॥२॥
भावै कोई करहु कसौटी । मेरे तन की बोटी बोटी ॥३॥
सुंदर जब लग संका राषै । तब लग प्रेम कहां ते चाषै ॥४॥

---

(२१) राग नट ।

पद २ ।

बाजी कोन रची मेरे प्यारे । आपु गोपि ह्वै रहै गुसांई ।
जग सबहीं सो न्यारे ॥ टेक ॥
ऐसौ चेटक कियौ चेटकी लोग भुलाये सारे ।
नाना विधि के रंग दिषावै राते पीरे कारे ॥ १ ॥
पांष परेवा घूरि सुचावल लुक अंजन विस्तारे ।
कोई जान सकै नहीं तुमकौं हुन्नर बहुत तुम्हारे॥ २ ॥
ब्रह्मादिक पुनि पार न पावैं मुनि जन षोजत हारे।
साधक सिद्ध मौंन गहि बैठे पंडित कहा बिचारे॥ ३ ॥
अति अगाध अति अगम अगोचर च्यारौं वेद पुकारे।
सुंदर तेरी गति तूं जानै किनहुं नहीं निरधारे॥ ४ ॥(२१)

---

(२२) राग सारंग ।

पद ४ ।

देषहु दुरमति या संसार की । हरि सो हीरा छांडि हाथ तें
बांधत मोट विकार की ॥ टेक ।
नाना विधि के करम कमावत षबरि नहीं सिर भार की ।
झूठे सुख मैं भूलि रहे हैं फूटी आंष गँवार की ॥ १ ॥
कोइ षती कोइ बनजी लागे कोई आस हथ्यार की ।
अंध धंध मैं चहुं दिशि ध्याये सुधि विसरी करतार की ॥ २ ॥
नरक जानि कैं मारग चालै सुनि सुनि बात लबार की ।
अपने हाथ गले मैं बाही पासी माया जार की ॥ ३ ॥
वारंवार पुकार कहत हौं सौंहैं सिरजनहार की ।
सुंदरदास विनस करि डैहै देह छिनक मैं छार की ॥ ४ ॥(१२)

पद १४ ।

पहली हम होते छोहरा । कोडी वेप पेट निठि भरते
अब तो हूये वोहरा ॥ टेक ।
दे इकोतरा सई सबनि कौं ताही तें भये सौहरा ।
ऊंचौ महल रच्यौ अविनाशी तज्यौ परायौ नौहरा ॥ १ ॥
हीरा लाल जवाहर घर मैं मानिक मोती चौहरा ।
कौन बात की कमी हमारे भरि भरि राषे मौहरा ॥ २ ॥
आगे विपति सही बहुतेरी वह दिन काटे दोहरा ।
सुंदरदास आस सब पूगी मिलियौ राम मनोहरा ॥ ३ ॥ (२१)

---

(२३) राग मल्हार ।

पद २ ।

देषौ भाई आज भलौ दिन लागत ।
बरिषा रितु कौ आगम आयौ बैठि मलारहि रागत ॥ टेक ॥
राम नाम के बादल उनये घोरि घोरि रस पागत ।
तन मन मांहि भई शीतलता गये विकार जु दागत ॥१॥
जा कारनि हम फिरत वियोगी निश दिन उठि उठि जागत ।
सुंदरदास दयाल भये प्रभु सोइ दियौ जोइ मांगत ॥२॥(२४

पद ५ ।

करम हिंडोलना झूलत सब संसार ।
है हिंडोल अनादि कौ यह फिरत बारंबार ॥टेक॥
दोई षंभ सुख दुख अडिग रोपै भूमि माया माहिं ।
मिथ्यात्व, ममता, कुमति, कुदया चारि डांडी आहिं ॥
पाप पटली पुन्य मरवा अधौ ऊरध जाहिं ।
सत्व रजतम देहिं कोटा सूत्र षैंचि झुलाहिं ॥ १ ॥
तहां शब्द सपरश रूप रसबन गंध तरु विस्तार ।
तहां अति मनोरथ कुसम फूले लोभ अलि गुंजार ॥
चक्र (वाक) मोर चकोर चातक पिक ऋषीक उचार ।
तरला तृष्णा बहत सरिता महातीक्ष्ण धार ॥ २ ॥
यह प्रकृति पुरुष मचाइ राष्यौ सदा करम हिंडोल ।
सजि त्रिविध रूप विकार भूषन पहरि अंगनि चोल ॥
एक नृत्तत एक गावत मिलि परसपर लोल ।
रति ताळ मदन मृदंग बाजत दुदु दुंदुभि ढोल ॥ ३ ॥

यहि भांति सबहि जगत भूलै छ रुति बारह मास ।
पुनि मुदित अधिक उछाह मन मैं करत विविध विलास ।
यौं फूलतैं चिरकाल बीत्यौ होत जनम विनाश ।
तिनि हारि कबहूं नाहिं मानी कहत सुंदरदास ॥४॥(३५)

---

(२४) राग काफी ।

पद १३ ।

सहज सुन्नि का चेला अभि-अंतरि मेला ।
अवगति नाथ निरंजना तहां आपै आप अकेला ॥टेक॥
यह मन तहां विलमाइये गहि ज्ञान गुरू का चेला ।
काल करम लागै नहीं तहां रहिये सदा सुहेला ॥१॥
परम जोति जहां जगमगै अरु शब्द अनाहद भेला ।
संत सकल पहुंचे तहां जन सुंदर वाही गैला ॥२॥ (३६)

---

(२५) ऐराक ।

पद ४ ।

रामा रे सिरजनहार कासौ मैं निस दिन गाऊं ।
कर जोरैं विनती करौं क्यौं ही दरसन पाऊं ॥ टेक ॥
उतपति रे सांई तें किया प्रथमहि वो ओंकारा ।
तिस तें तीन्यौं गुन भये पीछे पंच पसारा ॥ १ ॥
तिनका रे यह औजूद है मोतें महल बनाया ।
नव दरवाजे साजि के दसवैं कपाट लगाया ॥ २ ॥

आपन रे बैठा गोपि ह्वै व्यापक सब घट माहीं ।
करता हरता भोगता लिपै छिपै कछु नाहीं ॥ ३॥
ऐसी रे तेरी साहिबी सो तूंही भल जानै ।
सिफिति तुम्हारी सांइयां सुंदरदास वषानै ॥ ४ ॥ (३७)

---

(२६) संकराभरन ।

पद २ ।

मन कौन सौं लगि भूल्यौ रे । इंद्रीनि के सुख देषत नीके
जैसैं सैंवरि फूल्यौ रे ।। टेक ॥
दीपक जोति पतंग निहारै जरि बरि गयौ समूल्यौ रे ॥१॥
झूठी माया है कछु नाहीं मृगतृष्णा मैं झूल्यौ रे ॥२॥
जित तित फिरै भटकतौ यौंही जैसैं वायु घूल्यौ रे ॥ ३ ॥
सुंदर कहत समुझि नहिं कोई भवसागर मैं डूल्यौ रे ॥ ४ ॥ (३८)

---

(२७) धनाश्री ।

पद ९ ।

ब्रह्म विचार तें ब्रह्म रह्यौ ठहराइ । और कछू न भयौ हुतौ
भ्रम उपज्यौ थौ आइ ॥ टेक ॥
ज्यौं अंधियारी रैनि मैं कल्प लियौ रजु व्याल ।
जब नीकै करि देषियौ भ्रम भाग्यौ ततकाल ॥ १ ॥
ज्यौं सुपनै नृप रंक ह्वै भूलि गयौ निज रूप ।
जागि परयौ जब स्वप्न तें भयौ भूप को भूप ॥ २ ॥

ज्यौं फिरतैं फिरतौ दसै जगत सकल ही ताहि।
फिरत रह्यौ जब बैठि कै तब कछु फिरत न आहि ॥ ३ ॥
सुंदर और न ह्वै गयौ भ्रम तें जान्यौं आन।
अब सुंदर सुंदर भयौ सुंदर उपज्यौ ज्ञान ॥ ४ ॥ (१९)

॥ २८ ॥ आरती * ॥

आरती परब्रह्म की कीजै, और ठौर मेरौ मन न पतीजै ॥टेक॥
गगन मंडल मैं आरति साजी, शब्द अनाहद झालरि बाजी ॥ १ ॥
दीपक ज्ञान भया परकासा, सेवक ठाढे स्वामी पासा ॥ २ ॥
अति उछाह अति मंगलचारा, अति सुख बिलसै बारंबारा ॥ ३ ॥
सुंदर आरति सुंदर देवा, सुंदरदास करै तहां सेवा ॥४॥(४०)

* 'आरती' विविध रागों में गाई जाती है। समय के अनुसार बिलावल, सारग, धनाश्री, बरवा कल्याण आदि।

Printed by G. K. Gurjar at Shri Lakshmi Narayan Press, Benares City.

मनोरंजन पुस्तकमाला।

अब तक निम्न लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

(१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(४) आदर्श हिंदू १ भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा।
(५) „ २ „ „
(६) „ ३ „ „
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।
(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपत जानकीराम दूबे बी. ए.।
(१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी. एस-सी., एल. टी.।
(११) लालचीन—लेखक बृजनंदन सहाय।
(१२) कबीरवचनावली—संग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय।
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी. ए.।
(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन लेखक नंदकुमार देव शर्म्मा।